भगवान महावीर के पच्चीस सौवें निर्वाण-महोत्सव समारोह
के उपलक्ष में

प्रकाशक
श्री मरुधर केसरी साहित्य-प्रकाशन समिति
जोधपुर-ब्यावर

प्रेरक : श्री रजत मुनि
सपादक ·
श्री सुकन मुनि

प्रथम आवृत्ति
वि० स० २०२६
माघ पूर्णिमा
फरवरी १६७३

मुद्रण व्यवस्था :
सजय साहित्य सगम के लिए—
रामनारायन मेडतवाल
श्रीविष्णु प्रिंटिंग प्रेस,
राजा की मडी, आगरा-२

जो पढे-लिखे हैं,
अनुभवी और समझदार हैं,
किन्तु—
आत्मज्ञान के अभाव मे—
जीवन के सही उद्देश्य
एवं
सही मार्ग को
नही पहचान सके है,
उस पर चल नही सके हैं,
यह पुस्तक उन्ही के लिए !

—मुनि मिश्रीमल

●●

# अभिनन्दन

(छप्पय)

धवल हंस खग श्रेष्ठ, धवल दंतिन मनहारी,<br>
धवल कौमुदी इन्दु, धवल मुक्ता दसनारी।<br>
धवल सिद्ध शुभ वरण धवल कीर्ति लहकारी,<br>
धवल हृदय के भाव कर्मदल देत विडारी।<br>
धवल ध्यान, लेश्या धवल, धवल वीर वाणी जहा।<br>
'शुकन' रच्यौ मिश्री गुरु **धवल ज्ञान-धारा** अहा!

# प्रकाशकीय

ज्ञान मनुष्य की तीसरी आख है। यह आख जन्म से नही, किन्तु अभ्यास और साधना के द्वारा जागृत होती है। कहना नही होगा, इस दिव्यनेत्र को जागृत करने मे सद्‌गुरु का सहयोग अत्यन्त अपेक्षित है। सद्‌गुरु ही हमारे इस दिव्य-चक्षु को उद्‌घाटित कर सकते हैं। उनके दर्शन, सत्सग, उपदेश और प्रवचन इसमे अत्यन्त सहायक होते हैं। इसलिए सद्‌गुरुओ के प्रवचन सुनने और उस पर मनन करने की आज बहुत आवश्यकता है।

बहुत से व्यक्ति सद्‌गुरुदेव के प्रवचन सुनने को उत्सुक होते हुए भी वे सुन नही पाते। चूकि वे सुदूर क्षेत्रो मे रहते हैं जहा सद्‌गुरुजनो का चरण-स्पर्श मिलना भी कठिन होता है।

ऐसी स्थिति मे प्रवचन को साहित्य का रूप देकर उनके हाथो मे पहुचाना और भगवद्‌वाणी का रसास्वादन करवाना एक उपयोगी कार्य होता है। ऐसे प्रयत्न हजारो वर्षों से होते भी आये हैं। इसी शुभ परम्परा मे हमारा यह प्रयत्न है श्री मरुधर केसरी जी महाराज के प्रवचन-साहित्य को व्यवस्थित करके प्रकाशित कर जन-जन के हाथो मे पहुचाना।

यह सर्वविदित है कि श्री मरुधर केसरी जी महाराज के प्रवचन बडे ही सरस, मधुर, साथ ही हृदय को आन्दोलित करने वाले, कर्तव्यबुद्धि को जगाने वाले और मीठी चोट करने वाले होते है।

उनके प्रवचनों मे सामयिक समस्याओ का और जीवन की पेंचीदी गुत्थियो का बडा ही विचारपूर्ण समाधान छिपा रहता है, साथ ही उनमे बडा चुटीलापन और रोचकता भी रहती है, जो श्रोता और पाठक को चुम्बक की भाति अपनी ओर खीचे रखते हैं। इसलिए हमे विश्वास है कि यह प्रवचन-साहित्य पाठको को रुचिकर और मनोहर लगेगा।

श्री मरुधरकेसरी साहित्य-प्रकाशन समिति के द्वारा मुनिश्री जी का कुछ महत्वपूर्ण साहित्य प्रकाशित किया गया है, और अभी बहुत-सा साहित्य, कविताए, प्रवचन आदि अप्रकाशित ही पडे हैं। हम इस दिशा मे प्रयत्नशील है कि यह अप्रकाशित जनोपयोगी साहित्य शीघ्र ही सुन्दर और मनभावने रूप मे प्रकाशित होकर पाठको के हाथो मे पहुचे।

इन प्रवचनो का सम्पादन मुनिश्री के विद्या-विनोदी शिष्य श्री सुकन मुनि जी के निर्देशन मे किया गया है। अत मुनिश्री का तथा अन्य सहयोगी विद्वानो का हम हृदय से आभार मानते हैं।

पुस्तक को मुद्रण आदि की दृष्टि से आधुनिक साज-सज्जा के साथ प्रस्तुत करने मे श्रीचन्दजी सुराना 'सरस' का हार्दिक सहयोग हमे प्राप्त हुआ है, जिसे भुलाया नही जा सकता।

अब यह पुस्तक पाठको के हाथो मे प्रस्तुत है—इसी आशा के साथ कि वे इसके स्वाध्याय से अधिकाधिक लाभ उठायेंगे।

—पुखराज सिशोदिया

अध्यक्ष

श्री मरुधर केसरी साहित्य-प्रकाशन समिति

# दो शब्द

साधारण मनुष्य की वाणी 'वचन' कहलाती है, किन्तु किसी ज्ञानी, साधक एव अन्तर्मुखी चिन्तक की वाणी 'प्रवचन' होती है। उसकी वाणी मे एक विशिष्ट बल, प्रेरणा और दिव्यता-भव्यता का चमत्कार छिपा रहता है। श्रोता के हृदय को सीधा स्पर्श कर बिजली की भाति आदोलित करने की क्षमता उस वाणी मे होती है।

श्रीमरुधर केसरीजी म० के प्रवचन पढते समय पाठक को कुछ ऐसा ही अनुभव होगा—इन प्रवचनो मे जितनी सरलता और सहजता है, उतना ही चुटीलापन और हृदय को उद्बोधित करने की तीव्रता भी है। मुनिश्री की वाणी बिल्कुल सहजरूप मे नदी-प्रवाह की भाति बहती हुई-सी लगती है, उसमे न कृत्रिमता है, न घुमाव है और न व्यर्थ के शब्दो का उफान। ऐसा लगता है, जैसे पाठक स्वय वक्ता के सामने खडा है, और साक्षात् उसकी वाणी सुन रहा है। प्रवचनो की इतनी सहजता, स्वाभाविकता और हृदय-स्पर्शिता बहुत कम प्रवक्ताओ मे मिलती है।

इन प्रवचनो मे जीवन के विविध पक्षो पर, विभिन्न समस्याओ पर मुनिश्री ने बडे ही व्यावहारिक और सहजगम्य ढग से अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है। कही-कही विषय को ऐतिहासिक एव तुलनात्मक दृष्टि से व्यापक बनाकर उसकी गहराई तक श्रोताओ को ले जाने का प्रयत्न भी किया गया है। इससे प्रवचनकार की बहुश्रुतता, और सूक्ष्म-प्रतिभा का भी स्पष्ट परिचय मिलता है।

प्रवचनकार मुनिश्री मिश्रीमल जी सचमुच 'मिश्री' की भाति ही एक 'कठोर-मधुर' जीवन के प्रतीक है। उनके नाम के पूर्व 'मरुधर केसरी' और कही-कही 'कडकमिश्री' विशेषणो का भी प्रयोग होता है—यह विशेषण उनके व्यक्तित्व के बाह्य-आभ्यन्तर रूप को दर्शाते हैं।

मिश्री—की दो विशेपताए हैं, मधुर तो वह है ही, उसका नाम लेते ही मुह मे पानी छूट जाता है। किन्तु उसका बाह्य आकार बडा कठोर है, यदि ढेले की तरह उसको फेंककर किसी के सिर मे चोट की जाय तो खून भी आ सकता है। अर्थात् मधुरता के साथ कठोरता का एक विचित्र भाव-'मिश्री' शव्द मे छिपा है। सचमुच ऐसा ही भाव क्या मुनिश्री के जीवन मे नही है?

उनका हृदय वहुत कोमल है, दयालु है। किसी को सकटग्रस्त, दु खी व सतप्त देखकर मोम की भाति उनका मन पिघल जाता है। मिश्री को मुट्ठी मे वन्द कर लेने से जैसे वह पिघलने लगती है, वैसे ही मुनिश्री किसी को दु खी देखकर भीतर-ही-भीतर पिघलने लगते है, और करुणा-विगलित होकर अपने वरदहस्त से उसे आशीर्वाद देने को तत्पर हो जाते हैं। जीवदया, मानव-सेवा, साधर्मिवात्सल्य आदि के प्रसगो पर उनकी असीम मधुरता, कोमलता देखकर लगता है, मिश्री का माधुर्य भी यहा फीका पड जाता है!

उनका दूसरा रूप है—कठोरता! समाज व राष्ट्र के जीवन मे वे कही भी भ्रष्टाचार देखते हैं, अनुशासनहीनता और साम्प्रदायिक द्वन्द्व, झगडे देखते हैं तो पत्थर से भी गहरी चोट वहा पर करते हैं। केसरी की तरह गर्जना करते हुए वे उन दुर्गुणो व बुराइयो को ध्वस्त करने के लिए कमर कस कर खडे हो जाते है। समाज मे जहा-तहा साम्प्रदायिक तनाव, विरोध और आपस के झगडे होते है—वहा प्राय मरुधरकेसरी जी के प्रवचनो की कडी चोट पडती है, और वे उनका अन्त करके ही दम लेते है।

लगभग अस्सी वर्ष के महास्थविर मुनिश्री मिश्रीमल जी महाराज के हृदय मे समाज व सघ की उन्नति, अभ्युदय और एकता व सगठन की तीव्र

तडप है। एकता व सगठन के क्षेत्र मे वे एक महत्त्वपूर्ण कडी की भाति स्थानकवासी श्रमण सघ मे सदा-सदा से सन्माननीय रहे हैं। समाज सेवा के क्षेत्र मे उनका देय बहुत बडा है। राजस्थान के अचलो मे गाव-गाव मे फैले शिक्षाकेन्द्र, ज्ञानभण्डार, वाचनालय, उद्योगमन्दिर, व धार्मिक साधना-केन्द्र उनके तेजस्वी कृतित्व के बोलते चित्र हैं। विभिन्न क्षेत्रो मे काम करने वाली लगभग ३५ सस्थाए उनकी सद्प्रेरणाओ से आज भी चल रही हैं, अनेक सस्थाओ, साहित्यिको, मुनिवरो, व विद्वानो को उनका वरद आशीर्वाद प्राप्त होता रहता है। वे अपने आप मे व्यक्ति नही, एक सस्था की तरह विकासोन्मुखी प्रवृत्तियो के केन्द्र हैं।

मुनिश्री आशुकवि है। उनकी कविताओ मे वीररस की प्रधानता रहती है, किन्तु वीरता के साथ-साथ विरक्ति, तपस्या और सेवा की प्रबल तरगें भी उनके काव्य-सरोवर मे उठ-उठ कर जन-जीवन को प्रेरणा देती रही हैं।

श्री मरुधरकेसरी जी के प्रवचनो का विशाल साहित्य सकलित किया पडा है, उसमे से अभी बहुत कम प्रवचन ही प्रकाश मे आये हैं। इन प्रवचनो को साहित्यिक रूप देने मे तपस्वी कविरत्न **श्री रूपचन्दजी महाराज** 'रजत' का बहुत बडा योगदान रहा है। उनकी अन्तर्-इच्छा है कि मरुधरकेसरी जी महाराज का सम्पूर्ण प्रवचन-साहित्य एक माला के रूप मे सुन्दर, रुचिकर और नयनाभिराम ढग से पाठको के हाथो मे पहुचे। श्री 'रजत' मुनि जी की यह भावना साकार होगी तो अवश्य ही साहित्य के क्षेत्र मे अनेक महत्वपूर्ण कृतिया हमें प्राप्त हो सकेगी। विद्याप्रेमी श्री सुकन मुनिजी की प्रेरणाओ से इन प्रवचनो का सम्पादन एव प्रकाशन शीघ्र ही गति पर आया है, और आशा है भविष्य मे भी आता रहेगा।

मुझे विश्वास है, प्रवचनो के पाठक एक नई प्रेरणा और कर्त्तव्य की स्फूर्ति प्राप्त कर कृतार्थता अनुभव करेंगे।

—श्रीचन्द सुराना 'सरस'

# अनुक्रमणिका

# धवल ज्ञान-धारा

# १ | स्वभाव-रमण

सज्जनो ! अभी आपके सामने दो भावो के विषय मे कहा गया है—एक तो उच्च भाव है और दूसरा निम्न भाव है। निम्न भाव का अर्थ है—नीच भाव, निकृष्ट भाव या हीन भाव। और उच्च भाव कहते है ऊँचे या उन्नत भावो को। ये उच्च और नीच दोनो भाव साथ-साथ चल रहे हैं। इनमे न तो कोई एक आगे है और न कोई दूसरा पीछे। परन्तु ये एक साथ चलते रहते हैं। जैसे—एक ओर से आपका परम स्नेही मित्र आया और दूसरी ओर से ठीक उसी समय परम वैरी या कट्टर शत्रु आया। यद्यपि ये दोनो आपके सामने एक साथ आये है, तथापि दोनो को एक साथ देखकर स्वभावत ही आपकी आंखो मे दो भाव आगये। अपने परम स्नेही मित्र को देखते ही आपकी आखो-मे से स्नेह का अमृत झरने लगा। तभी परम वैरी को देखने पर द्वेप की चिनगारिया भी निकलने लगी। मित्र को देखकर आपका हृदय-कमल खिल उठा और हृत्त्री वजने लगी और मुख से निकला—अहा ! आज वहुत दिनो के पश्चात् मेरा परम सखा आया है। आज परम सौभाग्य का दिन है। परन्तु कट्टर शत्रु को देखते ही घृणा फूट पडी कि यह दुष्ट क्यो आया ? ये परस्पर-विरोधी तत्री के तार एक साथ वज उठे। तदनुसार आपकी

भी परिवर्तन आया, चेहरे पर भी उतार-चढाव आया और वचनो मे भी आगया।

**कांटा घुमाने वाला**

परन्तु विचारणीय बात यह है कि यह काटा घुमानेवाला कौन है? क्योकि बिना घुमानेवाले के तो काटा घूमना सम्भव नही है? घडी मे जब चावी भरी होती है, तभी काटे घूमते हैं। आपके सामने घडी मे तीन काटे घूम रहे है—एक घटे का, दूसरा मिनिट का और तीसरा सैकिण्ड का। इसके अतिरिक्त किसी-किसी घडी मे तारीख का भी काटा रहता है। वह भी घूमता रहता है। ये सब अपनी-अपनी गति के अनुसार घूम रहे हैं। इन सबकी चाबी यद्यपि एक है, तथापि सब काटो की गति भिन्न-भिन्न ही हो रही है। इसी प्रकार मन की चावी के साथ भावो की श्रेणी भी इधर-उधर होती रहती है। एक ओर आपने सुगन्धित पुष्पो का सजाया हुआ गुलदस्ता देखा, जिसे कि एक व्यक्ति आपको सादर समर्पण कर रहा है। दूसरी ओर से एक व्यक्ति आपको मल-भरा बर्तन दे रहा है। यद्यपि दोनो व्यक्ति एक साथ दोनो वस्तुए आपको दे रहे हैं, तथापि आपके भावो मे परिवर्तन भिन्न-भिन्न रूप का एक साथ आया। इनमे से एक तो आपके लिए ग्राह्य है और दूसरा अग्राह्य है।

भाइयो, इस प्रकार की उच्च और नीच भाव की प्रवृत्तिया-मनोवृत्तिया आपके भीतर चलती हैं, तब तक समझना चाहिए कि आप समभाव मे नही आये है। और विषम भावो मे ही चल रहे है। प्रत्येक व्यक्ति के हृदय मे इस प्रकार राग-द्वेष की दो विषम धाराए चलती रहती हैं। जब तक हमारे और आपके भीतर ये दोनो धाराए प्रवाहित हो रही हैं, तब तक हमारा या आपका काम नही बन सकता है। जब एक समताभाव की धारा बहेगी, तभी हमारा-आपका उद्देश्य पूरा होगा—कार्य सिद्ध होगा।

आप लोग व्यापारी है। आपने रुई और ऊन की खरीद की। रुई मे दस रुपये मन की तेजी आगई और ऊन मे दस रुपया मन की मन्दी आगई। कहिये—ऐसी अवस्था मे आपने क्या कमाया? कुछ नही। जब एक ही धारा-एक-तरफा तेजी चलती है, तब दुनिया कहती है कि यह कमाई का समय है

और हमने इस तेजी मे इतना कमाया। जब मन्दी की धारा बहती है, तब घाटा उठाना पडता है। इस तेजी-मन्दी के प्रवाह मे कितने ही लोग कमा लेते हैं और कितने ही गाठ की पूंजी भी गवा बैठते हैं।

भाइयो, इसलिए परिणामो की धारा एक होना चाहिए। इसीलिए भगवद्-वाणी भी चेतावनी दे रही है कि "हे मुमुक्षुओ! तुम पदार्थों को देखकर और उनकी भिन्न-भिन्न प्रकृतियो को देखकर अपनी प्रवृत्ति को भी भली-बुरी बनाते हो, यह अच्छा नही है। अपनी प्रकृति को एक रूप रखो, तभी तुम्हारा कल्याण होगा।"

**एकरूपता कैसे रखें ?**

यहा पर आप पूछें कि महाराज, अपनी प्रकृति को एक रूप कैसे रखे ? वह तो कभी इधर भलाई की ओर जाती है और कभी उधर बुराई की ओर जाती है। तो भाई, यह आपका केवल भ्रम है। कुदरत की कारीगरी मे—प्रकृति की सृष्टि मे—ऐसी बात नही है। कुदरत या प्रकृति ने तो यह बताया है कि जिसको तू अभी मित्र मान रहा है, वही कुछ समय के पश्चात् तेरा शत्रु बन जायगा। और जिसे अभी तू शत्रु मान रहा है, वही कुछ समय के पश्चात् तेरा मित्र बन जायगा। तू तो यह धारणा करके बैठ गया है कि यह तो मेरा मित्र है और यह मेरा शत्रु है। जबकि ऐसी धारणा भ्रान्त है। इसलिए इस बात पर आ जा कि न कोई मेरा मित्र है और न कोई मेरा शत्रु है। क्योकि वस्तु मे सदा परिवर्तन होता रहता है। आचार्य कहते हैं कि—

**अनादौ सति संसारे कस्य केन न बन्धुता।**
**सर्वथा शत्रुभावश्च, सर्वमेतद्धि कल्पना॥**

यह ससार अनादि है। इसमे परिभ्रमण करते हुए जीवो मे किसकी किसके साथ बन्धुता और मित्रता नही हुई है ? और किसकी किसके साथ शत्रुता नही हुई है। अरे, सभी की सभी के साथ असख्य बार शत्रुता भी हुई है और असख्य बार सब की सबके साथ मित्रता और बन्धुता भी हुई है।

सधा, वहा वह उसे शत्रु मानने लगता है। इसे आचार्य कहते है कि "यह मेरा मित्र है और यह मेरा शत्रु है, ऐसी धारणा ही काल्पनिक है, मिथ्या है। वास्तव मे न कोई किसी का मित्र है और न कोई किसी का शत्रु है।" और भी कहा है—

वन्धुत्वं शत्रुभूयं च, कल्पनाशिल्पिनिर्मितम्।
अनादौ सति ससारे तद्-द्वय कस्य केन न ॥

अरे आत्मन्, यह वन्धुता और शत्रुता तो कल्पनारूपी शिल्पी (कारीगर) के द्वारा निर्मित है—यथार्थ नही है। क्योकि इस ससार मे अनादिकाल से सभी जीव घूमते हुए चले आ रहे हैं, इसलिए यह शत्रुता और बन्धुता दोनो ही किसकी किसके साथ नही हुई है। इसलिए मनुष्य को इस काल्पनिक शत्रु या मित्र के भ्रम मे नही पडना चाहिए।

आत्मा तो सदा ज्ञान-दर्शनमय एक स्वभावरूप है। जब एक स्वभाव है, तव अन्य वस्तुओ के सयोग होने पर हमे अपने स्वभाव को क्यो वदलना चाहिए? यदि मेरा स्वभाव वदलता है तो यह मेरी दुर्बलता है—कमजोरी है। अभी तक गुरुजनो ने मुक्ति का मार्ग तो मुझे ठीक वताया है। परन्तु मैं उसका पथिक नही वन पाया हू। जैसे कोई पथिक चल रहा है। चलते हुए आगे दो मार्ग आ गये। पथिक विचारता है कि इस पूर्वी मार्ग से जाऊ, या इस पश्चिमी मार्ग से जाऊ? इस द्विविधा मे पडकर जब खडा रह जाता है, तव वह एक भी मजिल को पार नही कर पाता है। कहा भी है—**'दुविधा में दोनो गये, माया मिली न राम।'** दुविधा मे पडा हुआ व्यक्ति किंकर्त्तव्य-विमूढ हो जाता है। इसी प्रकार सभी ससारी जीवो की आत्मा विभ्रम मे पडी हुई है। तभी इसे अपना स्वरूप प्राप्त नही होता। कहा भी है—

काया चित्रसारी मे कर्मपर्यंक भारी,
माया की सेवारी, सेज चादर कल्पना।
सपन करे चेतन अचेतना नींद लिए,
मोह की मरोड़ यह लोचन को ढपना ॥

उवँवल जोर यह स्वास को सवद घोर,
विषय सुख कारज मे दौर रहे सपना ।
ऐसी मूढ दशा मे मगन रहै तिहूंकाल,
धावै भ्रमजाल मे, न पावे रूप अपना ॥

भाई, यह काया, यह मिट्टी का पुतला तो चित्रशाला के रूप मे है । यहा कर्मरूपी पलग पडा हुआ है । यहा आप पूछें कि साहब, यह बात तो ठीक नही है, क्योकि पलग के तो चार पाये होते हैं ? इसका उत्तर यह है कि घन-घाती कर्म भी चार ही होते हैं—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय । आत्मा के भीतर मोह का पलग पडा हुआ है और उस पर माया की गादी विछी हुई है । उस पर कल्पना की चादर पडी हुई है । क्योकि यह करना है, वह करना है, ऐसी नाना प्रकार की कल्पनाए हमारे हृदय मे सदा उत्पन्न होती रहती हैं । परन्तु उनका करना आपके वश मे नही है । वे तो कर्म के उदय-वल से आप ही प्रगट होती रहती हैं । इसलिए वे सब कल्पना मात्र ही हैं । वे तो शेखचिल्ली के विचारो के समान हैं । अरे, तुझे तो यह भी पता नही है कि क्षण भर के वाद क्या होने वाला है ? तू क्या कर सकता है ? कुछ भी नही ।

हा, तो इस प्रकार आत्माराम के इस देहरूपी भवन मे मोहरूपी शैया विछी हुई है । इस पर आनन्दघन चेतन आत्माराम ने लेट लगा दी और वह अचेतनता की नीद लेने लगा । अर्थात् इस चेतन को काम, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेप आदि विभाव परिणति की नीद आ गई और फिर मोह का जोरदार खुर्राटा खीचने लगा । यद्यपि उस दशा मे आत्मा चाहती है कि मैं अपनी आखे खोलू ? परन्तु खोल नही पाता है । जैसे आपको जव गहरी नीद आ जाती है, तव आखें खोलना चाहते हैं, परन्तु जाग नही पाते हैं । अव उसे आपको घर वाले पुकार कर कहते हैं—अरे, जाग जा । परन्तु आप कहते हैं—मैं क्या करू, मेरी तो आखें ही नही खुलती हैं । मुझे अभी और सोने दो । इसी प्रकार से मोह को मरोडा है । यह चेतन जागना चाहता है, परन्तु मोह जगने नही देता है । यह आत्मा उस मोह के चक्कर मे क्यो आया ? क्योकि कर्म का

उदय-चल है। जो पहिले कर्म बाधे है, वे उदय मे आ गये। और उदय मे आये हुए कर्म को जब तक ठीक रीति से यह जीव भोग नही लेता है, तब तक वह दूसरा काम अच्छे प्रकार से कर नही सकता है। जो उदयगत कर्म है, उसे तो भोगे ही सरता है।

### विषय-भोग मे हिंसा

तीर्थंकर भगवान ने फरमाया है कि 'घाये घाये असखेज्जा' अर्थात् स्त्री-सेवन के प्रत्येक आघात मे असख्यात सम्मूर्च्छनज योनि-गत जीवो की हिंसा होती है। परस्त्री और वेश्या सेवन की तो बात ही बहुत दूर है। किन्तु जो अपनी स्त्री का भी सेवन करता है, वह भी द्रव्य और भाव दोनो प्रकार की हिंसा का भागी होता है। शास्त्रकार कहते हैं—

**स्त्रिय भजन्, भजत्येव रागद्वेषौ हिनस्ति च।**
**योनि जन्तून् बहून् सूक्ष्मान् हिंस्रः स्वस्त्री रतोऽप्यतः॥**

अर्थात्—जो अपनी स्त्री का भी सेवन करता है, उसमे राग भाव की अधिकता आदि होने से वह भावहिंसा का भागी होता है। और योनि के भीतर उत्पन्न होने वाले बहुत से सूक्ष्म जीवो का घात करने से द्रव्यहिंसा का भागी होता है। इस प्रकार स्वस्त्री मे रति करने वाला जीव भी हिंसक है।

स्त्रियो की योनि मे रक्त के निमित्त से सूक्ष्म जीवो की उत्पत्ति होती है, इसे प्रसिद्ध चरक ऋषि भी अपनी चरक-सहिता मे कहते हैं—

**रक्तजाः कृमयः सूक्ष्माः मृदु मेध्यादिशक्तयः।**
**जन्मवर्त्मसु कण्डूति जनयन्ति तथाविधाम्॥**

अर्थात्—रक्त मे अति सूक्ष्म और कोमल मज्जा आदि की शक्ति वाले कृमि (कीडे) जन्ममार्गों (योनियो) मे खुजली को उत्पन्न करते हैं, जिससे कि स्त्रियो को भोगाभिलाषा होती है। और पुरुष-प्रसग से वे सब जीव मर जाते है। जैसा कि कहा है—

**हिंस्यन्ते तिलनाल्यां तप्तायसि विनिहिते तिला यद्वत्।**
**बहवो जीवा योनौ हिंस्यन्ते मैथुने तद्वत्॥**

जैसे तिलो से भरी हुई नाली मे लोहे की खूब तपी हुई सलाई के डालने

पर सव तिल जल-भुन जाते है। उसी प्रकार पुरुष के मैथुन करने पर स्त्री की योनि मे जो वहुत जीव उत्पन्न होते हैं, वे भी पुरुप-लिंग की उष्णता के सम्पर्क से मर जाते हैं।

इन सव प्रमाणो से सिद्ध है कि जो काम-विलासी जीव हैं, वे स्त्री-सयोग करने पर असख्य जीवो का घात करते है। यहा कोई प्रश्न करे कि फिर तीर्थकरो ने विवाह क्यो किया ? इसका उत्तर यह है कि उनके भी उस प्रकार के चारित्रमोह कर्म का उदय आया, तो उन्हे भी उस प्रकार के भोगो को भोगने के लिए विवश होना पडा। क्योकि उदय मे आये हुए कर्मों को भोगे विना छुटकारा नही हो सकता। जो जो वलावल के परमाणु निकलना हैं, वे निकले विना नही रहते। भगवान् ने स्वय ही कहा है—

**'कडाण कम्माण ण मोक्ख अत्थि'** अर्थात् किये हुए कर्मों का फल-भोगे विना मोक्ष नही मिल सकता है।

हा, तो यह चेतन आत्माराम मोह की गहरी निद्रा मे सो रहा है। उसे नीद मे भोगरूपी स्वप्न आया कि मैं परदेश गया, वहा पर खूब व्यापार किया और अपार धन कमाया। फिर मैंने विवाह की तैयारी की और वारात सजाकर ले गया। एक सुन्दर स्त्री से शादी की और घर लाकर उसके साथ विपय-सेवन कर रहा हू। यह एक भोग का स्वप्न है। इसी प्रकार के अन्य अनेक स्वप्न अज्ञान दशा मे यह आत्माराम देखता रहता है और उस-उस स्वप्नावस्था मे जैसी-जैसी स्थिति प्राप्त होती है, तदनुसार वह उसमे ढुलकता रहता है और उसमे लीन होता रहता है। उसे पता ही नही चलता है कि मैं क्या कर रहा हू, किधर जा रहा हू, ये कार्य मेरे लिए हानि-कारक, चिन्ता-जनक और भयोत्पादक है ? इनमे मुझे भयकर यातनाए भोगनी पडेगी। अत मुझे इनसे दूर रहना चाहिए। परन्तु जानते हुए भी वह इस कीचड से नही निकल पाता है। इन वन्धनो से मुक्त होने की इसकी इच्छा ही नही है। कभी उनसे छूटने का प्रयत्न ही नही करता है। लेकिन जव तक यह अपने कर्म-वन्धन रूपी वेडियो को नही काटेगा, तव तक उसका विकास होना असम्भव है।

## भूल-भुलैया

भाइयो, देखो—कितने आश्चर्य की बात है कि पहिले की जो पूंजी है, उसकी तो यह आत्माराम रखवाली कर नही पा रहा है, उसके लिए बेचैन और चिन्तातुर है कि इसकी कैसे रक्षा करू ? किन्तु नयी पूंजी कमाने के लिए, धन-सग्रह करने के लिए दौड-धूप कर रहा है। बताओ फिर यह उसे कैसे सम्भालेगा ?

और भी देखो—किसी सेठ के चार लडके है। उसने बडे लडके की शादी कर दी। शादी होते ही वह अपने मा-बाप से अलग हो गया। उसने मा-बाप की सुधि लेना भी छोड दिया। फिर सहायता देने और सेवा-टहल की तो बात ही दूर है। अब वह सेठ कहता है कि दूसरे लडके का विवाह करना है। अरे भाई, पहिले ने तुझे कौन सी सुख-शान्ति दे दी और अपने कर्त्तव्य का कौन-सा पालन किया। परन्तु इसकी कोई चिन्ता न करके दूसरे लडके का भी विवाह कर दिया। विवाह होते ही दुर्भाग्य से वह भी बाप से अलग हो गया। अब बाप दो लडको के सुख से वचित हो गया। फिर भी वह तीसरे लडके की शादी का आयोजन करने लगा। तब किसी हितैषी बन्धु ने आकर कहा—अरे, दो विवाहित लडको ने तुझे कौन-सा सुख पहुचाया है ? कौन-सी सेवा की है ? फिर भी वह कहता है कि इसे परणाना तो पडेगा ही। अब उसने तीसरे लडके को भी परणा दिया। परन्तु बदकिस्मती से उसने भी अपने दोनो बडे भाइयो का अनुकरण किया और शादी होते ही मा-बाप से अलग हो गया। अब कहो—मा-बाप को क्या सुख मिला ! उसने अपना जीवन पूरा दुखदायी बना लिया। इस प्रकार वह लडको की शादिया करता भी जाता है और पश्चात्ताप भी करता जाता है कि मैंने इनकी शादिया करके बडी भूल की है। अरे एक ही भूल क्या की ? तू तो भूल पर भूल करता ही जा रहा है और अब चौथे लडके की शादी की। वह भी शादी के तुरन्त बाद अलग हो गया। ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि यह आत्माराम भूल-भुलैयो के जाल मे ऐसा फसा हुआ है कि इसका निकलना ही नही हो रहा है। अरे भाई, इन चौरासी लाख योनियो मे से एक मानव-योनि ही ऐसी है कि यहा आकर तू इस भवर-जाल से अलग

हो सकता है। अन्यथा दूसरी गतियो या योनियो मे इस जाल से अलग होने का कोई उपाय नही है। इस मानव भव को पाकर के भी तू कैसे निकल सकता है ? ये चाविया भगवान की वाणी मे है। यदि हम उन चावियो को प्राप्त कर ठीक रीति से ताले को खोले, तो ताला खुलने मे कोई देर नही लगेगी। और फिर ठीक रास्ता मिल जायगा। वे चाविया वर्तमान मे गुरुओ के पास हैं और वे ही तेरे भव-वन्धन के ताले खोलने मे समर्थ है। इसलिए क्या कर ?

**सुगुरु सग धार, धार, रे धार; कुगुरु सग टार, टार, रे टार ॥**
**सुगुरु है सुर-तरु-सा जग मे, आत्म-रस भरा जो रग-रग मे।**
**सुगुरु हैं सहायक शिव-मग में, ज्ञान-गुण शोभित हैं नग में ॥**
**जन्म जरा मृत्यु सभी, महादुखों की खान।**
**उनसे अलगा जब हुए सरे, धरे सुगुरु को ध्यान ॥**
**हृदय से परख सार तू सार, सुगुरु सग धार, धार, रे धार ॥**

वे जिनागम की चाबिया सुगुरु के पास है। उनकी शरण लेलो। परन्तु गुरु कौन ? मैं फलानचन्द जी का चेला हू, मैं अमुक सम्प्रदाय में हू, मैं आपके पन्थ मे हू, मैं अमुक के गच्छ मे हू। भाई, क्या उन-उन सम्प्रदाय, गच्छ, पन्थ या समाज के गुरु हाथ पकड़ कर तुझे मोक्ष मे पहुंचा देंगे ? नहीं ? अरे, सच्चा गुरु तो वही है जिसके द्वारा हमारे हृदय का परिवर्तन हो जाय। हमारे हृदय मे एक अद्भुत ज्योति जल जाय और यह भान हो जाय कि मैं अभी तक गलत रास्ते पर था। अव इन्होंने मुझे सही ज्ञान दिया और मैं ठीक रास्ते पर आया हू। अत यही मेरे सच्चे गुरु है। फिर उनकी सेवा मे रहकर, भक्ति और उपासना करके विनय पूर्वक पूछे कि हे कृपालु गुरुदेव, मेरी मुक्ति की कूची कौन सी है, कृपा करके मुझे वतलाइये, ताकि मैं अपने को ठीक मार्ग पर लेजा सकू। शिष्य के द्वारा इस प्रकार प्रार्थना करने पर गुरु कसौटी पर कस कर देखते हैं—परीक्षा करते हैं कि यह शिष्य कूची देने के योग्य है, अथवा नही ? यदि शिष्य को योग्य देखेंगे, तव तो कूची दे देंगे। अन्यथा अयोग्य व्यक्ति को कूचिया नही देंगे।

भाइयो, आप लोग भी तो बहुत सयाने है। आप भी अपने बडे लडके को तिजोरी की चाबी तभी देते है, जब आपका उस पर पूर्ण रूप से विश्वास हो जाता है। कोई भी बिना सोचे-समझे नही दे देता है। इसी प्रकार जब गुरु महाराज के हृदय मे शिष्य के प्रति शत-प्रतिशत विश्वास जम जाता है, तभी वे जिनागमो की चाबिया उसे देते है। अन्यथा वे भी नही देते है। क्योकि अयोग्य और अविनीत शिष्य को आगम की चाबिया देने पर कभी-कभी भारी नुकसान और बिगाड की सम्भावना रहती है। शिष्य कैसा होना चाहिए ? इसके विषय मे आचार्य कहते है कि—

**गुरुभक्तो भवाद्भीतो विनीतो धार्मिकः सुधीः।**
**शान्तस्वान्तो ह्यतन्द्रालुः शिष्टः शिष्योऽयमिष्यते ॥**

जो गुरु का भक्त हो, गुरु पर परम श्रद्धा रखने वाला हो, ससार से भयभीत हो, विनीत हो, जिसके अहकार का लेश भी न हो, धर्मात्मा हो, बुद्धिमान् हो, शान्त-चित्त हो, आलस्य और प्रमाद से रहित हो और शिष्ट हो अर्थात् गुरु के अनुशासन मे चले-ऐसा सभ्य हो, वही योग्य शिष्य कहा जाता है। उक्त गुणो मे से किसी भी गुण मे कमी होने पर गुरु उस पर शास्त्रो का रहस्य प्रकट नही करते है।

हा, तो मैं कह रहा था कि मनुष्य के हृदय मे भावो की परिणतिया नित्य बदलती रहती है। इन बदलने वाली वृत्तियो का बदलना बन्द करो और उन्हे एक रूप मे रखो—अपनी एक प्रकृति बना लो। यहा पर कोई कहे—महाराज, कोई कसाई है, शिकारी है, जुआरी है, वेश्यागामी है अथवा चोर है। और वह कहे कि मैंने तो अपनी एक प्रकृति करली है। मैंने जिस काम को पकड लिया है, उसको छोडने वाला नही हू। और गुरुदेव, आप कहते हैं कि एक प्रकृति बना लो। तब फिर आप मेरी इस एक प्रकृति का विरोध क्यो करते हैं ? भाई, बात ऐसी है कि इस एक प्रकृति से तो उलटा नुकसान होगा। इसमे आत्मा का सुधार नही हो सकता। यदि एक प्रकृति को ही पकडनी है तो ऐसी पकडो कि जिससे ठीक मार्ग की प्राप्ति हो। तभी सद्गुरु सही बात बना सकेंगे। परन्तु जिस गुरु के पास सही वस्तु नही है, यदि उसे कोई मानकर

बैठ भी जायगा तो समय पर उसे नीचा देखना पडेगा। उससे उसका उत्थान नही होगा। हा, पतन अवश्य होगा।

**अपना घर या पराया घर !**

किसी नगर के एक सेठ के घर मे दारिद्रय आगया। ग्रहदशा और पापके उदय से दिन-मान बुरे आगये। उसका सारा धन निमित्त पाकर विनष्ट हो गया। अरे, धन-सग्रह करने मे देर लगती है। परन्तु जाने मे क्या देर लगती है। कई पीढियो का सचित धन भी क्षणभर मे चला जाता है। आज हम और आप ऐसे कई दृश्य अपनी आखो से देखते जा रहे हैं। जिन राजा और रईसो के पास सैकडो पीढियो से सचय किया हुआ धन था, किन्तु ऐसे-ऐसे तूफान आकर खडे हो गये कि सरकार ही उनसे उनकी सम्पत्ति छीनने को तैयार हो गई है। अब बताओ—वे उसे कहा छिपावे और कहा जाकर गाडे। उनकी राज्य-सम्पत्ति जाने मे देर नही लगी।

यद्यपि, वह सेठ बुद्धिमान् था, खानदानी था। परन्तु जब दिन-मान ही उल्टे आगये, तब वह जो भी काम करे, वह उल्टा ही होने लगा और घाटे पर घाटा होता गया। कुछ दिनो मे यहा तक नौबत आगई कि खाने के भी फाके पडने लगे। परन्तु ऐसी स्थिति आ जाने पर भी उसने किसी के सामने जाकर हाथ नही पसारा। वह यही विचारता रहता कि जो होना होगा, वह होगा। परन्तु मैं अपनी इज्जत-आबरू को कैसे तिलाञ्जलि दे दू। भाई, जो मनस्वी होते है वे कैसी भी स्थिति आ जाय, दूसरो के आगे हाथ नही पसारते है। कहा भी है—

'रोचते न हि शौण्डाय पर पिण्डादिदीनता'।

अर्थात् शूरवीर और मनीषी पुरुष को दूसरो मे अन्न-पिण्ड आदि की याचना करना और अपनी दीनता प्रकट करना नही रुचती है। अत वह सेठ घर के भीतर जिस किसी प्रकार से अपना निर्वाह करता रहा। पर किसी के सामने जाकर न कभी हाथ नही पसारा और न किसी को अपनी दुरवस्था का सकेत ही किया।

परन्तु भाई, किसी का हानि-लाभ छिपाये नही छिपता है। वह तो प्रकट

होकर के ही रहता है। जब जाति के लोगो को पता लगा कि आजकल अमुक सेठजी की दशा कमजोर हो गई है, तब जाति के कुछ प्रमुख व्यक्ति उनके यहा गये। पहिले के समय मे जो समाज के मुखिया, पच और चौधरी होते थे, वे समय-समय पर जाति के सब लोगो को सम्भालते रहते थे कि किस की कैसी हालत है ? जिन्हे वे गिरती हालत मे देखते-उन्हे उठाने का प्रयत्न करते और सर्व प्रकार से उनका स्थितीकरण करते और तन-मन-धन से सहायता देकर अपना वात्सल्य-भाव प्रकट करते थे। तभी वे जाति के मुखिया और सर-पच माने जाते थे। परन्तु जिन्हे जाति की कोई चिन्ता नही है, भले ही वे कितने ही धनी क्यो न हो, पर सरदार, मुखिया या वडे आदमी कहलाने के योग्य नही है। वे तो केवल अपना पेट भरने वाले उदर-पाल है। ऐसे लोगो के लिए कवि कहते हैं—

**लियो नहि जस वास जगत मे, तू तो 'जसा' कहा आय कियो है,**
**मानुष रूप भयो मृग-सावक, पेट भर्‌यो भुवि भार दियो है।**
**लोकनि में पत जाकी नहीं, अखियारथता फो जन्म जियो है,**
**मात को जोवन घात कियो, कछु जातो न सम्बल साथ लियो है॥**

यदि ऐसे पृथ्वी के भार और माता के यौवन-हारक लोग कभी किसी के घर पहुच भी जाये, तो भी वे क्या सरदारगिरी करने के योग्य है। अरे, ऐसे लोग तो सरदार नही, किन्तु मुर्दार है।

हा, तो कुछ सज्जन एव जाति के प्रमुख लोग उन सेठजी के घर गये। उन सरदारो को अपने घर आया हुआ देखकर वह सेठ उठा और चार-छह कदम आगे जाकर उनका अभिवादन किया और आदर-सन्मान के साथ गादी पर बैठाया। आनेवाले सरदारो ने पूछा—सेठ साहव, आपकी तवियत तो ठीक है न ? उसने कहा—आप सब महानुभावो की कृपा से सब ठीक है। फिर पूछा कि आजकल आप वाजार मे क्यो नही पधारते है ? जब तवियत ठीक है तो कम से कम वाजार मे तो आना जाना चाहिए। सेठ बोला—भाइयो, अभी जरा स्थिति ऐसी ही है। उन लोगो ने कहा—हा, हमे भी कुछ ऐसा ही पता चला, इसी करण हम लोग आपसे मिलने के लिए आये हैं। आप घबराये

नही। हम आपके हैं और आप हमारे हैं। हमारे पास जो कुछ है, उसमे आपकी भी सीर है और आपके पास जो कुछ है, उसमे हमारा भी हिस्सा है। हम और आप दो नही है। एक मूग के ही तो दो फाड है।

भाइयो, उस जमाने मे जाति के सरदारो के कितने ऊँचे विचार थे ? आप भी इतने सरदार यहा बैठे हैं ? आपने भी कभी जाकर किसी को पूछा है क्या ? अरे भाई, सिर ही हिलाते रहोगे, या जबान से भी कहोगे ? अभी तो कह देते हो कि हा महाराज, करेंगे। परन्तु पीछे जाकर भूल जाते हो। पर भाई, ख्याल रखना, ये ठाटबाट आदि न तो आपके पुरखे साथ ले गये और न आप भी ले जाओगे। इसलिए मेरा तो यही कहना है कि आप लोगो ने मनुष्य भव पाया है और समृद्धिशाली बने हो तो कुछ कर जाओ, जिससे आपका नाम अमर हो जाय। अन्यथा—

सब ठाठ पडा रह जावेगा, जब लाद चलेगा बजारा।
कज्जाक[1] अजल[2] का लूटे है दिन रात बजाकर नक्कारा ॥ टेक ॥

गर तू लक्खी बनजारा है, और खेप भी तेरी भारी है ?
अय गाफिल तुझसे भी चढता, एक और बडा बेपारी है ॥
क्या शक्कर मिश्री कंदगिरी, क्या साँभर मीठा खारा है ?
क्या दाख मुनक्का सोठ मिरच, क्या केशर लोग सुपारी है ॥
सब ठाठ पडा रह जावेगा जब० ॥ १ ॥

यह खेप भरे जो जाता है, वह खेप मिया मत गिन अपनी।
अब कोई घडी पल साअत[3] मे, यह खेप बदन की है कफनी ॥
क्या थाल कटोरे चादी के, क्या पीतल की डबिया ढकनी।
क्या बर्तन सोने रूपे के, क्या मिट्टी की हडिया अपनी ॥
सब ठाठ पडा रह जावेगा जब० ॥ २ ॥

यह धूम धडाका साथ लिए, क्यो फिरता है जगल-जगल ?
इक तिनका साथ न जावेगा, मौजूद हुआ जब आन अजल।

---

१ डाकू, लुटेरा। २ मौत-काल। ३ समय।

घर बार अटारी चौपारी, क्या खासा ननसुख और मलमल ।
क्या चिलमन पर्दे फर्श नये, क्या लाल पलंग और रंगमहल ।
सब ठाठ पडा रह जावेगा जब० ॥ ३ ॥

हर मंजिल मे अब साथ तेरे, यह जितना डेरा डांडा है ?
ज़र[१] दाम दिरन का भंडा है, बन्दूक सिपाह[२] और खाडा है ?
जब नायक तन से निकलेगा, जो मुल्को-मुल्को हाडा है ।
फिर हाडा है न भाडा है, न हलवा है न भाडा है ॥
सब ठाठ पडा रह जावेगा जब० ॥ ४ ॥

कुछ काम न आवेगा तेरे यह लाल[३] जमुर्रद सीमोजर[४] ।
सब पूंजी बाट मे बिखरेगी, जब आन बनेगी जाँ ऊपर ॥
नौबत नक्कारे वान निशा[५] दौलत हशमत[६] फौजें लश्कर ।
क्या मसनद तकिया मुल्क मका, क्या चौकी कुरसी तख़्त छतर ॥
सब ठाठ पडा रह जावेगा जब० ॥ ५ ॥

क्यो जी पर बोझ उठाता है, इन गोनो भारी-भारी के,
जब मौत लुटेरा आन पडा, तब दूने है बेपारी के ।
क्या साज़ जड़ाऊ जड जेवर, क्या गोटे थान किनारी के,
क्या घोड़े ज़ीन सुनहरी के, क्या हाथी लाल अभारी के ॥
सब ठाठ पड़ा रह जावेगा जब० ॥ ६ ॥

मग़रूर[७] न हो तलवारो पर, मत भूल भरोसे ठालो के ।
सब पटा टोड के भागेंगे, मुंह देख अजल के भालो के ॥
क्या डिब्बे मोती हीरो के, क्या ढेर खजाने मालो के ।
क्या बुग़चे[८] तार मुशज्जर[९] के, क्या तख्ते शाल दुशालो के ॥
सब ठाठ पडा रह जावेगा जब० ॥ ७ ॥

---

१ धन-दौलत । २ सेना-फौज । ३ माणिक । ४ पन्ना । ५ ध्वजा । ६ शान, गौरव । ७ अभिमानी । ८ कपडे की पोटली । ९ वेल बूटो वाला ।

क्या सख्त मका वनवाता है, खम[१] तेरे तनका है पोला,
तू ऊँचे कोट उठाता है, वहा तेरी गौर[२] ने मुंह खोला।
क्या रेती खंदक रूंद वडे, क्या वुर्ज, कंगूरा अनमोला,
गढ कोट रहलवा तोप किला, क्या शीसा दारू और गोला ॥
सव ठाठ पडा रह जावेगा जव० ॥ ८ ॥

हर आन नफे और टोटे मे, क्यो फ़ला फिरता है वन-ठन,
अय गाफिल मन मे सोच जरा, है साथ लगे तेरे दुश्मन।
वया लौडी वादो दाई ददा, क्या वन्दा चेला, नेक चलन,
क्या मन्दिर मस्जिद ताल कुए क्या घाट सरा क्या वाग चमन ॥
सव ठाठ पडा रह जायेगा जव० ॥ ९ ॥

जव चलते चलते रस्ते मे, यह गौन तेरी ढल जावेगी,
इक वधिया तेरी मिट्टी पर, फिर घास न चरने आयेगी।
यह खेप जो तूने लादी है, सव हिस्सो मे वंट जावेगा,
धी पूल जवाई त्रेटा क्या, वनजारिन पास न आयेगी।
सव ठाठ पडा रह जावेगा जव० ॥ १० ॥

जव मुर्ग फिरा कर चावुक को, यह वैल वदन का हाकेगा।
कोई नाज समेटेगा तेरा, कोई गौन सिए और टाकेगा।
हो ढेर अकेला जगल मे, तू खाक लहद[३] की फाकेगा।
उस जंगल मे फिर आह 'नज़ीर' एक तिनका आन न झांकेगा ॥
सव ठाठ पडा रह जावेगा जव० ॥ [illegible] ॥

हा, तो उन मुखिया-पच-सरदारो ने प्रेम भरे [illegible]
दी। उन लोगो के सहानुभूति भरे शव्दो को [illegible]।
वह यद्यपि अपने आन्तरिक दुख को [illegible],
तथापि अनायास ही आखो से दो गर्म [illegible]
समय याद आगया। यह देखने [illegible]

---

१ हाड। २ कब्र। ३ [illegible]

है। इस कहावत को ध्यान मे रखकर उन पचो ने उसे दिसावर भेज दिया और मार्ग-व्यय की समुचित व्यवस्था कर दी।

सेठ का वह लडका इधर-उधर घूमता हुआ एक वडे शहर मे पहुचा। उसकी वहा एक वडे सेठिया से भेंट हो गई। लडके को सर्वप्रकार से योग्य देखकर उसने उसे अपने पास रख लिया। उसकी कार्य-कुशलता से वह सेठिया बहुत प्रभावित हुआ। उसके कोई सन्तान नही थी। अत उसने इसे गोद लेने का विचार किया और अपनी सेठानी के साथ विचार-विमर्श करके शुभ-मूहूर्त्त मे उसे गोद ले लिया।

सेठिया के पास अपार सम्पत्ति थी। धीरे-धीरे उसने लडके की सव ओर से परीक्षा करके उसे सारा कारोवार सम्भला दिया और अच्छे खानदान की लडकी के साथ उसकी शादी भी कर दी। सेठ-सेठानी घर-भार से निवृत्त हो करके निराकुलता पूर्वक धर्मसाधन करने लगे।

अव लडके के हाथ मे घर की सत्ता आते ही व्यापार को खूब वढाया और कमाई मे सेठ से भी वहुत आगे वढ गया। उसके व्यापार-कुशलता की चारो ओर चर्चा होने लगी। परन्तु जव से वह घर से चला तव से लेकर आज तक उसने घरवालो को कोई भी कुशल-समाचार नही भेजे। वह यहाँ के सेठिया-पन मे ऐसा भूला कि माँ-वाप और गाँव के सरदारो को, जिन्होने कि इसे पढाया लिखाया था और खर्चा देकर परदेश भेजा था—उन सवको भी भूल गया। पिता ने और पच लोगों ने अनेक पत्र भेजे, मगर यह उन सव पत्रो को पढ़कर गादी के नीचे दवाकर रखने लगा। उसने पत्रो का उत्तर देना भी उचित नही समझा।

इधर जव लगातार भेजे गये कितने ही पत्रो मे से एक का भी उत्तर नही आया, तव गाव के वे सव सरदार लोग उसके वाप के पास गये और पूछा कि क्या लडके का कोई समाचार आया है? उसने कहा एक भी पत्र नही आया और न कोई कुशल-समाचार ही कही से मिला है। तव सव पचो ने पत्र लिखकर रजिष्ट्री से भेजा। लडके ने इस रजिस्टर्ड पत्र को भी पढकर

जर्जरित हो चुका था। जिस किसी प्रकार वह पैदल चलता हुआ उस शहर मे पहुच गया। शहर के वाहिर अनेक वाग-वगीचे और वगले मिले। पूछने पर ज्ञात हुआ कि ये सव उसी के लडके के है, जो आज वहा का सबसे वडा सेठ वनकर वैठा है। वह पूछता हुआ अपने लडके की हवेली के सामने पहुचा। देखा कि सतमजिली हवेली है, ऊपर ध्वजा फहरा रही है और दीवानखाने मे अनेक मुनीम, गुमास्तो का काम देखता हुआ उसका लडका सेठ वना गादी पर मसनद से टिका हुआ वैठा है। रास्ते मे उसने लोगो के मुख से अपने लडके की वडी प्रशसा सुनी। सभी लोगो ने कहा जव से हमारे यहा के सेठिया ने इस लडके को गोद लिया है, तभी से इसने खूव कारोवार सभाला है। सम्पत्ति को कई गुणवढा दिया है। इसका सभी के साथ व्यवहार वहुत उत्तम है। इसके समान दूसरा यहा पर कोई नही है।

लोगो के मुख से ऐसी प्रशसा सुनते हुए उसका हृदय भी हर्ष से गद्गद हो गया। भाई, ऐसा कौन व्यक्ति होगा, जिसे कि अपने पुत्र की प्रशसा सुनकर आनन्द न हो। वह सोचने लगा कि लडके ने परदेश मे आकर मेरे नाम को तो वदनाम नही किया है। अव स्वय उसके पास जाकर देखू कि मामला क्या है ? जो उसने पत्रो तक का भी उत्तर नही दिया। ऐसा विचार करता हुआ वह सेठ जव हवेली के सामने पहुचा और दीवानखाने की ओर देखा कि उस लडके की भी दृष्टि अपने पिता पर अचानक पड गई। वह सोचने लगा—अरे, यह वुड्ढा यहा कहा से आगया ? इसके फटे-पुराने कपडे है और सारा शरीर धूलि-धूसरित हो रहा है। यदि मैं उठकर इसके सामने जाऊँ और इसका अभिवादन करू, तो वडी हसी होगी ! लोग क्या कहेगे—कि ऐसा दरिद्र इसका वाप है। यह भी सठिया गया है, जो कि इसी हालत मे यहा आ धमका है। यह सोचकर उसने अपना मुख दूसरी ओर फेर लिया।

भाइयो, वताओ—उसे ऐसा विचार क्यो आया ? क्योकि वह अपना घर भूल गया और पराये घर मे जा वैठा और उसे ही अव अपना मानने लगा है। मै आपसे पूछता हू कि आप लोग अभी अपने घर मे हो, या पराये घर मे ? यदि आप घर मे है, तव तो आपको वह उपदेश सुनने और मुझे सुनाने

की आवश्यकता ही नही है। परन्तु अभी आप लोग पराये घर मे है और मोरिये मल्हार गा रहे , तभी अपना घर भूले हुए है।

जव सेठ ने देखा कि मुझे देखते ही लडके ने अपना मुख फेर लिया तो वह समझ गया कि इसे मुझसे मिलने मे शर्म आ रही है। परन्तु मुझे तो मिलने मे शर्म नही आनी चाहिए। आखिर यह वेटा तो मेरा ही है। मुझे किसी से कुछ पूछने की आवश्यकता नही है। मैं चलकर गादी पर वैठता हू। देखता हू कि मुझे वैठने से कौन रोकता है? ऐसा विचार कर वह सेठ नि सकोच-भाव से सीढिया चढा और पैरो व कपडो की धूल झटकारे विना ही उज्ज्वल चादनी वाली गादी पर जा बैठा। यह लडका मन-ही-मन वडा लज्जित हुआ और सोचने लगा कि आज तो इसने मेरी सारी इज्जत धूल मे ही मिला दी और सारा गुड ही गोबर कर दिया। लज्जा के मारे लडके ने सिर भी ऊपर नही किया। सेठ सोचने लगा कि मैं इसकी छाती पर भी आकर के बैठ गया हू। मगर फिर भी इसे अभी तक शर्म नही आ रही है और मेरे से वोल तक भी नही रहा है। यह देख सेठ का पारा चढ गया और आखो मे खून उतर आया। वह लडके की ओर घूर-घूर कर देखने लगा।

गादी पर ऐसे धूलि-धूसरित और शरीर से जर्जरित पुरुप को आकर बैठता हुआ देखकर मुनीम, गुमास्ते आदि सभी लोग आश्चर्य-चकित रह गये। वे सोचने लगे कि यह कौन है, जिसने किसी से कुछ पूछा तक भी नही और ऐसे ही धूलि भरे पैरो से आकर गादी पर हमारे मालिक के पास आ वैठा है? परन्तु इसके चेहरे की रगत को देखकर किसी को भी इससे कुछ पूछने की हिम्मत नही हुई। प्रधान मुनीम ने इस वात पर गहराई से विचार किया कि आज तो यह आकर वैठा है, कल और कोई आकर बैठ जायगा। इससे तो पेढी की इज्जत को धक्का लगता है। इसलिए इस व्यक्ति से चलकर पूछना तो चाहिए। ऐसा विचार कर प्रधान मुनीमजी अपने स्थान से उठकर इसके पास आया और पूछा—सेठ साहव, आपका क्या नाम है और कहा विराजते है?

प्रधान मुनीम के ऐसा पूछने पर रूखा सा उत्तर देते हुए यह सेठ वोला—क्यो क्या तुझे सगपण करना है? अपना काम करो। मुनीम सोचने लगा—

अरे, यह तो बोलते ही चेटता है ? यह तो ऐसे बोलता है, जैसे इस पेढी का मालिक ही हो। अब तो मुनीमजी भी तेज होकर बोले—सेठ साहब, सीधी बात पूछने पर भी आप टेढा उत्तर देते हैं। मैं आपसे पूछता हू कि आपका क्या नाम है, आप कहा से आ रहे हैं और सेठ साहब के आप कौन लगते हैं ? आप सीधी रीति से या तो उत्तर दीजिए अन्यथा ठीक नही होगा।

तब सेठ ने शान्ति से कहा—मुनीमजी, आप क्या पूछना चाहते हैं ? मुनीमजी ने कहा—मैं केवल यह पूछना चाहता हू कि आप हमारे सेठ जी के क्या लगते हैं ? तब सेठ ने कहा—मुझे लगने का तो पता नही है। परन्तु इतना अवश्य जानता हू कि मैं इसकी मा का माटी (पति-धनी) अश्वय हू। यह सुनते ही मुनीमजी सोचने लगे कि मा का माटी तो बाप होता है। जब मुनीमजी ने दोनो के चेहरो की ओर गौर से देखा तो उसका सन्देह सर्वथा दूर हो गया। मुनीम यह देखकर स्तम्भित-सा रह गया। वह विचार करने लगा—ओ हो, बाप ऐसा दुखी ! ऐसी विषम-परिस्थिति ! फिर भी बाप बेटे के द्वार पर आया। परन्तु लडका कितना निर्लज्ज और अहकारी है कि इसने उठकर अपने बाप को नमस्कार तक भी नही किया। उनके चरण-स्पर्श भी नही किये। और दूसरी ओर मुख करके बैठा हुआ है।

जब यह भेद खुल गया कि ये तो सेठजी के पिताजी ही है, तब मुनीमजी अपने स्थान पर जा बैठे। उन्हे अपने मालिक का यह व्यवहार सह्य नही हुआ और उन्होने सेवा से मुक्त होना ही ठीक समझा। अत उसने रोकड मिलाई और ताला लगाकर सेठ को देते हुए कहा कि आज तक का हिसाब-किताब मैंने कर दिया है। आगे के लिए दूसरा मुनीम की तजवीज कर लेवे। मैं आप जैसे पितृ-द्रोही कृतघ्नो की सेवा करना पाप समझता हू।' यह कह कर वह अपने घर को जाने लगा।

मुनीम के शब्दो को सुनकर और जाते हुए देखकर इसकी आखे खुली और धीमे स्वर मे बोला—मुनीमजी, इन्होने इस प्रकार आकर सबके बीच मे मेरी इज्जत-आबरू पर पानी फेर दिया। तब सेठ ने कहा—अरे नालायक, तेरे भीतर कुछ महाजना होता, तो गवाने की बात होती। तू करोडपति बन

कर तो यहा बैठा है। परन्तु जिन लोगो ने तुझे पढा-लिखाकर होशियार किया और कमाने के लिए यहा भेजा—उनकी रकम तो तुझे वापिस भेजनी चाहिए थी ? जब तुझे अपने मा-बाप से मतलब नही है, तब ऐसे बेटे से हमे भी कोई मतलब नही है। हम तो किसी न किसी प्रकार से अपना निर्वाह कर ही रहे है और जाति के सरदार लोग बहुत अच्छे है, सो सब काम चल ही जायगा। मगर तेरे ऊपर जो उन लोगो का ऋणभार है, उसे तो तुझे उतारना चाहिए था। और उसी के लिए मैं इस अशक्त-अवस्था मे तुझसे कहने के लिए आया हू। अन्यथा मुझे तेरी और तेरे धन की कोई आवश्यकता नही है।

बस, इतना कहकर वह सेठ उसकी पेढी से नीचे उतरकर घर को वापिस चल दिये। अब लडके को होश आया और पर-घर से निज-घर मे आगया। अपने दुष्कृत्यो का पश्चात्ताप करने लगा—हा, इन चादी के चद टुकडो की चकाचौंध मे मैं पागल हो गया—पर-घर मे कितना विमोहित हो गया कि अपने घर के और घरवालो को ही भूल गया। हाय, जिन्होने मेरे ऊपर इतने उपकार किये है, मैंने उन्हे ही विसार दिया ! ऐसा मन मे पश्चात्ताप करता हुआ वह पिता के सामने पहुंचा, उनके पैर पकडे और अपनी भूलो के लिए क्षमा मागी। तथा भविष्य मे ऐसी भूल नही करने के लिए प्रतिज्ञा की, और वापिस लौटने के लिए कहा।

पिता ने कहा—अब मुझे तेरी आवश्यकता नही है। जब तू अपने घर को ही भूल गया, तब औरो की क्या बात है ! लडके ने बहुत अनुनय-विनय करके अपने पिता को प्रसन्न किया और कहा—मैं यह सब पर-घर-वास छोडकर आपके साथ चलता हू। तब पिता का चित्त शान्त हुआ। वह उस सेठिये का सब कारोबार उन्हे सौंपकर और अपनी स्त्री को साथ लेकर पिता के साथ घर को रवाना होने लगा, तब उस सेठिया ने इसका और इसके पिता का समुचित आदर-सत्कार करके अपनी भूल के लिए क्षमा याचना की। मार्ग के लिए समुचित प्रबन्ध कर दिया और वह सेठ अपने लडके और पुत्र-वधू को साथ मे लेकर घर वापिस आगया। उस लडके ने सब पच सरदारो का ऋण चुकाया, अपनी भूल के लिए क्षमा मागी और माता-पिता के साथ अपने घर मे सुख से रहने लगा।

भाइयो, यह एक दृष्टान्त है। इसे दार्ष्टान्त पर घटाइये अपना आत्माराम भी अपने जिनेन्द्रदेव जैसे परमपिता को भूलकर अन्य को अपना पिता मानकर और पर घर मे जाकर उसे ही अपना घर मानकर वही मगन हो रहा है। अध्यात्म पदकार प० दौलतरामजी इस पर-घर-वास की दशा का चित्रण करते हुए अपने घर का स्मरण कराते हैं—

हम तो कबहु न निज घर आये।

पर घर फिरत बहुत दिन बीते, नाम अनेक धराये। हम०
पर-पद निज-पद मानि मगन ह्वै, पर परिणति लपटाये।
शुद्ध बुद्ध सुख-कन्द मनोहर, चेतन भाव न भाये॥ हम० १॥
नर पशुदेव नरक निज जान्यो, पर जय बुद्धि लहाये।
अमल अखड अतुल अविनाशी, आतम गुण नहि गाये॥ हम० २॥
यह बहु भूल भई हमारी पुनि, कहा काज पछताये।
'दौल' तजो अजहू पर-घर को, सत्गुरु वचन सुहाये॥ हम० ३॥

भाइयो, गुरु के रूप मे पच-परमेष्ठी तुम्हे बार-बार अपने घर की याद दिला-दिलाकर कहते हैं कि आज भी तुम पर-घर को छोडकर अपने घर आ जाओ। देखो—जब उस सेठ के लडके ने अपना निज घर सभाल लिया तो वह पूर्णरूप से सुखी हो गया। जब तक वह पराये घर मे था, तब तक वह अपने घर को और माता-पिता आदि स्वजनो तक को भूल गया। हम भी अपने परम पिता परमेश्वर की कहाँ परवाह कर रहे है? उस परम पिता ने हमे पुण्यवानी रूपी पूजी दी, जिससे हमे मनुष्य भव, आर्यक्षेत्र, इन्द्रिय-परिपूर्णता और सर्व-प्रकार की सोगात प्राप्त हुई। परन्तु फिर भी हम उस परम पिता को भूल गये है तो हम भी उस सेठ के पुत्र जैसे कृतघ्नी हुए, या नहीं? जैसे उस सेठ ने अपने लडके को चेताया, तो वह सुमार्ग पर आगया—अपने घर आकर सुखी बन गया—परन्तु अपने परम पिता तो हमे चेताने के लिए मोक्ष से उतर कर आने वाले नहीं है। हाँ, उनकी चिट्ठी-पत्री के रूप मे यह जिनवाणी हमारे सामने मौजूद है। पर हम तो उसे लडके के समान उस को गादी के नीचे दबाकर चलते जा रहे हैं। तथा भगवान् के मुनीम रूप मे प्रतिनिधि बनकर

ये साधुसन्त आपको चेता रहे है कि हे जगज्जीवो, अब भी चेतो, अपनी आखे खोलो और इस मोह-निद्रा को छोडो। अपने घर मे चलो और अपना कार्य-भार सभालो। इस पर घर के कार्य भार को तिलाञ्जलि दो। फिर चौरासी के चक्कर मे सदा के लिए छुटकारा मिल जायगा।

हम यदि अपनी प्रवृत्तियो की ओर ध्यान देंगे, अपनी इधर-उधर दौडती प्रकृति को सम्भालेंगे और समभावी वनकर एक स्थिर शुद्ध प्रकृति मे अवस्थित होंगे तो हम ससार से मुक्त हो जायेंगे। इसलिए अपनी शुद्ध प्रकृति मे रहने की आवश्यकता है।

वि० स० २०२७ भादवा सुदि १३
सिहपोल, जोधपुर,

●●

# २ | आत्म-स्वरूप

सज्जनो, आज आपके सामने आत्म-स्वरूप के सम्बन्ध में प्रकाश डाला जायगा। सबसे पहिले यह जानना आवश्यक है कि आत्मा का स्वरूप क्या है? शास्त्रकार कहते हैं—

> अरस मरूवमगधमव्वत्त चेदणा गुणमसद्द ।
> जाण अलिगग्गहण जीवमणिद्दिट्ठसठाण ॥

जीव रस-रहित है, इसमें कोई मधुर-तिक्त आदि रस नहीं पाया जाता। यह रूप-रहित है, क्योंकि इसमें कोई काला-पीला आदि वर्ण नहीं पाया जाता। यह गन्ध-रहित है, क्योंकि इसमें सुगन्ध या दुर्गन्ध नहीं है। यह स्पर्श-रहित है, क्योंकि इसमें हल्का-भारी आदि कोई स्पर्श नहीं पाया जाता है। आत्मा शब्द-रहित भी है और संस्थान-रहित भी है, क्योंकि इसमें किसी प्रकार का आकार नहीं पाया जाता। ये रूप-रसादि सब पुद्गल-जड द्रव्य के गुण-धर्म हैं। अतः यह इन सबसे रहित है और इसी कारण बाहिरी किसी लिंग अथवा चिह्न से नहीं ग्रहण किया जा सकता है। अब आप पूछेंगे कि फिर आत्मा का स्वरूप क्या है? इसका उत्तर आचार्य दे रहे हैं कि यह चेतना गुणवाला है। अर्थात् चेतना नाम ज्ञान और दर्शन का है। जानना और देखना यही आत्मा का स्वरूप है। अपने इस पौद्गलिक शरीर के भीतर जो 'अहमस्मि, मैं हूं

से साधुसन्त आपको चेता रहे है कि हे जगज्जीवो, अब भी चेतो, अपनी आखे खोलो और इस मोह-निद्रा को छोडो। अपने घर मे चलो और अपना कार्य-भार सभालो। इस पर घर के कार्य भार को तिलाञ्जलि दो। फिर चौरासी के चक्कर मे सदा के लिए छुटकारा मिल जायगा।

हम यदि अपनी प्रवृत्तियो की ओर ध्यान देगे, अपनी इधर-उधर दौडती प्रवृत्ति को सम्भालेगे और समभावी बनकर एक स्थिर शुद्ध प्रकृति मे अवस्थित होगे तो हम ससार से मुक्त हो जायेंगे। इसलिए अपनी शुद्ध प्रकृति मे रहने की आवश्यकता है।

वि० स० २०२७ भादवा सुदि १३
सिंहपोल, जोधपुर,

●●

# २ आत्म-स्वरूप

सज्जनो, आज आपके सामने आत्म-स्वरूप के सम्बन्ध मे प्रकाश डाला जायगा। सबसे पहिले यह जानना आवश्यक है कि आत्मा का स्वरूप क्या है? शास्त्रकार कहते हैं—

अरस मरुवमगधमव्वत्तं चेदणा गुणमसद्दं।
जाण अलिगग्गहण जीवमणिद्दिट्ठसठाणं॥

जीव रस-रहित है, इसमें कोई मधुर-तिक्त आदि रस नहीं पाया जाता। यह रूप-रहित है, क्योकि इसमे कोई काला-पीला आदि वर्ण नहीं पाया जाता। यह गन्ध-रहित है, क्योकि इसमे सुगन्ध या दुर्गन्ध नहीं है। यह स्पर्श-रहित है, क्योकि इसमे हल्का-भारी आदि कोई स्पर्श नही पाया जाता है। आत्मा शब्द-रहित भी है और सस्थान-रहित भी है, क्योकि इसमे किसी प्रकार का आकार नही पाया जाता। ये रूप-रसादि सब पुद्गल-जड द्रव्य के गुण-धर्म है। अत वह इन सबसे रहित है और इसी कारण वाहिरी किसी लिंग अथवा चिह्न मे नही ग्रहण किया जा सकता है। अब आप पूछेंगे कि फिर आत्मा का स्वरूप क्या है? इसका उत्तर आचार्य दे रहे हैं कि यह चेतना गुणवाला है। अर्थात् चेतना नाम ज्ञान और दर्शन का है। जानना और देखना यही आत्मा का स्वरूप है। अपने इस पौद्गलिक शरीर के भीतर जो 'अहमस्मि', 'मैं हूं'

इस प्रकार की प्रतीति होती है—ज्ञाता और द्रष्टापने का भान होता है—वही आत्मा का स्वरूप है।

आत्मा के इसी स्वरूप का आचार्य और भी स्पष्टीकरण करते है—

**एगो मे सासओ अप्पा णाण-दंसण लक्खणो।**
**सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे सजोग लक्खणा ॥**

मेरा आत्मा सदा एक शाश्वतिक ज्ञान-दर्शन लक्षण वाला है। इस ज्ञान-दर्शन के सिवाय जितने भी राग-द्वेषादिक भाव है, वे सब मेरे से वाहिर है और कर्म-सयोग से उत्पन्न हुए हैं।

**विकार-विभावजन्य है**

बस, आत्मा का स्वरूप यही है कि मैं अरूपी हू, मैं अमूर्तिक हू, मैं नित्य हू मैं शाश्वतिक हू और सदा ही ज्ञान-दर्शन स्वरूप हू। द्रव्य दृष्टि से मेरे भीतर कोई विकार नही है। यह जो राग-द्वेप रूप विकार दिख रहा है, वह पर-सयोग से दिख रहा है। जैसे कोई करोडपति सेठ चारो ओर दिसावरो मे अपनी दुकाने खोल दे। रकम उसके घर की है, दुकान और मकान भी घर के है। दुकानो मे माल भी भर-पूर भरा है। परन्तु फिर भी देखता है कि दुकानो मे लाभ नही हो रहा है, किन्तु प्रतिदिन नुकसान ही हो रहा है। तब वह सेठ विचारता है कि वात क्या है ? क्या मुनीम-गुमास्ते और रोकडिये महाप्रसाद कर रहे हैं ? अथवा घर मे हेरिया (शेरियो) पड गई है ? इन दो कारणो मे से कोई न कोई कारण अवश्य है जिससे लाभ नही हो रहा है ? क्योकि रकम का व्याज लगता नही है—कर्ज भी बाजार से आता नही है। फिर यह घाटा क्यो पडता जा रहा है। अव वह सेठ सभलता है और हानि के कारणो का अन्वेषण करता है। खूब छान-वीन करने पर सेठ को ज्ञात हुआ कि मुनीम-गुमास्ते तो नेक-नियत के साथ ईमानदारी से काम कर रहे है। इनकी ओर से तो घाटे का कोई काम दिखाई नही देता है। तब सेठ अपने घर की ओर लक्ष्य देते हैं—अपने भाई-बन्धुओ और बेटे-पोतो के विषय मे इधर-उधर से जानकारी प्राप्त करते है। अव उन्हे ज्ञात हुआ कि घर के ही भाई-बन्धु

और वेटे-पोते दुकानो से रकमे ले लेकर अपनी जेवे भर रहे हैं और अनाप-शनाप खर्चा कर रहे हैं । तव सेठ ने विचारा कि इस घाटे को रोकने का उपाय करना चाहिए। अन्यथा यह मेरी सारी पूजी ही समाप्त हो जायगी। क्योकि कहा है—

स्वापतेयमनाय चेत्सव्यय व्येति भूर्यपि ।
सर्वदा भुज्यमानोऽपि पर्वतोऽपि परिक्षयी ॥

अर्थात्—धन लाखो-करोडो का कितना भी क्यो न हो, यदि उसमे आमदनी न हो और निरन्तर व्यय होता रहे तो वह भारी धन भी एक दिन समाप्त हो जायगा। कोई पर्वत कितना ही वडा क्यो न हो, यदि उसमे से पत्थर-मिट्टी आदि प्रतिदिन निकाली जाय, तो एक दिन उसका भी विनाश हो जायगा।

ऐसा विचार कर सेठ ने सव घर के लोगो को एकत्रित किया और उनसे कहा—देखो, दुकाने तुम्हारी हैं और तुम लोग ही सव जायदाद के मालिक हो। मैं तो केवल इसकी रखवाली करने वाला हू। यदि इस प्रकार अनाप-शनाप ढग से खर्च करोगे और अपनी-अपनी जेवें भरोगे, तो फिर दुकान का नाम नही चल सकेगा और फिर एक दिन पेढी की प्रतिष्ठा को भी धक्का लग सकता है। अतएव ऐसा करो कि तुम लोगो का जितना दैनिक या मासिक खर्चा हो, उतना लेते रहो। उससे अधिक मत लो। अन्यथा तुम लोगो के हित मे अच्छा नही होगा। वस, वुद्धिमानो के लिए इतना सकेत ही पर्याप्त है। भविष्य मे इस प्रकार का कोई काम नही करना। इस प्रकार सेठ के समझाने पर सव परिवार वाले ठिकाने आगये।

इसी प्रकार आत्मा के सम्बन्ध मे भी विचार करना चाहिए, मेरे देव यथार्थवादी वीतराग निर्दोष सर्वज्ञ है, गुरु निर्ग्रन्थ और विपय-कपायो से रहित हैं और धर्म भी परम-अहिंसक और प्राणिमात्र का कल्याण करने वाला है। इतनी वाते शुद्ध होते हुए भी ससार के लोग कहते हैं कि यह झूठा है, चोर है, दुराचारी है, अन्यायी है, धूर्त्त है और दगावाज है। इसका विश्वास नही करना चाहिए। अरे, मैं ऐसे वचन कैसे सुन रहा हू? इसमे क्या कारण है? क्योकि

बिना कारण के कोई इस प्रकार के अपमान-कारक वचन नही कह सकता है ? तब विचार करने पर ज्ञात होगा कि मैं इन कर्मों के सग मे पडकर अपने आत्म-स्वरूप को भूल गया हू। अब मुझे सर्व प्रथम आत्म-स्वरूप का जानना आवश्यक है। बिना आत्म-स्वरूप के मनुष्य की प्रवृत्ति वहकाये गये आदमी जैसी होती है। जैसे किसी व्यक्ति ने किसी से कह दिया—देख, तू अमुक स्थान पर जाता तो है, परन्तु सावधान रहना। क्योकि वहा चुडैलन रहती है। मैने उसे वहा पर देखी है और उसे देखते ही एक आदमी मर भी गया है। अब वहम हो जाने के कारण पहिले तो वह वहां जायगा ही नही। यदि भूल से कभी चला भी गया और वहा पर किसी भली स्त्री को काम करते हुए देखा, तो उसे देखते ही वह चुडलन समझ कर बहम के कारण गिर गया और वेहोश हो गया। उसके समझने की शक्ति नष्ट हो गई।

इसी प्रकार किसी ने व्यापार किया। व्यापारी यह जानता है कि नफा और टोटा तो भाई-भाई है। आप लोग कहते तो हैं, परन्तु समझते कहा हैं ? जब नफा होता है, तब तो गाल फुला लेते है और जब टोटा होता है, तब चिन्ता करने लगते है। अब क्यो कहता है कि अच्छा लगा नुकसान ? अरे, घाटे को क्यो नही लेता है ? और क्यों कहता है कि मैं तो नफा लू गा ? आप लोग व्यापार करते हुए एक दूसरे को गिराना चाहते है। इसी प्रकार व्यापार करते हुए यदि नुकसान अधिक हो जाता है, तब कहता है कि मैं इसे चुका नही सकता। वह बहम मे पड गया। अत साधन होते हुए भी वह घाटे को पूरा नही कर सकेगा। किन्तु दूसरा व्यापारी जो पक्की छाती वाला है, उसने भी दुकान खोली। उसके पास कुछ भी पू जी नही थी, परन्तु हिम्मत के साथ व्यापार किया और धन कमाया, स्त्री को आभूषण बनवाये और दीगर खर्च-खाता भी निकाला। अव व्यापार करते हुए कदाचित् घाटा भी पड गया, तब भी उसे डरने की क्या आवश्यकता है ? वह घाटे को पूरा कर देगा। यदि दो-चार व्यक्ति मागने को आते हैं, तब वह कहता है—भाई साहब, मै तो देने को ही आरहा था। आपका जो निकलता हो, वह आप अभी ले लो। इस प्रकार वह दवा नही। इसी को कहते है सावधानी।

**कर्मों से दबो मत !**

भाइयो, इसी प्रकार अपना यह आत्मा अनन्त ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्यात्मक होते हुए भी यह मिथ्यात्व के बहकाने मे आगया। अब विचारता है कि अरे, ये कर्म तो अपार हैं। मैं इन कर्मों को कैसे जीत सकता हू। इनसे अपना पीछा छुडाना मेरे लिए सम्भव नही है। यह कमजोरी अपने मे आगई। और जब कमजोरी आगई, तब वह हार मे है। कहा है—

**कायरता किण काम री, निपट बिगाड़े नूर।**
**आदर में अधकी पडे, धोवा भर भर धूर ॥**

कायरता को क्या कोई मान देता है, क्या कोई खरीदता है, क्या कोई कायरता की प्रशसा करता है? अरे! युद्ध मे कायर भी कटे है और वीर भी मरे हैं। परन्तु जिन वीरो ने हसते-हसते सिर दे दिया तो उनके नाम इतिहास मे आज तक अमर है और आगे चिरकाल तक अमर रहेंगे। परन्तु कायरो का नाम क्या कभी अमर हुआ है, जो कदम से कदम रखते हुए आगे बढते जाते है, उन्हे ठोकर नही लगती हैं। परन्तु जो पैरो को घसीटते हुए चलते हैं, उन्हे ही ठोकरे लगती हैं। इसी प्रकार से अनन्त बलशाली भी यह आत्मा अपना स्वरूप भूलकर कायर बन गई है। इस कायरता को मिटाने के लिए ही आत्मस्वरूप को पहिचानना है कि आत्मा क्या है? हम अपनी आत्मा का भान करे कि मेरे लिए तो जैसे जिनेश्वर देव है, वैसे ही ससारी जीव है। उन्होंने हमे क्या दे दिया और इन्होंने हमारा क्या ले लिया? भाई, भगवान का नाम तो सहारा है, अवलम्बन मात्र है। परन्तु इस नाम के सहारे हम आगे बढ़ सकते है।

जसे किसी के दो-चार रिश्तेदार जोरदार है और मित्र भी सामर्थ्यवान् हैं। सकट पड़ने पर वे लोग कहते है कि घबडाना मत। जो रकम चाहिए हो, वह हमारे यहा से मगवा लेना। अब भले ही उनके यहा से कुछ भी नही मगवाना पडे, परन्तु उनके आश्वासन से हिम्मत बध गई। इसी प्रकार आत्मा को आगे बढने के लिए भगवान का जप है, उनके नाम की माला है। बाकी अभी ऐसे अनन्त जीव अव्यवहार राशि मे पडे हैं, जो कभी व्यवहार राशि मे

आये ही नही। जिनके कानो मे भगवान की वाणी ही नही पडी, कभी साधु-पना और श्रावकपना ही नही लिया। ऐसे ऐसे भी जीव अन्तर्मुहूर्त मे समकित पाकर और साधु बनकर मोक्ष को चले गये। भाई, जीवो के परिणामो की गति बडी विचित्र है। अध्यात्म पदकार प० भागचन्द कहते है—

**जीवन के परिणामनि की यह अतिविचित्रता देखहु ज्ञानी ।।टेर।।**

**नित्य निगोद माहितें कढ़कर, नर पर्याय पाय सुखदानी ।**
**समकित लहि अन्तर्मुहूर्त में, केवल पाय वरे शिवरानी ।।जीवन०१।।**
**मुनि एकादश गुणस्थान चढ़ि, गिरत तहा तें चितभ्रम ठानी ।**
**भ्रमत अर्धपुद्‌गल परिवर्तन, किंचित् ऊन काल पर मानी ।।जीवन०२।।**
**निज परिणामनि की सभाल में, तातें गाफिल मत ह्वै प्रानी ।**
**बन्ध मोक्ष परिणामनि ही तें, कहत सदा श्री जिनवर वानी ।।जीवन०३।।**
**सकल उपाधि-निमित भावनसो, भिन्न सु निज परिणति को छानी ।**
**ताहि जानि रुचि ठानि होउ थिर, भागचन्द यह सीख सयानी ।।जीवन०४।।**

भाइयो, जीवो के परिणामो की विचित्र गति है। जिनका ससार-परिभ्रमण अभी शेप है, वे यदि सुयोग से सम्यक्त्व प्राप्त कर और सयम को धारण करके उपशम श्रेणी पर भी चढ जावे—तो वहा से मोह कर्म के उदय आते ही नीचे गिरते है और कुछ कम अर्धपुद्‌गल परिवर्तन काल तक ससार मे मिथ्यात्वी बनकर घूमते रहते है। किन्तु जिनकी काल-लब्धि पक जाती है ऐसी अव्यवहार राशि के नित्य निगोदिया जीव वहा से निकलकर सीधे मनुष्य होते है और जीवन के अन्तिम अन्तर्मुहूर्त मे ही सम्यक्त्व और सयम को धारण करके घनघाती कर्मों का क्षय करते हुए अन्तकृत्केवली बनकर अन्तिम समय मे अघाती कर्मों का भी क्षय कर मुक्ति को प्राप्त कर लेते है। ऐसे जीवो को कभी केवली भगवान के वचनो को सुनने का अवसर ही नही आया। उनके ही लिए 'असुच्चा केवली' पद शास्त्रो मे दिया गया है। कहने का सार यह है कि जो गुणित-कर्माशिक जीव है, उन्हे अपने कर्मों को काटने के लिए बहुत समय तक तपस्या आदि करनी पडती है। किन्तु जो क्षपित कर्माशिक जीव

होते हैं, वे अल्प समय मे ही पुरुपार्थ करके आत्म-सिद्धि और मुक्ति प्राप्त कर लेते हैं।

**दो मार्ग**

जैसे दो मनुष्य किसी उन्नत पहाडी को पार करने के लिए निकले। उनमे से एक ने पहाडी की तलहटी वाला चक्करदार और ऊवड-खावड मार्ग पकडा और उसमे कही भूल गया और कई घटो तक चक्कर काटता रहा। दूसरे व्यक्ति ने सोचा कि मुझे तो अपनी मजिल जल्दी पार करनी है, तो वह सीधी ऊचाई का मार्ग पकड कर उस पहाडी को पार करता है। गजसुकुमाल जी ने भगवान नेमिनाथ से कहा—**'म्हानें ऊपर वाली सेरी वताय दो'**। भाई, उनका हाथी के तालुए जैसा तो अति सुकुमाल शरीर! तुरन्त का लोच किया मुडित मस्तक और उस पर रख दिये गये धधकते हुए खैरके अगारे। अव कहिये—क्या वह वेदना सहन होने जैसी थी, हमारे और आपके आग की एक चिन-गारी भी लग जाती है, तो चिल्लाने लगते हैं। परन्तु गजसुकुमालजी ने उन अगारो की वह असह्य वेदना समभावो से सहन कर ली। वे अपनी सुकुमारता को भूलकर वज्र से दृढ वन गये और क्षमाशील वनकर शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त कर लिया। उन्होने ऊपर वाली सीढी से जल्दी मजिल पार कर ली। भाई, सीधा चढना वहुत कठिन है। जैसा कि कहा है—

**सीधा चढना कठिन है, जैसे पेड खजूर।**
**चढे तो चाखे मिष्ट रस, गिरे तो चकनाचूर॥**

भाइयो, यह मार्ग सीधा अवश्य है। परन्तु खजूर पर चढने जैसा है। यदि ऊपर तक सही-सलामत पहुच गये, तव तो रस भरे खजूर-खाने को मिल जायेंगे और मुख मीठा हो जायगा। परन्तु यदि चढने वाला कही चूक गया, तव तो नीचे गिरकर चकनाचूर ही हो जायगा।

'आत्म-स्वरूप', आत्म-स्वरूप' की रट तो सभी लोग लगाते हैं। जैन सन्त भी कहते हैं कि आत्म-स्वरूप को देखो। और वैष्णव सन्तो के पास जाओ तो वे भी कहते हैं कि आत्माराम को पहिचानो। जैसे कोई मिश्री कहो, चाहे साकर कहो, दोनो एक ही वस्तु है। चना कहो, चाहे भूगडा कहो, एक ही

बात है। इसी प्रकार आत्म-स्वरूप को देखो, चाहे अपने घर को देखो। मार्ग तो एक ही है। परन्तु उसमे व्यवधान है। मार्ग मे ऐसी-ऐसी वडी विकट चट्टाने पडी है कि उसमे जाने पर बडे-बडे शूर वीर भी लडखडा जाते है। लक्ष्मणा नाम की साध्वी-जो ससार से मुक्त होने वाली ही थी कि उसने एक चिडा-चिडी को विषयरत देखा तो मोहासक्त होकर लाख भव वढा लिये। हमारे हृदय मे कितनी-कितनी कल्पनाए पैदा होती है कि जिनकी कोई सीमा नही है। और जब हम उनमे भटक जाते है, तब उनमे से निकलना कठिन हो जाता है।

एक ब्राह्मण तीर्थयात्रा को गया। वापिस लौटते समय उसके पास खर्चा नही रहा। भाई, साधु और ब्राह्मण ये दोनो तो पर-घर पर आश्रित है। उसने सोचा—मेरे हाथ में तो यह सोने का खप्पर है। कही भी जाऊगा तो उदर-पूर्ति के लिए ले आऊगा। वह बाजार मे एक दुकान पर गया और सेठ से कहा—'मै भूखा हू।' यदि पेटिया (सीधा) मिल जाय, तो भोजन कर लू। उसने कहा—भाई, हम तो सदा ही देते है, सो तुम्हे भी देगे। परन्तु पहिले तुम उस सामने वाली हवेली से ले आओ। उसके बाद ही हम तुम्हे देंगे। ब्राह्मण ने पूछा—भाई, वह देता भी है, या नही ? सेठ बोला—आज तक तो उसने किसी को दिया नही है। यदि तुम ले आओ—तब जानू ? ब्राह्मण बोला—अच्छा ऐसी बात है। देखो—मैं अभी लाता हू। यदि वहा से ले आया तो तुम्हे भी देना पडेगा। सेठ ने यह बात मजूर कर ली।

अब वह ब्राह्मण सामने वाले सेठ के पास पहुचा। सेठजी गादी पर विराजमान थे। इसने जाते ही उन्हे आशीर्वाद दिया। सेठ ने पूछा—यहा कैसे आये ? ब्राह्मण बोला—सेठजी, मैं द्वारकाधीश और जगन्नाथपुरी की यात्रा के लिए गया था। वहा से वापिस लौट-रहा हू। मेरे पास घर तक पहुँचने के लिए खर्चा नही रहा है और भूख भी लग रही है। अत मुझे पेटिया दिलाने की कृपा करे, ताकि मै भोजन कर लू और दक्षिणा भी दिलावे, जिससे रास्ते का भी निर्वाह हो। यह सुनकर सेठ ने कहा—ब्राह्मण देवता, आप पुरी जा करके आये है और सारे पाप धो आये है, तब पेटिया देने की तो कोई बात नही है। परन्तु हमे विश्वास हो जाना चाहिए कि आपने वास्तव मे पुरी की

यात्रा की है, या नही ? ब्राह्मण बोला—मैं विश्वास के साथ कहता हू कि मैं पुरी की यात्रा को करके आ रहा हू । सेठ ने पूछा—अच्छा ! यह बताओ कि जगन्नाथपुरी के मन्दिर की सीढिया कितनी हैं ? यह सुनकर ब्राह्मण बोला—सेठजी, मैं जगन्नाथपुरी के दर्शन करने के लिए गया था । मैं कोई वहा की सीढिया गिनने को नही गया था । यह सुनकर सेठ बोला—महाराज, तब तो आप वहा गये ही नही है ? बिना कमाये हुए पेटिया नही आता है । कमाने मे एडी-चोटी का पसीना एक करना पडता है । ब्राह्मण बोला—जजमान, जब आपके यहा आगया हू, तब आपके यहा से खाली हाथ कैसे जाऊ ? अब तो आपके यहा से पेटिया और दक्षिणा ले करके ही जाऊंगा । सेठ ने कहा—महाराज, आप सीढिया बताने मे असमर्थ है, तो मैं बिना बताये पेटिया देने मे असमर्थ हू । यह सुनकर ब्राह्मण वही बैठ गया ।

कुछ समय के पश्चात् सेठ की सेठानी कुए से पानी का घडा लेकर आई । उसने चिटकारी की । ब्राह्मण तुरन्त उठा और उसने ऊपर के चुकलिए को उतार कर नीचे रख दिया । और सेठ की सेठानी को फटकारते हुए वह ब्राह्मण बोला—अरी, तू मेरी स्त्री हो करके भी इधर-उधर पानी भरती फिरती है । चल, रखदे यहा ठीकरा और घर मे चली जा । यह सुनकर सेठ बोला—अरे ब्राह्मण, क्या बकता है ? यह तो मेरी स्त्री है । तब ब्राह्मण ताव मे आकर कहने लगा—अरे सेठ, तुझे पराई स्त्री को अपनी कहते हुए शर्म नही आती है । तब सेठ भी जोश मे आकर कहने लगा—अरे ब्राह्मण, तू यह क्या बक-बक कर रहा है ? मेरी सेठानी को तू अपनी औरत बता रहा है । याद रख, मै अभी तुझे पुलिस के हवाले करा दूंगा ।

तब ब्राह्मण भी उत्तेजित होकर बोला—सेठ, सीधे तरीके से बोलना । नही तो तेरा सारा महाजना अभी दो मिनिट मे उतार दूगा । इन दोनो के ये गर्मा गर्मीली बाते सुनकर बाजार के कई लोग इकट्ठे हो गये । और पूछने लगे महाराज, क्या बात है ? ब्राह्मण बोला—देखो साहब, यह सेठ ब्राह्मण की औरत को भी नही छोडता है और मेरी औरत को अपनी बता रहा है ।

तब कुछ लोग बोले—यह ब्राह्मण झूठ बोलता है। यह स्त्री तो सेठजी की है। यह सुनकर ब्राह्मण बोला—आप लोग तो सेठजी जैसी ही कहेगे ? परन्तु मेरी बात सुन लो—यदि यह सेठजी की स्त्री है तो ये बतावे कि स्त्री ने हाथ मे कितनी चूडिया पहिन रखी है ? यदि न बता सके तो स्त्री इनकी नही, मेरी है ? तब लोगो ने कहा—अच्छा सेठजी, बताइये कि इस स्त्री ने हाथ मे कितनी चूडिया पहिन रखी हैं ? अब सेठजी ने चूडिया गिनी होवे तो बतावे ? सेठजी कुछ भी नही बोल सके।

तब उस ब्राह्मण ने लोगो से कहा—देखो साहब, मेरी एक बात सुनो। मैं यहा आया हू पेटिये के लिए। मैंने सेठजी से कहा कि मैं जगन्नाथपुरी के दर्शन करके आरहा हू। मेरा खर्चा समाप्त हो गया है और भूखा भी हू। अत. पेटिया दिलाने की कृपा करा दे। परन्तु सेठ साहब कहने लगे—मुझे तुम्हारी यात्रा का तब विश्वास हो जब तुम यह बताओ कि जगन्नाथपुरी के मन्दिर की सीढिया कितनी है ? अब आप लोग ही बतावे कि क्या मैं वहा सीढ़िया गिनने गया था, या भगवान के दर्शन करने के लिए गया था ? इसी से मैंने भी सेठजी से पूछा है कि यदि वास्तव मे यह तुम्हारी स्त्री है तो बताइये कि इसके हाथ मे कितनी चूडिया है ?

ब्राह्मण की बात सुनकर सब लोग हसने लगे और सेठजी से बोले—सेठ साहब, अब तो इससे पल्ला छुडाने मे ही सार है। इसे पेटिया दो और यहा से विदा करो। सेठ ने लज्जित होते हुए इसे भरपूर पेटिया दिया साथ मे एक मोहर भी दक्षिणा मे दी। ब्राह्मण ने जाते हुए कहा—सेठ साहब ! आप कह रहे थे कि मैं पेटिया नही दूगा। परन्तु मैं आपके ही हाथ से लेकर जा रहा हू।

वहा से रवाना होकर वह सामने वाले के यहा पहुचा और आशीर्वाद देकर बोला—सेठजी, देख लो—उसके यहा से पेटिया ले आया हू। अब आप भी अपना वचन पूरा कीजिए। उस सेठ ने भी उसे पेटिया और दक्षिणा देकर विदा किया और वह भी सहर्ष अपने घर को चला गया।

इस कथानक के कहने का तात्पर्य यह है कि जो सीधे मजिल पर पहुचना

चाहते है, वे ऊपर वाला रास्ता देखते है—और पगडडी (Short cat) पर चल देते हैं। परन्तु इस ऊपर वाली पगडडी पर चलने के लिए सावधानी की नितान्त आवश्यकता है। यदि वह ब्राह्मण भोला होता तो क्या उस सेठ से पेटिया और दक्षिणा ले सकता था ? कभी नही। इसी प्रकार यदि हम भी पुद्गलानन्दी वन जायेंगे तो फिर कोई काम नही सिद्ध कर सकेंगे ? अरे, यह ससार तो ठगो का वाडा है। इसमे एक-दो ठग हो तो उनसे वच भी जावें। परन्तु यहा तो सव ठग ही ठग भरे हुए हैं। कहा भी है—

**दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णा वश धनवान।**
**कहीं न सुख ससार मे, सब जग देखा छान॥**

ससार मे सभी प्राणी दुखी हैं। निर्धन पुरुप धन के विना दुखी है, क्योंकि धन के विना कोई भी इच्छा पूरी नही की जा सकती है। और धनवान पुरुप तृष्णा से दुखी है। पैसा के आते ही मनुष्य का रूप ही वदल जाता है, पोशाक वदल जाती है, पुराना घर वदलकर नये वगले मे आ जाता है, तांगा छोड़कर मोटर कार लाता है और अपने कुटुम्व-परिवार को भी भूल जाता है। पैसे के नशे मे वह फिर किसी को कुछ भी नही समझता है। फिर तो वह सीना आगे निकाल कर चलता है और आखे आकाश की ओर देखती हैं। सामने वाले की ओर देखता ही नही है। फिर कान भी वहरे हो जाते हैं किसी की सुनता भी नही है। किसी कवि ने वहुत ठीक कहा है—

**फनक फनकतें सौ गुनी मादकता [illegible]।**
**यह खाये बौरात है, [illegible]॥**

फनक नाम धतूरे का भी है [illegible] कवि कहता है कि यह सोना धतूरे से भी सौगुनी [illegible] करता है। [illegible] को खाने पर पागल होता है [illegible]

परन्तु ऐसे [illegible]

जबकि [illegible]

पश्चात्ताप [illegible]

कगाल हो गया। परन्तु "अब पछताये होत क्या जब चिडिया चुग गई खेत।" अब तो पछताना ही शेष रह गया है।

इसी प्रकार मनुष्य की आत्मा ससार मे आई। इस देह को पाकर महान् अनर्थ और आरम्भ के काम किये, काला बाजार किया और देश, जाति एव धर्म को लजाया। ऐसे कुकर्म करने वाला व्यक्ति आत्मा के स्वरूप को नही पहिचान सकता है। और जब तक कोई आत्म स्वरूप को नही पहिचानेगा, तब तक अपनी अभीष्ट मजिल पर भी नही पहुच सकता है। इसलिए भाइयो, आत्म-स्वरूप को पहिचानने का प्रयत्न करो।

वि० स० २०२७, भादवा सुदि १४
सिंहपोल, जोधपुर।

●●

# ३ सम्यक्दर्शन की प्राप्ति कैसे हो?

सम्यक्त्व की प्राप्ति कव होती है? यह एक प्रश्न हमारे सामने हैं। इसी विषय पर आज प्रकाश डाला जायगा। जव अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ का उदय मन्द होता है और दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम, क्षय या क्षयोपशम होता है, तव सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। जव तक अनन्तानुवन्धी कषायो का मन्द उदय नही होगा और दर्शन मोहनीय-कर्मका क्षयोपशमादिक नही होगा, तव तक सम्यक्त्व की प्राप्ति ही हो सकती है।

### चार प्रकार के कषाय

अव आप पूछेंगे कि अनन्तानुवन्धी क्रोध किसे कहते हैं? इसका उत्तर यह है कि जिसका क्रोध पाषाण की दरार के समान होता है, उसे अनन्तानुवन्धी क्रोध कहते है। पाषाण के भीतर यदि दरार पड गई, उसे फिर आप चूना, सीमेन्ट आदि मसाले से भर भी देवें और वह समतल-सा दिखाई भी देने लग जाय, फिर भी उसका मुख नही मिल सकेगा। जव कभी भी वह सीमेन्ट चूना आदि वहा से अलग होगा, तव वह दरार ज्यो की त्यो दिखाई देने लग जायगी। इसी प्रकार अनन्तानुवन्धी क्रोध जिसका जिसके साथ हो गया, वह इस जीव-

की तो कहे कौन, आगे उनके भवो तक बना रहता है। जब तक वह अपने वैरी से बदला नही ले लेगा, तब तक बना ही रहेगा।

अनन्तानुबन्धी मान वज्र के स्तम्भ के समान है। जैसे वज्र सबसे अधिक कठोर होता है, इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी मान वाले का हृदय अत्यन्त कठोर होता है। उसके हृदय मे नम्रता कभी सभव ही नही है। अनन्तानुबन्धी माया वास की मूल के समान अत्यन्त कुटिलता वाली है। उसमे सरलता का नाम नही होता है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी माया वाले पुरुष मे सरलता का नाम नही होता है। वह तो कुटिलता का भडार होता है, अनन्तानुबन्धी लोभ किरमिची रग के समान होता है, जो कि एक बार कपडे पर चढ जाने के बाद भट्टियो मे चढ़ाये जाने पर भी उतरता नही है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी लोभ अत्यन्त प्रबल होता है। वह कभी छूटने का नाम नही लेता है। जब तक इस आत्मा के ऊपर इन अनन्तानुबन्धी चारो कषायो का सम्बन्ध बना हुआ है, तब तक आत्मा मे शुभ, स्वच्छ या निर्मल भाव कैसे आ सकते है? जब अनन्तानुबन्धी कषाय की यह चण्डाल-चौकडी दूर होती है, तभी आत्मा मे विशुद्ध परिणामों की धारा प्रवाहित हो सकती है। अन्यथा नही।

जैसे किसी व्यक्ति के शरीर के रोम-रोम मे रोग व्याप्त हो रहा है। और वह वेदना की तीव्रता से छटपटा रहा है। उस समय यदि कोई कहे कि तू एकाध रोटी खाले, या जरा सी खिचडी आदि खाले तब वह कहता है—अरे, क्यो माथा पच्ची कर रहे हो! देखते नही, मुझे कितनी वेदना हो रही है। जब मुझे तुम्हारा बोलना भी नही सुहाता है, तब खाना कैसे अच्छा लग सकता है? मुझे किसी भी वस्तु के खाने या पीने की रुचि नही है। उसके हितैषी लोग कहते है—अरे, थोडा सा हमारे ही कहने से खाले। देख, खाने से शक्ति आ जायगी! परन्तु वह कहता है कि मैंने एक बार कह दिया न? मैं नही खाऊगा। फिर बार-बार मुझे क्यो तंग कर रहे हो? मैं किसी भी प्रकार नही खाऊगा।

भाइयो देखो—जिस वस्तु के खाने से शरीर का पोषण होता और शक्ति प्राप्त होती, उसी वस्तु से उसे इतनी घृणा आ गई कि वह उसकी ओर देखना

भी नही चाहता। तव खाने का तो काम ही क्या है ? जैसे उस रोगी व्यक्ति की प्रकृति मे ये उत्तम भोज्य पदार्थ भी अरुचिकर हो रहे हैं। उसी प्रकार जिसकी आत्मा मे यह अनन्तानुवन्धी चौकडी खूव जोरो से रम रही है, उससे यदि कोई कहे कि समता रखो, शान्ति धारण करो, करुणा भाव को हृदय मे लाओ, सम्यक्त्व की प्राप्ति करो और मिथ्यात्व भाव को दूर करो। परन्तु क्या वह उसकी वात को स्वीकार करेगा ? कभी नही। अरे भाई, वह तो, क्रोध मे काच की भट्टी के समान जल रहा है, मान मे अन्धा हो रहा है, मायाचार और छल-कपट करने मे अपनी शान और चतुराई समझ रहा है और लोभ मे पागल हो रहा है। उसे 'हाय पैसा, हाय पैसा' के अतिरिक्त और कुछ दीखता भी नही है। ऐसी दशा मे यदि कोई उसे सम्यक्त्व को धारण करने के लिए उपदेश देवे, तो क्या वह धारण करेगा ? कदापि नही।

जिस पुरुप के क्रोध का पारा वहुत ऊचा चढा हुआ होता है तो लोग कहते हैं—अरे, इससे दूर रहना। इसके ऊपर तो मौत का भूत चढा हुआ है—यह क्रोध मे चाण्डाल वना हुआ है। क्रोध से अन्धा व्यक्ति क्रोध मे ही मरता है। अनेक व्यक्ति क्रोध मे आकर फासी लगाकर मर जाते हैं, कुओं मे गिर पडते हैं, विष खा लेते हैं और जलती ज्वाला मे कूद कर जल मरते हैं। क्रोध से अन्धे पुरुप को अपने भले-बुरे का कुछ भी ज्ञान नही रहता है। शास्त्रकार कहते है—

लोकद्वय विनाशाय पापाय नरकाय च।
स्व-परस्यापकाराय क्रोध शत्रु शरीरिणाम्॥

यह क्रोधरूपी शत्रु जीवो के इस लोक और परलोक को नष्ट करने वाला है, पाप-उत्पादक है, नरक मे ले जाने वाला है, तथा अपने और पर के अपकार को करने वाला है।

इस प्रकार के क्रोध मे जो अन्धा हो रहा है, उसे यदि कोई शान्ति की शिक्षा देवे, तो वह व्यर्थ जाती है और कभी कभी तो वह उसके क्रोध को और भी अधिक भड़का देती है। जब क्रोधान्ध पुरुप मृत्यु को भी कुछ नही समझता है, तव शिक्षा को क्या मानेगा ?

मान के हाथी पर चढा हुआ व्यक्ति अपने अभिमान के पीछे अपना घर तक फूक देता है। अपनी सम्पत्ति को स्वाहा कर देता है। यदि उस समय कोई उससे कहे—भाई, अभिमान के पीछे अपने घर का क्यो सत्यानाश कर रहा है, तो वह कहता है—तुम मेरे बीच मे बोलने वाले कौन होते हो ? मुझे जो जचेगा, वही करूगा। इस प्रकार अभिमानी को अपने भले-बुरे का कुछ भी विवेक नही रहता है। कहा भी है—

**यो मदान्धो न जानाति हिताहित विवेचनम् ।**
**स पूज्येषु मदं कृत्वा श्वान-गर्दभवद् भवेत् ॥**

मान-मद से अन्धा हुआ पुरुष, अपने हित और अहित के विवेक को कुछ भी नही जानता है। वह अपने पूज्य पुरुषो पर भी अहकार करके कुत्ते और गधे के समान बन जाता है।

मायाचारी मनुष्य मायाचार करके समझता है कि मैं बहुत चतुर हू और दूसरो को चकमा देकर उन्हे मूर्ख बनाया करता हू। किन्तु उस मूर्ख को यह पता नही कि यह मायाचार एक दिन प्रकट होगा और सब लोग मुझे अपमानित करेंगे। शास्त्रकार कहते हैं—

**माया करोति यो मूढ इन्द्रियार्थ निषेवणे ।**
**गुप्तं पापं स्वयं तस्य व्यक्त भवति कुष्टवत् ॥**

जो मूढ पुरुष इन्द्रियो के विषय-सेवन करने के लिए मायाचार करता है, उसका वह गुप्त पाप स्वय कोढ के समान व्यक्त होगा और सर्वत्र निन्दा और ग्लानि को प्राप्त होगा।

जो लोभ से अन्धा बन जाता है, वह किसी भी पाप के करने से नही डरता है। लोभ को सब पापो का बाप कहा गया है। लोभ के कारण ही यह मनुष्य दूसरो का गला काटता है और उसका धन-हरण करता है। शास्त्रकार कहते है—

**लोभशत्रुरति दुःसहोऽङ्गिना सर्ववस्तु परिभक्षणक्षमः ।**
**हन्ति लोकमुभयं च निर्घृणो मानवं नयति घोररौरवम् ॥**

लोभ, यह प्राणियो का अति भयकर शत्रु है। लोभी मनुष्य सभी भक्ष्य और अभक्ष्य वस्तुओ को खाने लगता है। लोभी मनुष्य निर्दय हो जाता है और अपने दोनो लोको का विनाश कर लेता है। यह लोभ मानव को घोर रौरव नरक मे ले जाता है।

लोभ से अन्धे मनुष्य को किसी की भी हित-शिक्षा नही रुचती है।

भाइयो, इस प्रकार ये चारो ही कषाय अत्यन्त बुरी हैं। जिसके ये अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ होते हैं, उसके सम्यक्त्व होना सभव नही है। कितने ही व्यक्ति सामायिक, पौषध, व्रत, प्रत्याख्यान, नियम आदि भी करते हैं। परन्तु उनके क्रोध इतना तीव्र होता है कि वह झेला हुआ भी नही झिलता है। उसका वह क्रोध उसके व्रत, नियम और त्याग-तपस्यादि को आग के समान क्षण भर मे भस्म कर देता है। देखो—द्वीपायन मुनि कितने महान् तपस्वी थे, किन्तु क्रोध मे आकर द्वारिका को भस्म किया और स्वय भी उसमे पाप के भागी हो गये।

**क्रोध का आवेश भयकर है**

जिस समय मनुष्य के भीतर क्रोध उत्पन्न होता है, उस समय उसके चेहरे की शक्ल बिगड जाती है, आखें लाल हो जाती हैं, भ्रुकुटी चढ जाती है और ओठ कापने लगते हैं। तब कोई भी व्यक्ति उसके पास बैठना नही चाहता है। उससे कोई बोलना भी नही चाहता है। जिस स्थिति मे बोरी-बारदाना भी खराब हो जाता है, उस स्थिति मे क्या मखमल और रेशम का थान खराब नही होगा ? मखमल और रेशम के थान के समान भीतर के भाव हैं और बोरी-बारदाने के समान चेहरे की शक्ल आदि हैं। जब चेहरे पर विकार दिखाई दे रहा है, तब भीतरी भावो मे विकार स्वयसिद्ध है।

अब ऐसे व्यक्तियो को हम कहे कि व्रत-प्रत्याख्यान करो, तो बहुत से लोग करते हैं। परन्तु यदि किसी से लडाई हो गई, तो कहने लगते हैं कि यदि मैं तेरे यहा रोटी खाऊँ तो गाय-कुत्ता खाऊँ ! अरे ! जो व्यक्ति गाय-कुत्ता खाने तक को तैयार हो गया, तो उसका यह कथन खाने जैसा ही है। परन्तु जब गुस्सा शान्त हो जाता है, तब वह उसके यहा खाता है, या नही ? जब

बताओ—पहिले ऐसा कहने वालो ने पीछे उसके यहा क्यो खाया ? इसका विश्लेषण करने पर ज्ञात होगा कि उस मनुष्य ने वास्तव मे वैसा नही कहा है। किन्तु उसके भीतर उत्पन्न हुए क्रोध ने वैसा कहा है। क्रोध के समय उसका दिमाग ठिकाने नही था। उस समय वह क्रोध मे अन्धा हो रहा था। उस पर क्रोध का भूत सवार था। जिसके आवेश मे वह वैसा कह गया।

इसी प्रकार क्रोध के आवेश मे मनुष्य कह देता है कि मैं तेरे घर पर कभी नही आऊगा। यदि तेरे घर पर आऊ तो भगी के घर जाऊ ? परन्तु क्रोध शान्त होने पर वह उसके घर जाता है, या नही ? जाता है। ऐसा कहना क्रोध की परवशता का फल है। इसी प्रकार मान आदि कषायो के उदय होने पर मनुष्य यद्वा-तद्वा बकने लगता है। परन्तु जब स्वभाव मे आता है, तब सब बाते शान्त हो जाती है।

यहाँ कोई पूछे कि सामायिक, पौषध, साधुपना और श्रावकपना क्या अव्रत मे है ? इसका उत्तर है कि ये सब अव्रत मे नही है। ये सब बातें तो बहुत ऊची श्रेणी की हैं। यदि ये सब बाते बहुत ऊची श्रेणी की है तो महाराज, आप कैसे कहते हैं कि जब अनन्तानुबन्धी कषाय मन्द हो और दर्शन मोहनीय कर्म का उपशम या क्षयोपशम आदि हो, तब सम्यक्त्व की प्राप्ति होती हैं। इसका उत्तर यह है कि जो उक्त कर्मों का क्षयोपशमादिक हो जाय, तो जीव के तत्त्वो का गाढ श्रद्धान हो जाता है, उसके हृदय मे देव-गुरु-धर्म पर गाढ प्रेम हो जाता है, उसके रग-रग मे श्रद्धा रम जाती है, जो कभी नही छूटती है। जैसे फूलो मे से इत्र निकाल लिया। अब जो कूचा शेष रहा है, उसे सूघो तो उसमे से भी सुगन्ध आती है, या नही ? गुलाब के फूलो मे से इत्र निकाल लिया। फिर भी उस कूचे को भट्टी लगाकर उसमे से अर्क निकालते हैं, जो गुलाबजल कहलाता है। भाई, सुगन्धपना गुलाब का जन्मजात गुण है। अत वह उसके साथ रहेगा ही।

इसी प्रकार गन्ने का रस निकाल लेने पर उसके कूचे मे भी कुछ न कुछ मिठास रहता ही है। यही बात आत्मा के विषय मे भी जानना चाहिए। जब उसके भीतर सम्यक्त्व प्रकट हो जाता है, तब प्रशम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा

आदि गुण स्वयमेव आ ही जाते है। फिर उस जीव को ससार मे अधिक समय तक नही रुकना पडता है। अव उसे उत्तम मार्ग मिल गया है। वह अव वहुत शीघ्र अपने अभीष्ट स्थान पर पहुच ही जायगा।

भाइयो, जीव के लिए जो हानि-कारक वातें हैं, उनके छोडने के लिए भगवान ने वार-वार हमे सम्वोधन करके कहा है कि हे जीवात्माओ, सावचेत रहो, इन खोटी वस्तुओ के सम्पर्क मे वचो। यदि इनका आचरण करोगे तो उत्तरोत्तर हानि ही होगी और लाभ कुछ भी नही होगा। जो वाते तुम्हारे लाभ की हैं, उन्हे यत्नपूर्वक करो और जो हानि कारक हैं, उन्हे छोड दो। जो मनुष्य गुण को ग्रहण करता है और अवगुण को छोडता है, उसके सुधारने मे कोई देरी नही लगती है। इस विषय को एक दृष्टान्त देकर स्पष्ट किया जाता है।

### गुण-अवगुण का विवेक

एक नगर मे एक सेठ रहता था, उसके एक लडकी उत्पन्न हुई। उसका नाम अच्चकारीभट्टा रखा गया। यद्यपि वह उत्तम कुल मे उत्पन्न हुई थी और सुन्दर रूप वाली भी थी, तथापि उसका स्वभाव वहुत खराव था। वह माता-पिता के लाड-प्यार मे विगड गई और स्वभाव क्रोधी हो गया। वह उद्दण्ड और स्वच्छन्द वन गयी। वह सदा घर के दास-दासियो से, भाई-भतीजो से और पडोसियो से वात-वात पर लडती ही रहती थी। वह चार भाइयो मे अकेली वहिन थी, अतएव उसके ऊपर मा-वाप का लाड वहुत था। इसलिए उसका स्वभाव विगड गया। भाई, लाड-प्यार मे वच्चे विगड ही जाते हैं।

इस प्रकार लाड-प्यार मे रहती हुई वह वडी हो गई। सेठ को उसके विवाह की चिन्ता हुई। वह वर खोजने लगा। मगर उस लडकी के खोटे स्वभाव की चर्चा सारे शहर मे फैल चुकी थी। इसलिए कोई भी उसके साथ शादी करने को तैयार नही होता था। वाहिर से कभी कोई सम्वन्ध करने को आता तो लोग कहते—भाई लडकी है तो रूपवती, किन्तु स्वभाव की वहुत खराव है। यह सुनकर ही लोग वापिस चले जाते, कौन ऐसी लडकी को लेकर घर मे अशान्ति को वुलाना चाहेगा? सेठजी उसके लिए वर की खोज करते-

[illegible] हैरान हो गये, परन्तु कोई भी सम्बन्ध करने को तैयार नही हुआ। तब कभी सेठानी सेठ से कहती कि लडकी को और कितनी बडी करोगे। तब सेठ खीज कर कहता—तूने ही लाड मे रखकर इसे बिगाड दिया है। कोई भी इसके साथ शादी करने को तैयार नही है। मैं क्या करू और कहा जाऊ ?

धीरे-धीरे अनेक वर्ष बीत गये और वह लडकी भी पूरी युवती हो गई। इसकी चिन्ता मे सेठ-सेठानी की नीद हराम हो गई। और खाना-पीना दूभर हो गया। दैव-योग से उसी नगर के राजा के दीवान की स्त्री की मृत्यु हो गई। वह अधेड उम्र का था और दो-तीन बाल बच्चे भी थे। अत घर की सार-सभाल करने मे वह तग आ गया। भाई, स्त्री के बिना घर का काम-काज नही चल सकता है। आदमी क्या कर सकता है ? आदमी का काम तो कमाने का है। परन्तु घर सभालने का काम तो स्त्रीजनो का ही होता है। अत वह स्त्री के बिना तग आ गया। वह विचारने लगा कि अब मैं क्या करू ? तब मित्र और कुटुम्बी जनो ने सलाह दी कि दूसरी शादी कर लो। दीवान ने कहा—भाई, मेरी उम्र काफी हो गई है। अब यदि शादी करूगा—तो वह शादी नही, बर्बादी ही सिद्ध होगी। परन्तु जब वह घर के काम से तग आ गया, तब उसने शादी के लिए कुटुम्बीजनो को 'हा' भर दी। भाई, शादी का काम ऐसा ही है। यदि होनी हो तो झट हो जावे। और यदि दिन निकल गये तो फिर होना कठिन हो जाती है।

प्रधानजी की शादी के करने की बात का पता सेठजी को लगा। उन्होने सोचा कि यदि यह सम्बन्ध जम जाये तो बहुत अच्छा हो। वे एक दिन प्रधान [illegible] पास गये। उन्होने प्रधानजी से कहा—दीवान साहब, अपनी बाई उम्र मे [illegible] और स्याणी भी है। केवल उसका स्वभाव तेज है। यदि आप [illegible] स्वीकार करें तो मैं आपके साथ उसकी शादी करने को तैयार हू। [illegible] प्रधानजी ने मन मे सोचा—जब मैं राजा के स्वभाव को [illegible], तब स्त्री के स्वभाव को सभालना कौन-सी कठिन बात है। [illegible] उन्होने सेठजी के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। उनकी

स्वीकृति पाते ही सेठ ने उन्हे नारियल झिला दिया और शुभ मुहूर्त मे ठाठ-बाट के साथ उस लडकी की दीवानजी के साथ शादी कर दी ।

शादी होने के बाद वह दीवानजी के महल मे पहुची । जब पहिली ही रात मे दीवानजी उसके कमरे मे पहुचे, तब उसने कहा—देखो दीवान साहब, यदि आप प्रतिदिन रात के नौ बजे आगये, तब तो मैं दरवाजा खोल दूगी । अन्यथा नहीं खोलूगी । दीवानजी बोले—जैसा तुम्हारा हुक्म होगा वैसा ही करूगा । उन्होंने मन मे सोचा कि बाहिर तो सर्वत्र मेरा ही हुक्म चलता है । यदि घर मे नही चला, तो कोई बात नही है । उन्होंने भण्डार की चाबिया उसे दे दी और कह दिया कि ये सब दास-दासिया तेरे हुक्म के अनुसार काम करेगी । अब तुम इन्हे और घर-बार को सम्भालो । अब घर-भर पर उसकी हुकूमत चलने लगी । दीवान साहब भी उसके कहे मुताबिक चलने लगे । उन्होने दास-दासियो से भी कह दिया कि यदि तुम्हे नौकरी करना है तो यह जैसा कहे—वैसा करते जाना । यदि यह दिन को रात कहे तो रात कहना और रात को दिन कहे तो दिन कहना । इसकी इच्छा के प्रतिकूल कोई भी काम मत करना । यदि इसकी हा मे हा मिलाते रहोगे तो निभ जाओगे अन्यथा यहा रहना कठिन हो जायगा । दीवानजी के ऐसा कहने पर सब दासी-दास भी उसकी आज्ञा के अनुसार चलने लगे । दीवान साहब भी कचहरी का काम निपटा कर ठीक नौ बजे घर पहुच जाते थे । इस प्रकार अपनी स्त्री को प्रसन्न रखते हुए कुछ समय शान्ति-पूर्वक बीत गया । कभी किसी भी प्रकार की खटपट घर मे नही हुई ।

### राजा के पास चुगली

भाइयो, आप लोग दुनिया भर मे घूम आइये । आपको ऐसा कोई भी स्थान नही मिलेगा—जहा पर कि चुगलखोर न रहते हो । सब जगह ये चुगलखोर मिल ही जावेंगे । देखो—कितने ही घराने और वश समाप्त हो गये । परन्तु चुगलखोरो की वश-परम्परा अभी तक बराबर चल रही है । इन चुगलखोरो की कृपा से धीरे-धीरे राज-सभा मे भी चर्चा चलने लगी कि अब तो प्रधान जी स्त्री के गुलाम बन गये है । उसके कहे मुताबिक ही काम

करते है । उसकी आज्ञा के बिना एक कदम भी इधर का उधर नही रखते हैं । अव तो यह वात राजा के कान तक भी पहुंच गई । लोगो ने राजा से कहा—हुजूर ! अब तो दीवानजी आपके नही रहे । वे तो अब स्त्री के गुलाम बन गये है । राजा ने कहा—तुम झूठ बोलते हो । अरे, दीवान तो मेरा है । चुगलखोर ने कहा—हुजूर, ऐसी बात नही है । भाई, राजा लोग भी कानो के कच्चे होते हैं । अव तो राजा ने भी दीवान की परीक्षा करने का निश्चय किया ।

एक दिन सदा की भाति आठ वजे ज्यो ही दीवानजी ने काम समेटना शुरू किया कि उसी समय राजाने कहा—दीवानजी, जो अमुक व्यक्ति का मुकद्दमा चल रहा है, उसकी फाइल मेरे सामने लाओ ? दीवानजी ने कहा—हुजूर, अव समय हो गया है, अत यह काम कल हो जायगा । राजा ने कहा—नही, अभी लाओ । जब यह सुना तो दीवान परेशानी मे पड गया । उसने सोचा—अब मैं क्या कर सकता हू ? धनी का धनी कौन है । एक बार और अर्ज करके देखता हू । यदि मान जाये, तब ठीक है । अन्यथा हुक्म तो बजाना ही पडेगा । यह सोचकर दीवान ने फिर कहा—अन्नदाता, यह काम कल के लिए रख दीजिए । राजा ने उत्तेजित होते हुए कहा—नही, यह काम अभी होगा !

अव दीवानजी चुपचाप काम मे लग गये । मामले को निपटाते हुए ग्यारह वज गये । जव वे घर गये, तव देखा कि महल का दरवाजा बन्द है । प्रधानजी ने दरवाजा खोलने के लिए कई वार पुकारा । वह तो सो चुकी थी । फिर कौन दरवाजा खोलता । निदान दीवानजी पडौसी के यहा जाकर सो गये । दूसरे दिन भी राजसभा मे वही की वही वात हुई और काम करते हुए वारह वज गये । तव उन्होने सोचा कि अव तो इस दीवानगिरी से त्यागपत्र ही देना पडेगा । क्योकि इस प्रकार तो काम नही चल सकता है । तीसरे दिन राजाने एक वजा दिये । काम पूरा होते ही दीवान ने त्यागपत्र लिखा कि हुजूर, अव आगे मुझसे काम नही हो सकता है, अत अवकाश दिया जाय । इसे उसने महाराज के सामने रख दिया । राजा ने त्यागपत्र पढ़ा और विचार मे पड गये कि अव क्या करना चाहिए ? क्योकि ऐसा होशियार दीवान का मिलना कठिन है ।

राज-सभा से दीवानजी घर गये तो दरवाजा बन्द पाया। तीन दिन से परेशान हो रहे थे। जब आवाजे देने पर भी स्त्री ने किवाड नहीं खोले, तब वे किसी प्रकार महल के भीतर पहुंच ही गये। अब तो दीवानजी का भी पारा चढा हुआ था। उन्होंने जाते ही स्त्री से कहा—देवीजी, मैं दरबार का नौकर हू। राजा जैसा कहते हैं, वैसा ही काम करना पडता है। यदि मैं घर मे ही बैठा रहू, तो काम कैसे चल सकता है ? अब यदि तुम्हे यहा रहना हो, तो खुशी से रह सकती हो। और यदि तुम्हे अपना हुक्म ही चलाना है तो पीहर जा सकती हो। आज इसी कारण मैंने दरबार को भी त्यागपत्र दे दिया है और उनसे कह भी दिया है कि अब मैं काम पर नही आऊगा।

जब पति के ऐसे शब्द उसने सुने, तो वह भी गुस्से से भर गई। उसने तुरन्त अपने जरूरी वस्त्राभूषण पेटी मे रखे और उसे लेकर तत्काल ही घर से बाहिर चली गई। उसे जाता देखकर दीवानजी ने सोचा—स्त्री की जाति है। गुस्सा आगया, इससे पीहर चली गई है। दो-चार दिन मे वापिस आ जायगी। परन्तु वह पीहर नही गई और जिधर रास्ता दिखा, उधर को ही मुख करके चल दी। जैसे ही वह गाव के बाहिर पहुची, वैसे ही उसे चार चोर मिले। उन्होंने इसे अकेली आती देखकर सोचा—शकुन तो अच्छा हुआ है। चोरो ने इसे खडी रहने को कहा। तब इसने कहा—देखो, तुम्हे गहने लेने हो तो ले लो। परन्तु यदि छेड-छाड की, तो ठीक नही होगा। मैं यही पर मर जाऊगी। उसकी यह बात सुनकर चोरो ने विचारा कि अपने को तो गहने से मतलब है। इसको छेडने से क्या लाभ है। ऐसा विचार कर उन्होंने उसके पास से सब गहने ले लिए। इतने मे ही एक बनजारा आगया। उसने चोरो से पूछा—क्या यह स्त्री बेचनी है ? चोरो ने कहा—हा बेचनी है। बनजारे ने पूछा—कितनी कीमत लोगे ? चोरो ने कहा—एक लाख रुपये मे देगे। उसने एक लाख रुपये चोरो को दे दिये और स्त्री को अपने कब्जे मे ले लिया। अब वह बनजारा उसे लेकर और जहाज मे बैठकर वहा से चल दिया। इसके रूप-सौन्दर्य से मोहित होकर बनजारा कामान्ध हो गया और उसके साथ अपनी काम-वासना की पूर्ति के लिए छेड-छाड करने लगा। यह देख

उसने उत्तेजित होकर कहा—यदि तूने मेरे शरीर को हाथ लगाया तो मैं समुद्र मे कूदकर मर जाऊंगी। यह सुनकर बनजारा मन मसोस कर रह गया।

कुछ दिनो मे जहाज चलते-चलते किनारे लगा। वह बब्बर देश था। वहा जाकर बनजारे ने उसे किसी अन्य पुरुष को एक लाख रुपये मे बेच दिया। वह उसे लेकर आगे चला। उसने उसे यत्र पर चढाकर उस्तरे से सारे शरीर पर नश्तर लगाये, जिससे उसके शरीर से रक्त गिरने लगा और वह भट्टी पर चढे हुए उकलते तेल मे पडने से ममाई (नामक एक औषधि) के रूप मे परिणत हो गई। इस प्रकार उसके शरीर से कुछ-कुछ दिनो के अन्तर से तीन बार ममाई बनाई गई। जिससे उसे प्राणान्तक कष्ट उठाना पडा।

इतनी यातनाए भोगने के पश्चात् वह अपने जीवन का विहगभावलोकन करती हुई पश्चात्ताप करती है कि हाय, घर से निकलने के बाद से मेरी कैसी दशा हो गई है ? यदि मैं तुनुक-मिजाज से घर छोडकर न निकलती तो मेरी ऐसी दशा नही हुई होती। अब मुझे अपने घर ही चलना चाहिए।

इधर प्रधानजी ने अपने श्वसुर सेठजी के पास समाचार भेजा कि आपकी लडकी हमारे यहा से क्रोधित होकर कुछ दिन पहले चली गई थी सो आपके यहा पहुची होगी। उसे समझा दे कि वह इस प्रकार क्रोध न किया करे। सेठ ने वापिस समाचार भेजे कि बाई तो घर पर आई ही नही है, फिर मैं कैसे समझाऊ ? तब प्रधानजी ने चारो ओर आदमी भेजकर उसकी तलाश कराई। परन्तु उसका कही भी पता नही लगा। उसकी मा का लडकी पर अधिक प्रेम था। अत वह सोचने लगी कि कही प्रधानजी ने उसे मरवा न दिया हो ? अत उसने अपने चारो लडको को लडकी के खोजने के लिए भेजा। जब वे चारो भाई अपनी बहिन ढूँढने के लिए जा रहे थे, तब मार्ग मे वे चारो चोर मिले। उनसे उन्होने पूछा। चोरो ने बताया कि कुछ दिन पूर्व एक स्त्री रात्रि मे इस मार्ग से जाती हुई मिली थी। उसे हमने अमुक बनजारे को बेच दिया था। वे लोग खोज करते हुए उस बनजारे के पास पहुचे। उसने पूछने पर बताया कि हमने उस स्त्री को बब्बर देश मे लेजाकर बेची है। वह चारो भाई वहा पहुचे, पता लगाते जहा उसकी ममाई पाड रहे थे और

मूर्छितावस्था मे प्राप्त की। उसे रकम देकर उस अन्चकारी भट्टा को स्थान पर ले आये और डाक्टर वैद्यो से औषधी सेवन कराई। जब वह ठीक हो गई, तब वे चारो भाई उसे विदा करके घर आये। मा-बाप से मिलकर वह बहुत रोई। उन्होने कहा—अरी बेटी, तूने क्रोध मे घर से निकलकर कितना दुःख पाया है ? अब बता, क्या करना है ? वह बोली—अब तो मैं अपने घर पर ही जाऊगी। तब मा-बाप ने कहा—अरी, प्रधानजी चिढ़े हुए है, कही कुछ अनर्थ न कर बैठे ? लडकी ने कहा—कुछ भी हो, किन्तु मैं तो वही जाऊगी, क्योकि घर के बिना बाहिर कही आदर नही मिलता। आखिर सारा जीवन तो मुझे वही पर निकालना है।

भट्टा, जिसे पहिले दीवानजी के यहा एक घडी रहना भी कठिन हो रहा था, वही अब दृढ-निश्चय करके दीवानजी की हवेली पर पहुची। उसने पहुचते ही पति को नमस्कार किया। दीवानजी ने कहा—"अरी, अब यहा क्यो आई है ? तुझे तो अपना हुक्म चलाना है न ? परन्तु अब मैं तेरा हुक्म मानने को तैयार नही हू।" यह सुनकर वह बोली—प्राणनाथ ! मैंने अपने किये का फल पा लिया। अब मै किसी पर भी हुक्म नही चलाऊगी। अब तो जैसा आप हुक्म देंगे, मै वैसा ही करूगी। तब दीवानजी ने प्रेमपूर्वक पुन घर का सब कारोबार उसे सौप दिया और वह घर मे आनन्दपूर्वक रहने लगी। अब तो वह इतनी अधिक शान्त-प्रकृति की हो गई कि यदि कोई दासी-दास कुछ नुकसान भी कर देता, तो केवल यह कह कर क्षमा कर देती कि भविष्य मे सावधानी से काम करना। अब वह भूलकर भी न किसी पर क्रोध करती है और न किसी से लडती है। वह एकदम कोमल बन गई। प्रतिदिन धर्म-ध्यान भी करने लगी और पडौस के लोगो की सेवा-टहल भी करने लगी।

उसके इस स्वभाव-परिवर्तन को देखकर सारे नगर-निवासी, घर वाले और स्वय दीवानजी भी आश्चर्य करने लगे कि इसका यह परिवर्तन सहसा कैसे हो गया ? क्योकि कहावत है कि—

**जाका जौन स्वभाव, जावै नहि कबहूं जीसे।**
**नीम न मीठा होय, खाओ चाहे गुड़ घी से॥**

भाई, उसे घर से निकलने के बाद जो जो भयकर यातनाए भोगना पडी, उनसे उसका दिमाग ठिकाने आ गया। अब उसकी शुभ कार्यो मे प्रवृत्ति उत्तरोत्तर इतनी अधिक बढी कि एक बार सौधर्मेन्द्र ने अपनी सभा मे उसके सत्कार्यों की और उत्तम स्वभाव की प्रशसा की। इन्द्र के मुख से उसकी प्रशसा सुनकर एक मिथ्यात्वी देव को उस पर विश्वास नही आया। उसने सोचा कि मैं अभी मनुष्य-लोक मे उसकी परीक्षा करता हू और देखता हू कि वह कितनी क्षमाशील है।

### देव-परीक्षा

उस देव ने स्वर्ग से आकर दो साधुओ के रूप बनाये। एक वृद्ध साधु को तो उसने बगीचे मे रखा और दूसरे साधु के रूप मे वह दीवानजी की हवेली पर पहुचा। साधु को आता हुआ देखकर उस स्त्री ने उनका स्वागत करते हुए कहा—पधारो महाराज! साधुवेषी देव ने कहा–"मेरे गुरु महाराज बीमार है। उनके लिए लक्षपाक तैल की आवश्यकता है। मैंने सुना है कि तेरे यहा लक्ष-पाक तेल है।" भाई, लक्षपाक तैल के तैयार होने मे लाख रुपये लगते है, तब वह एक लाख औपधियो से तैयार होता है। परन्तु प्रधानजी के घर मे क्या कमी थी। अत उसने दासी को लक्षपाक तेल की शीशी लाने के लिए कहा। जब दासी शीशी लेकर आ रही थी कि देवता ने अपनी विक्रिया से उसका हाथ झटक दिया, जिससे शीशी नीचे गिरकर फूट गई और सारा तेल भूमि पर फैल गया। यह देख साधु तो चिढकर बोला—अरी, तूने यह क्या कर दिया? परन्तु उस स्त्री ने शान्त स्वर मे कहा—कोई बात नही। जा दूसरी शीशी ले आ। जब वह दूसरी शीशी ला रही थी, तब देवता ने फिर अदृश्यरूप से उसे झटका दिया और यह दूसरी शीशी भी गिरकर फूट गई। तब पूर्व के समान ही शान्तभाव से उसने तीसरी शीशी लाने को दासी से कहा। इस बार भी लाते हुए उस देव ने अपनी माया से उसे भी गिरा दिया। इस प्रकार लगातार सात शीशिया तेल की फूट गई। तब साधु तो क्रोध मे आकर दासी

को भला-बुरा कहने लगा। परन्तु उस स्त्री ने कहा —महाराज, क्रोध न कीजिए, क्रोध का फल बहुत बुरा होता है। मैंने क्रोध के कारण बहुत दुःख पाया है। आपने तो कषायों को छोड़ दिया है, फिर आप उसे क्यों ग्रहण कर रहे हैं ? इतना कहकर वह स्वयं गई और तेल की शीशी लेकर आई। उस देवता ने देखा कि मैंने इतने बहुमूल्य तेल का इतना नुकसान कर दिया है, परन्तु इसके हृदय में अणुमात्र भी क्रोध का अंश नहीं है। तब उस देव ने अपनी माया समेट कर और असली देवरूप प्रकट कर उसके क्षमा-स्वभाव की बहुत प्रशंसा की और वे शीशियां वास्तव में फूटी नहीं थीं। किन्तु देव ने माया से फूटी जैसी दिखाई थी, उन्हें जैसी की तैसी साबित प्रकट कर दी। उसने कहा— मैंने इन्द्र महाराज के मुख से आपके क्षमाशील स्वभाव की जैसी प्रशंसा सुनी थी, वास्तव में आप वैसी ही निकली हैं। आप यथार्थ में क्षमाशील हैं।

भाइयो, इस कथा के कहने का अभिप्राय यह है कि जब तक आत्मा में अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय रहते हैं, तब तक सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है। और सम्यक्त्व की प्राप्ति हुए बिना व्रत, प्रत्याख्यान आदि की कोई शोभा नहीं है। देखो पहिले वह लड़की क्रोध करती थी तो उसकी कहीं भी शोभा नहीं थी। यहां तक कि वह अपने पति के द्वारा भी ठुकरा दी गई। और घर से निकल जाने पर ठौर-ठौर पर उसे दुःख उठाने पड़े। परन्तु जब से उसने क्षमा को धारण कर लिया और क्रोध को त्याग दिया, तब से उसके जीवन में आनन्द का संचार हो गया और वह सब की प्रिय-पात्र बन गई। भाई, जब तक जीवन में इन पापरूप प्रकृतियों में परिवर्तन नहीं आता है तब तक शान्ति नहीं मिल सकती है। किन्तु जो इन पापरूप प्रकृतियों से दूर रहता है, तो वर्तमान में तो वह शान्ति को प्राप्त करता है और भविष्य के लिए अपनी पुण्यवानी को बढ़ाता है, जिससे सभी सांसारिक सुख प्राप्त होते हैं और अन्त में शिव-सुख को भी प्राप्त करता है।

[illegible] कोई शंका करे कि पुण्यवानी तो छोड़ने योग्य है, फिर इसे क्यों बढ़ानी चाहिए ? ऐसा प्रश्न करने वाले भाई भोले हैं। उन्हें जानना चाहिए

कि पुण्यवानी कब तक करने योग्य है और कब छोडने योग्य है। इस विषय मे अध्यात्म-पदकार प० भागचन्द जी कहते है—

परिणति सब जीवनि की तीन भांति बरनी।
एक पुण्य, एक पाप, एक राग हरनी ॥ परिणति० टेर॥
तामे शुभ-अशुभ अन्ध, करत दोऊ कर्म-बन्ध।
वीतराग परिणति ही भव-समुद्र तरनी ॥परिणति०१॥
यावत् शुद्धोपयोग, पावत नहीं मनोग।
तावत् नित करन योग्य कही पुण्य करनी ॥परिणति०२॥
त्याग शुभ क्रिया-कलाप, मत करो कदाच पाप।
शुभ मे न मगन होय शुद्धता न विसरनी ॥परिणति०३॥
ऊंच ऊंच दशा धार, चित प्रमाद को विडार।
ऊंचली दशातें मत गिरो अधो - धरनी ॥परिणति०४॥
'भागचन्द' या प्रकार जीव लहे सुख अपार।
याके निरधार स्याद्वाद की उचरनी ॥परिणति०५॥

भाइयो, जीवो के भावो की परिणति शास्त्रो मे तीन प्रकार की कही गई है—एक पुण्यरूप शुभपरिणति, दूसरी पापरूप अशुभ परिणति और तीसरी शुद्धोपयोगरूप वीतराग परिणति । इनमे पुण्य-पापरूप दोनो परिणतिया तो कर्म-बन्ध करने वाली हैं और वीतराग परिणति भव-समुद्र से पार उतारने वाली है। यह जैन सिद्धान्त का अटल नियम है। परन्तु पदकार कहते है कि जब तक शुद्धोपयोग प्राप्त न हो, तब तक नित्य ही पुण्य क्रियाए करने के योग्य कही गई है। यह शुद्धोपयोग दशा कब प्राप्त होती है ? जब कि यह जीव क्षपकश्रेणी पर चढकर घनघाती कर्मों का क्षय करने के लिए उद्यत होता है और अन्तर्मुहूर्त मे ही उनका क्षय करके अरहन्त पद को पा लेने के सन्मुख होता है। पदकार आजके भोले भाइयो को सम्बोधन करते हुए कहते है कि हे भाइयो, कही पुण्य को हेय समझकर शुभ क्रियाओ को मत छोड देना और पाप क्रियाओ को मत करने लगना। हा, पुण्य-वर्धक शुभ क्रियाओ को करते हुए उनमे ही मगन मत हो जाना और शुद्ध परिणति को मत भूल जाना। वे यह भी सम्बोधन

करते हुए कहते हैं कि ऊची दशा को साधुपना और श्रावकपना को धारण कर और पुण्य क्रियाओ को शुद्ध दशा के पाये बिना ही छोडकर नीचे मत गिर जाना। किन्तु पुण्य क्रियाओ को करते हुए शुद्धोपयोगी दशा को पाने के लिए सदा आगे बढने का प्रयत्न करते रहना। क्योकि भगवान ने अपनी स्याद्वाद वाणी मे यही कहा है। और इसी मार्ग मे चलकर जीव अपार सुख को प्राप्त करता है।

**शुभ कर्मरूपी नौका**

भाई, यह पुण्यवानी तो तेरहवे गुणस्थान तक अरहन्त अवस्था प्राप्त करने तक जीव का साथ देती है। देखो तीर्थंकर पद, केवली पद, साधुपना और श्रावकपना ये मव पुण्यवानी के उदय से प्राप्त होते हैं। और पडित मरण भी पुण्यवानी से होता है। जो पुण्य को छोडने योग्य कहा है सो कव कहा है ? जैसे—किसी जहाज मे बैठे हुए आप समुद्र मे जा रहे हैं और आपको बन्दरगाह पर पहुचना है। तो बन्दरगाह पर पहुँचने पर ही जहाज को छोडा जाता है। यदि किनारे पर पहुचे विना ही आप जहाज को छोड देंगे तो समुद्र मे ही डूबेंगे। इसी प्रकार जब तक आप ससार-समुद्र के किनारे पर नही पहुच जाते हैं—अर्थात् अरहन्त अवस्था नही प्राप्त हो जाती है, तव तक पुण्यरूपी जहाज का आश्रय लेना आवश्यक होता है। यदि इस शुद्ध दशा को प्राप्त करने के पूर्व ही पुण्यरूपी जहाज को छोड देंगे तो सारा काम ही बिगड जायगा। इसलिए जव आप केवली वन जाये, घनघाती कर्मो का क्षय कर लेवें, तभी पुण्य क्रियाए स्वयमेव छूट जायेंगी। इसलिए ससार से छूटने का क्रम यही है कि पहिले पाप क्रियाओ को छोडो और आत्मा की शुद्ध दशा को पाने का लक्ष्य रखते हुए पुण्य क्रियाओ को करते रहो। जव शुद्ध दशा प्राप्त हो जाय, तव पुण्य को भी छोड दो। जैसे वन्दरगाह पर पहुचने के साथ ही जहाज छोड देते हैं।

अव कोई तर्क करे कि किसी भूखे को रोटी खिलायें तो पाप, प्यासे को पानी पिलावें तो पाप और निराश्रय को रहने के लिए मकान देवें तो पाप लगता है, तव इन कार्यो को करने से क्या लाभ है ? ऐसा तर्क करने वालो से हमारा यही कहना है कि भगवान ने अठारह पाप वताये है। तथा अन्न-

पुण्ये, पानपुण्ये, लवणपुण्ये, शयनपुण्ये, वस्त्रपुण्ये, मनपुण्ये, वचनपुण्ये, कायपुण्ये और नमस्कारपुण्ये ये नौ प्रकार के पुण्य कहे है। इन अन्न-पान दानादिको पाप मे नही कहा है। भाई, इनको पाप मे क्यो नही कहा ? इसका कारण यह है कि जब आप किसी भूखे को भोजने दे रहे हैं, उस समय आपकी भावना क्या है ? आपकी भावना यही है कि 'यह व्यक्ति भूख से मर रहा है। इसे भोजन देने से यह बच जायगा और शान्ति पायगा। यही भावना प्यासे को पानी पिलाते समय भी है। आपकी भावना तो उस भूखे या प्यासे मनुष्य को शान्ति पहुचाने की है, पाप बढाने की नही है। यदि कोई आपका अन्न खाकर और पानी पीकर पीछे कोई काम पाप का करता है, तो इसमे वही पाप का भागी होगा। आप पाप के भागी नही बनेंगे।

आपके सामने इसी बात को स्पष्ट करने के लिए एक दूसरा दृष्टान्त उपस्थित किया जाता है। कोई सन्त महात्मा आपके घर गोचरी को आये। आपने उनके पात्र मे आहार-पानादि वहराया। सन्त महात्मा उसे लेकर अपने स्थान पर गये। सन्त ने ध्यान नही रखा और शाक की पात्री को उघडा ही छोड दिया और अन्य काम मे लग गये। इतने मे कोई मक्खी आकर उस शाक मे गिरकर मर गई। अब बताओ—क्या उस मक्खी के मरने का पाप आपको लगेगा ? या नहीं लगेगा। आपने तो सुपात्र को शुद्ध आहार-पान दिया है, इसलिए आप तो पुण्य के ही भागी है। हा, उन सन्तने जो सावधानी नही रखी, शाक की पात्री के ऊपर ढक्कन नही दिया, और मक्खी मर गई, तो इसका पाप उन महात्मा को ही लगेगा। भाई, जिसकी भूल होगी, वही पाप का भागी होगा। और वही उसका फल भोगेगा।

और भी देखो एक स्कूल मे अध्यापक ने किसी लडके को पढाया। वह पढ-लिखकर होशियार हो गया। पीछे कुसगति मे पडकर चोरी करने लगा। अब बताओ कि चोरी के अपराध मे पुलिस उस लडके को पकडेगी, या उसके अध्यापक को पकडेगी ? पुलिस तो चोर को ही पकडेगी। और उसे ही चोरी की सजा भोगना पडेगी। भाई 'जो जैसा करेगा, वही उसका वैसा फल पायगा। किसी दूसरे के किये पाप-पुण्य का फल किसी और को नही भोगना पड़ता है।

यदि कही किसी के भले-बुरे काम का फल किसी दूसरे को मिला दिखाई दे, तो समझो कि उसकी भी उस काम के करने मे कारिता या अनुमोदना रही है। अन्यथा एक के पाप का फल दूसरे को कभी नही भोगना पडता है।

और भाई, भगवान ने पाप अठारह प्रकार के कहे, और पुण्य नौ प्रकार के कहे, सो ये दोनो ही तत्त्व भिन्न-भिन्न हैं। इनको शामिल करने की क्या आवश्यकता है ? मनुष्य जब अविवेकी बनकर कोई काम करता है, तभी पाप लगता है। विवेकपूर्वक पुण्य कार्य को करने वाले को कभी पाप नही लगता है।

प्रत्येक गृहस्थ के घर भोजन बनता है और जितना प्रतिदिन लगता है उससे अधिक ही आटा-दाल काम मे लिया जाता है। श्रावक का अतिथि सविभाग व्रत कहा गया है। वह प्रतिदिन धर्मपात्रो को भी दान देता है और करुणापात्रो को भी देता है। क्योकि गृहस्थ के भोजन मे सभी का सीर है। आप तो धर्मपात्र साधु आदि को धर्म भावना से देते है और करुणा-पात्र भिखारी आदि को दयाभाव से दान देते हैं। आपकी तो स्व-परोपकार की ही भावना है। अत तदनुसार ही आप धर्म और पुण्य के भागी बनेंगे। इसलिए आपको तो अपनी भावना पर-उपकार की ही रखनी चाहिए। दान को देने से पुण्यवानी ही बढती है और उसका सुफल ही प्राप्त होता है।

हा, तो मैं कह रहा था कि यदि सम्यक्त्व की प्राप्ति करनी है, तो अपनी अनन्तानुबन्धी क्रोध कषाय को छोडकर प्रशमभाव धारण करो, मान को छोडकर विनयभाव रखो, माया को छोडकर सरलभावी बनो और लोभ को छोडकर दानी बनो। जब आपकी ये चारो कषाये मन्द होगी और दर्शन मोह का उपशमादि होगा, तब आपको अवश्य ही सम्यक्त्व की प्राप्ति होगी।

वि० स० २०२७, आसोज वदि–२

सिंहपोल, जोधपुर

# ४ आत्मा और कर्म

सज्जनो, आज आप लोगो को यह बतलाना है कि आत्मा का स्थान क्या है और कर्मों का स्थान क्या है ?

आपके सामने दो व्यक्ति आते हैं। एक व्यक्ति के लिए तो आप कुर्सी रखते हैं और दूसरे के लिए जाजम बिछाते है। परन्तु ऐसा क्यो करते हैं ? जब कि वे दोनो मनुष्य हैं और साथ-साथ आये हैं ? आप कहेगे कि दोनो मे अन्तर है। भाई, वह अन्तर क्या है ? यह अन्तर केवल पुण्यवानी का है। जिसकी पुण्यवानी अधिक होती है उसको मान-सन्मान भी अधिक मिलता है। था जिसकी पुण्यवानी कम होती है, उसको मान-सन्मान भी कम मिलता है। ण्यवानी का यह जो अनादि-कालीन महत्व है, उसे आज के बुद्धिवादी लोग मटा देना चाहते है। वे चाहते हैं कि हम सबको समान बना दे। किन्तु उनकी ह भावना गलत है। सब लोग एक समान केवल अकर्म भूमि (भोगभूमि) । ही होते है। उसके सिवाय कर्म-भूमि मे तो सभी मानव न एक समान रहे ई और न रहेगे। हा, इतना परिवर्तन हो सकता है कि आज जिसकी मान-तिष्ठा है, कल उसका अपमान और तिरस्कार हो सकता है। तथा आज जसका अपमान और तिरस्कार हो रहा है, वह कल सन्मान और प्रतिष्ठा ा सकता है।

जैसे कुए या बावडी पर पानी निकालने के लिए रहट लगाया जाता है। उसके वीच मे माल होती है। उसमे मिट्टी की या टीन की बनी हुई घडिया लगी रहती हैं जिनके द्वारा कुए या बाबडी मे से पानी बाहिर निकलता है। उस रहट को कोल्हू के समान घूमते हुए दो बैल चलाते है। उस रहट मे जितनी भी घडिया बधी हैं, वे सब की सव पानी से भरी हुई नही आती हैं। किन्तु एक ओर से भरी आती हैं और दूसरी ओर से खाली जाता है। यदि सव भरी हुई आवें तो माल नही उठ सकती है और यदि सभी खाली आवें तो काम नही चल सकता है।

**न्यूनाधिकता का कारण**

इसी प्रकार मानव के जीवन मे भी परिवर्तन होता रहता है। देखिये— सामान्य केवली भगवान को भी सारे विश्व का ज्ञान है तीर्थंकर केवली भगवान को भी सारे विश्व का ज्ञान है। दोनो का केवलज्ञान समान है। उसमे अणुमात्र भी हीनाधिकता नही है। परन्तु तीर्थंकर केवली के लिए समवसरण की रचना होती है किन्तु सामान्य केवली के लिए नही होती है। ऐसा क्यों होता है? भाई, इसका कारण यही है कि तीर्थंकर केवली के तीर्थंकर प्रकृति का उदय विशेष है और आदेय नाम कर्म का भी उदय अधिक है। सामान्य केवली के प्रथम तो अतिशय पुण्यवाली तीर्थंकर प्रकृति का उदय ही नहीं और आदेय नाम कर्म का भी तीव्र उदय नहीं है। इस प्रकार केवलज्ञान की दृष्टि से समानता होने पर भी इस पुण्यवानी का अन्तर पड गया।

और भी देखो—चौवीस ही तीर्थंकरो के तीर्थंकर प्रकृति का उदय समान रहा है फिर भी भगवान आदिनाथ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामी का नाम आज जैसे सर्व साधारण में प्रसिद्ध है, वैसा अजित-नाथ, सुमतिनाथ विमलनाथ आदि तीर्थंकरो का नाम प्रसिद्ध नही है। इसका भी यही कारण है कि उनके यश कीर्त्ति और आदेय नाम कर्म प्रकृति के उदय मे अन्तर रहा है। ऐसा जो भिन्न-भिन्न मनुष्यों की पुण्यवानी का अन्तर है, वह तो रहेगा ही। उसे कोई मिटा नही सकता। भले ही आज के ये बुद्धिवादी लोग कुछ भी कहते रहे। परन्तु जैसे पाचो अगुलिया कभी समान नही

है, उनमे छोटा-बडापन सदा ही रहा है। इसी प्रकार मनुष्यो मे भी छोटा-बडापन सदा रहा है और रहेगा।

ये बुद्धिवादी कहते हैं—साम्यवाद और समाजवाद का नारा लगाने वाले कहते है—कि हम सबको एक समान कर देंगे। वे कहते है कि देख लो—कल तक जिन लोगो को सारी दुनिया राजा और महाराजा कहकर पुकारती थी और जिनके हुक्म मे उनकी सारी प्रजा चलती थी। परन्तु आज उनके सब विशेषाधिकार समाप्त करके उन्हे साधारण नागरिक के रूप मे लाकर खडा कर दिया है। अब वे अपने नाम के आगे राजा-महाराजा भी नही लिख सकते है। ऐसा कहने वालो से मेरा कहना है कि भले ही आप लोगो ने या वर्तमान भारत सरकार ने अपनी ओर से उनको एक-सा नागरिक बना दिया हो। परन्तु उनके पोते जो उनकी पुण्यवानी है, उसे क्या घटा सकते हो, या उनसे छीन सकते हो ? जनता के हृदय मे उनके प्रति जो मान-सन्मान का भाव है, वह तो नही निकल सकता है। वे तो आज भी जिधर से निकलते है, लोग उन्हे उसी पदवी और सन्मान से सम्बोधित करते है। भाई, जिसके पोते पुण्य-वानी है, वह साधारण व्यापारी से बढकर बडा उद्योगपति बन जाता हैं और उसका सन्मान सर्वसाधारण से बहुत अधिक होने लगता है। यह प्रकृति का नियम है। ये बुद्धिवादी ऊपर के पद और अधिकार को भले ही छीन लेवे, परन्तु भीतर की पुण्यवानी को कोई भी कभी नहीं छीन सकता है।

### आत्मा और कर्म

भाइयो, इसी प्रकार आत्मा का स्थान अजर-अमर है, स्थायी है और कर्मो का स्थान परिवर्तनशील है। इसलिए आत्मा और कर्म भी एक श्रेणी मे नही स्थापित किये जा सकते है। आत्मा सदा चेतन ही रहा है और चेतन ही रहेगा। कर्म सदा जड या अचेतन रहे है और सदा जड-अचेतन ही रहेगे। इनमे इस स्वरूप को कभी भी कोई एक नही कर सकता है।

आज वैज्ञानिको ने मोमबत्ती बनाई, लालटेन, गैस, बिजली आदि अनेक प्रकाश के साधन बनाये। जबकि पहिले दीपक के प्रकाश मे ही सब काम किये जाते थे। इन वैज्ञानिक साधनो के लिए अनेक कारखाने चलाने पडते है और

नाना प्रकार की सामग्री को एकत्रित करना पडता है। परन्तु यह जो सूर्य का प्राकृतिक प्रकाश है, उसके लिए भी क्या कभी तेल-बत्ती आदि सामग्री की आवश्यकता पडी है? नही पडी। उस सूर्य का प्रकाश इन सारे आधुनिक साधनो से कम है क्या? अरे! एक सूर्य के प्रकाश के सामने आज के ये वैज्ञानिक कृत्रिम प्रकाश सब फीके है—धु धले है। परन्तु सूर्य का प्रकाश सदा से वही का वही देदीप्यमान चला आ रहा है और आगे भी चला जायगा। यहा कोई पूछे कि जब सूर्य इतना तेजस्वी प्रकाशमान है तब रात्रि मे उसका प्रकाश क्यो नही होता? भाई, वह परिभ्रमणशील है, अत जहा जाता है, वही प्रकाश करता है। उसमे कही कोई फर्क आने वाला नही है।

इसी प्रकार मनुष्य की पुण्यवानी भी जब तक साथ मे रहती है, तब तक वह किसी के दबाने से दब नही सकती है और रोकने से रुक नही सकती है। आत्मा का जो अजर और अमर स्वभाव है, वह भी किसी के मिटाने से मिट नही सकता। परन्तु एक बात का हमे अवश्य ध्यान रखना है कि इस अटल सिद्धान्त पर निश्चिन्त हो करके ही हमे नही बैठ जाना है। यद्यपि हमने यह जान लिया कि आत्मा चेतन है और अजर-अमर है। तथा कर्म जड है और आते-जाते रहते हैं। तथापि आत्मा को अजर-अमर समझकर यह नहीं सोचना चाहिए कि अब हमको भली करनी करने की क्या आवश्यकता है? नहीं, हमे सत्-उद्योग तो निरन्तर करते ही रहना चाहिए। उद्योग करते रहने पर ही यथार्थ तत्त्व का निर्णय हो सकेगा। यदि हम कर्तव्य को भूल जावेंगे तो पास मे वस्तु होते हुए भी जैसे के तैसे कोरे रह जावेंगे।

### गडा हुआ खजाना

किसी सेठ ने लाखों का धन भूमि मे गाड दिया। वह मर गया। लडका छोटा था। उसे उस गडे धन का कुछ भी पता नही। जब वह बडा हुआ और व्यापार के लिए रकम की जरूरत पडी तो वह किसी साहूकार के पास गया। और रुपये उधार मागने लगा। सेठ ने कहा—अरे, तेरे बाप के पास तो लाखो की पू जी थी, वह कहा गई? लडका बोला—मुझे तो कुछ पता नही है। यदि पू जी होती, तो मैं आपसे मागने के लिए आता ही क्यो? आप पू जी

दे दीजिए। कुछ समय के वाद आपकी पूजी वापिस लौटा दूगा। भाई, जैसे उसके घर मे लाखो की पूजी गडी हुई है। परन्तु ज्ञान होने से वह इधर-उधर मागता फिरता है। इसी प्रकार हमारे आत्मा के भीतर अक्षय सुख की सम्पत्ति भी गडी हुई है। परन्तु उसका ज्ञान न होने से यह इधर-उधर सुख की खोज मे मारा-मारा फिरता है। जव उस लडके को कोई ज्योतिषी वता देता है कि देख, अमुक स्थान पर तेरा धन गडा है। वहा पर खोद और धन निकाल ले। तव वह वहा पर खोदकर अपनी पूजी को प्राप्त करके सुखी हो जाता है। इसी प्रकार हमारे त्रिकालज्ञ महान् ज्योतिपी सर्वज्ञ देव ने भी वता दिया है कि तेरे ही भीतर सुख का अक्षय भण्डार छिपा पडा है। अब तू पुरुपार्थ कर, और उसे प्राप्त करके सुखी बन जा। परन्तु हम मोहनीद मे ऐसे अचेत हो रहे है कि हमे भगवद्-वाणी का कुछ भान ही नही है।

### भला बुरा करने वाला कौन ?

हमारे सामने जो कर्मो का यह खेल खेला जा रहा है, हम उसी मे भूल रहे है और ऐसा समझ लिया है कि आत्मा मे कोई शक्ति ही नही है। आत्मा कुछ भी नही कर सकती है और कर्म ही सब कुछ करने वाले है। धीरे धीरे हम मे और भी कमजोरी आई और कहने लगे कि जो कुछ भी भला-बुरा करने वाला है, वह ईश्वर ही है। पहिले आत्मा को छोड कर्मो को पकडा। फिर कर्मो को छोडकर ईश्वर को पकड लिया। और कहने लगे कि हानि-लाभ, जीवन-मरण और यश-अपयश सब कुछ भगवान के हाथ मे है। अरे, लोग यहा तक कहने लगे कि ईश्वर की इच्छा के विना पेड का पत्ता भी नही हिल सकता है। यही वात आप लोग भी कह रहे है और आपके व्यवहार मे भी आरही है। यद्यपि यह वात जैन सिद्धान्त के प्रतिकूल है। परन्तु जव सिद्धान्त का ज्ञान हो, तव इसका कुछ विचार हो। देखो—जब आप लोग किसी के श्री जी शरण की चिट्ठी लिखते है, तव उसमे भी लिखते हैं कि 'परमात्मा खोटी करी।' अव कहो भाई, जो परमात्मा कहलाता है, जगत् का भला करने वाला माना जाता है। वह भी क्या किसी का बुरा करेगा ? यदि परमात्मा होकर भी किसी का बुरा करता है, तो वह परमात्मा नही, किन्तु दुरात्मा ही

कहलायगा। परन्तु मेरे भोले भाइयो, यह जान लो कि परमात्मा किसी का भी बुरा नही करता है। वह तो निरजन, निराकार और शुद्ध बुद्ध हैं, एव अपने स्वरूप मे स्थित है। उसे दुनिया के सुख-दुख हानि-लाभ, और जीवन-मरण से कोई प्रयोजन नही है। वह तो निर्दोष और निर्लेप है। परन्तु हमने अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर के उसे भी दोषी बना दिया है और उसे भी अपने समान सासारिक कार्यों का कर्त्ता-धर्त्ता मान लिया है। यह बुद्धि मे ऐसी भ्रमपूर्ण कल्पना क्यों आई ? इसका कारण क्या है ? इसका कारण यही है कि हम अपने आत्मा के स्थान को भूल गये। यदि हमे अपने स्थान का पता हो जायगा, तो वास्तविक स्थिति का भी भली भाति परिज्ञान हो जायगा और फिर ये सभी भ्रान्तिपूर्ण कल्पनाए भी दूर कर सकेंगे।

जैसे समुद्र मे जहाज चलाने वाले व्यक्ति को यह पता रहता है कि खारा पानी कहा है और मीठा पानी कहा पर है तो उसे जब जिस पानी की आवश्य-कता पडती है, तब वह उस स्थान से वैसा पानी ले लेता है। यदि उसे खारे और मीठे पानी के स्थल ज्ञात न हो तो फिर वह मीठे पानी के लिए भटकता ही रहेगा।

अथवा जैसे किसी विद्यालय मे दो छात्र एक साथ एक ही पुस्तक पढते है। एक तो मन लगाकर एक-एक वाक्य को पढता है और दूसरा यो ही सरसरी निगाह से पढता है। पहला छात्र उपयोगी सन्दर्भों को अपनी नोटबुक मे नोट करता है और दूसरा छात्र यह सब कुछ भी नही करता है ? अब बताओ— परीक्षा मे उत्तीर्ण कौन होगा ? आप कहेगे कि जो तन्मय होकर पढता है, वही उत्तीर्ण होगा। क्योकि उसे पूछे गये प्रश्नो का उत्तर याद है। किन्तु जिसने सरसरी निगाह से पढा और यह भी पता नही कि कौनसी बात पुस्तक मे कहा लिखी है, वह परीक्षा के समय उसका उत्तर कैसे दे सकता है ?

इसी प्रकार सिद्धान्त तो वही का वही है। श्रीमद्भगवती, पन्नवणा, उत्तराध्ययन और दशवैकालिक आदि सूत्र अनेक बार पढ लिये। परन्तु भगवान ने कहा पर कौन सी बात किस भाव से कही है और कौन सी किस दृष्टि से कही है, यदि इस बात का ज्ञान नही हुआ, तो वह पढना नही, किन्तु

पारायण करना ही हुआ। उसमे से सार कुछ भी हस्तगत नही हुआ। किन्तु विचारशील व्यक्ति एक-एक पद को, एक-एक सूत्र को और एक-एक गाथा को ध्यान से पढते है और उस पर मनन-चिन्तन करते हैं कि इस पद मे भगवान ने क्या भाव निहित किया है और इसका क्या रहस्य है ? इस प्रकार मनन-चिन्तन-पूर्वक पढने से वे रहस्य प्रकट होने लगते हैं और फिर तो एक-एक पद, सूत्र और गाथा के अन्तर्निहित रहस्यों का खजाना ही खुल जाता है, जिनको हृदयगम करने हुए पाठक एक अपूर्व ही आनन्द का अनुभव करने लगता है।

**आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगमन :**

हा, तो मैं स्थान के विषय मे कह रहा था कि आत्मा का स्थान क्या है और कर्मों का स्थान क्या है ? जब शास्त्रो के भावो को गहराई से सोचा, तब पता लगा कि आत्मा का स्थान विवेक है, हलका पन है और अमूर्त्तपना है। तथा कर्मों का स्थान अचेतनपना, भारीपना और मूर्त्तपना है। जैसे जल मे तू बी को डालने पर वह जल के ऊपर ही तैरती है और पत्थर को डालने पर वह नीचे चला जाता है—डूब जाता है। अब यदि उस ऊपर तिरने वाली तू बी को भी पापाण से बाध दिया जावे तो बताओ कि वह तू बी तिरेगी, या डूबेगी ? आप कहेगे कि वह तो डूबेगी ही। दुनिया भी कहेगी कि तूबी डूब गई। यथार्थ मे तो तू बी का स्वभाव डूबने का नही है, किन्तु पत्थर के सयोग से उसे भी डूबना पडा। भाई तू बी के समान आत्मा का स्वभाव ससार-सागर मे डूबने का नही है किन्तु कर्मों का स्वभाव तो पाषाण के समान डूबने का ही है। और जैसे नही डूबने के स्वभाव वाली तू बी पत्थर के सयोग से डूब जाती है। उसी प्रकार नही डूबने के स्वभाव वाला यह आत्मा भी कर्मों के सयोग से ससार मे डूब रहा है। शास्त्रकारो ने जीव और कर्म-पुद्गलो के स्वभाव का वर्णन करते हुए कहा है—

> ऊर्ध्वगौरवधर्माणो जीवा इति जिनोत्तमैः।
> अधोगौरवधर्माण. पुद्गला इति चोदितम् ॥

जिनेन्द्र देवो ने जीवो को ऊर्ध्वगमन स्वभावी कहा है और पुद्गलो को अधोगमन धर्म वाले कहा है।

जब तक जीव के साथ इन कर्म पुद्गलो का लेप लगा रहा है—कर्मों का सम्बन्ध बना हुआ है, तब तक यह जीव ससार मे डूब रहा है। किन्तु जैसे ही इस कर्म-लेप का सम्बन्ध दूर होता है, वैसे ही यह जीव अपने स्वाभाविक ऊर्ध्वगमन धर्म को प्राप्त कर सिद्धपद को प्राप्त कर लेता है। जैसा कि कहा है—

**मृल्लेपसङ्ग निर्मोक्षाद् यथा दृष्टोऽप्स्वलावुनः।**
**कर्म सङ्ग विनिर्मोक्षात्तथा सिद्धगतिः स्म्टता ॥**

जब तूबी पर लगा हुआ मिट्टी का लेप दूर हो जाता है तो जैसे तूबी जल के ऊपर आई हुई दिखाई देती है। इसी प्रकार कर्मों के सग छूटने से जीव का ऊर्ध्वगमन होता है और वह सिद्धगति को प्राप्त कर लेता है, अर्थात् अपने सहज स्वरूप मे जा विराजता है।

**कर्मों के कारण भारीपन**

ससार मे रहते हुए भी आत्मा के ऊपर जब कर्म-भार अधिक होता है, तब यह कर्मों के उदयानुसार परिणत होता रहता है, किन्तु जब उसके ऊपर कर्म-भार हलका होता है और कर्मों का उदय मन्द पडता है, तब यह पुरुषार्थ करके अपने उद्देश्य की सिद्धि करने मे सफल हो जाता है। परन्तु आज तो लोगो के कर्मों का ही प्रावल्य देखा जाता है। कर्मोदय की प्रबलता मे आत्मा वास्तविक पुरुषार्थ से हीन हो जाता है जिसके कारण आज ये नाना प्रकार के कर्मों के खेल दिखाई दे रहे है और असभव बाते भी सभव दिखाई दे रही हैं। आज जो हम धनी को निर्धन और सुखी को दुखी हुआ देखते हैं, वह सब कर्मों का ही खेल है।

भगवान् महावीर के समय राजपुरी नगरी का राजा सत्यन्धर था। उसने स्त्री-भोगासक्ति से अपना राजपाट एक मत्री को सौप दिया। मत्री ने सदा के लिए राज्य हस्तगत करने के लोभ मे राजा को मरवा दिया। उसकी रानी गर्भवती थी। मरने से कुछ समय पूर्व उसने मयूरयत्र मे विठाकर उसे राजमहल से उडा दिया। वह श्मसान मे जाकर उतरा और रानी के वहा पुत्र पैदा हुआ। उस समय का वर्णन करते हुए आचार्य ने कहा है—

जीवाना कर्मवैचित्री श्रुतवन्तः श्रुतौपुरा ।
पश्येयुरधुनेतीव श्रीकल्पाऽभूदकिञ्चना ।।
पूर्वाह्ल पूजिता राज्ञी राज्ञा सेवापराह्लके ।
प्रेतभूशरण्याऽभूत्पापाद्विभ्यतु पण्डिताः ।।

जो लोग जीवो की कर्म-विचित्रता को पहिल शास्त्रो मे सुना करते थे, वे लोग आज प्रत्यक्ष मे देख लेवे कि वह लक्ष्मी के समान रानी अकिंचन हो गई। जो रानी प्रातःकाल राजा के द्वारा पूजित और सन्मानित हो रही थी, वही सायकाल मे प्रेतभूमि (मसान) के शरण को प्राप्त हो रही है। आचार्य कहते हैं कि कर्मों की ऐसी दशा देखकर ज्ञानी पडितजनो को पाप से डरना चाहिए।

भाई, सदा से ही इस प्रकार की अनेक घटनाए होती रही हैं और आज भी हो रही है, कि प्रातःकाल जिनके द्वार पर मगल गीत गाये जा रहे थे, साय-काल के समय वहा पर रुदन और हाहाकार सुनाई देता है। सवेरे जो श्रीमान् थे, शाम को वे ही भिखारी बने दिखाई देते हैं। कल जो आवाद थे, वे आज वर्वाद हुए नजर आ रहे है। परोक्ष में भी इन कर्मो ने जो खेल खिलाये है, उन्हे भी हम आप सूत्रों मे सुनते आरहे है।

राजा श्रेणिक मगध देश का अधिपति था। अभयकुमार उनका प्रधान मत्री था। वह श्रेणिक के पाच सौ मन्त्रियो मे सबसे अधिक बुद्धिमान् था। जब भगवान् महावीर राजगृही नगर मे पधारे, तब अनेक राजा-रानियो ने तथा सेठ सेठानियो आदि ने भगवान की सेवा मे उपस्थित होकर भगवती दीक्षा धारण की। अनेक व्यक्तियो ने श्रावक के व्रत भी धारण किये।

उस समय अभयकुमार ने विचारा कि मेरे अनेक साथियो ने भगवान से दीक्षा लेकर आत्म-कल्याण कर लिया। परन्तु मेरा आत्म-कल्याण कब होगा? इस प्रकार दीक्षा लेने के भाव से वे श्रेणिक के पास गये और बोले—महाराज, मैं आपकी सेवा बहुत समय से करता आरहा हू। अब इस कार्य से मुझे अवकाश मिल जाय तो अच्छा रहेगा। क्या आप अब मुझे आत्म-कल्याण करने की आज्ञा देंगे? अब मेरे भाव भगवान महावीर की सेवा मे पहुच कर दीक्षा लेने के है।

श्रेणिक ने कहा—अभयकुमार, मैंने दूसरे पुत्रो को और रानियो को तो दीक्षा लेने की आज्ञा दे दी है। परन्तु तुझे आज्ञा नही दे सकता। हा, मेरे मरने के पश्चात् तू दीक्षा ले सकता है। भाई, श्रेणिक के हृदय मे अभयकुमार के प्रति प्रेम भी अधिक था और राज्य-सचालन का स्वार्थभाव भी था। अत उन्होंने कहा—अभयकुमार, जव तक तू मेरे पास है, तव तक मुझे राज्य की कोई चिन्ता नही है।

अभयकुमार ने कहा—महाराज, आप मुझे आत्म-कल्याण का अवसर कव देंगे ? श्रेणिक ने कहा—अभयकुमार, जब मे कह दू 'जा र जा अभय।' तव तू दीक्षा लेने के लिए जा सकता है। यह सुनकर अभयकुमार का चित्त शान्त हुआ अव अभयकुमार उस समय की प्रतीक्षा करने लगे। और मन ही मन भगवान से प्रार्थना करने लगे—हे भगवन, मुझे वह शुभ अवसर कव प्राप्त होगा, जव मैं आपकी सेवा मे उपस्थित होकर भगवतीदीक्षा अगीकार कर सकू ? परन्तु राजा श्रेणिक यह आज्ञा स्वस्थ चित्त से कव देने वाले थे ?

राजा श्रेणिक का महारानी चेलना पर भी अपार प्रेम था। क्योंकि चेलना के आने के पश्चात् राज्यश्री भी खूव वढी थी और श्रेणिक के जीवन मे भी धर्म की अभिवृद्धि हुई थी। इसलिए राजा उसे अपना उपकार करने वाली मानते थे। राजा का चेलना पर इतना अधिक प्रेम था कि यदि हजार आदमी भी आकर चेलना के विषय मे कोई आखो देखी भी अयोग्य वात को कहें, तव भी राजा उसे सच नही मान सकता था। पर भाई, इन कर्मों का खेल भी कितना प्रवल है, यह देखो।

### चेलना पर वहम

एक समय की वात है कि राजा श्रेणिक और रानी चेलना शयनागार मे सो रहे थे। नींद मे चेलना का एक हाथ रजाई से वाहिर रह गया। शीत की अधिकता से वह अकड गया। रानी की जब नींद खुली तो उसने हाथ को रजाई के भीतर करने का प्रयत्न किया। मगर वह शीत से इतना सुन्न हो [illegible]

कि करने पर भी वह रजाई के भीतर नही हुआ । तव अचानक चेलना के मुख से निकल गया कि 'उसका क्या हाल होगा ?' इसका भाव यह था कि जो साधु तालाब के किनारे बिना वस्त्र ध्यान लगाये खडे है, ऐसे शीतकाल मे 'उनका क्या हाल होगा ।' इस वाक्य के मुख से निकलते ही राजा की नीद खुल गई । वे सोचने लगे कि अरे, मैं तो आज तक इसे पतिव्रता मानता था । परन्तु यह तो कह रही है कि 'उसका क्या हाल होगा ।' इससे ज्ञात होता है कि इसका किसी अन्य पुरुष से अनुचित सम्बन्ध है और उसी का विचार करके ऐसा यह कह रही है । और उसकी चिन्ता कर रही है । बस, यह पतिव्रता नही है ।

अब राजा ने न तो इस बात का कुछ निर्णय ही किया और न रानी से कुछ पूछा ही । वह रात उन्होने बडी कठिनाई से काटी । प्रात काल होते ही नित्य क्रियाओ से निवृत्त होकर और वस्त्राभूषण पहिन कर वे भगवान महावीर के दर्शन करने को रवाना हो गये । इसी समय अभयकुमार सामने आगये और उन्होने महाराज को नमस्कार किया । श्रेणिक ने कहा—अभयकुमार, जाओ और चेलना के महल के चारो ओर ईंधन और घास-फूल डालकर के उसमे आग लगा दो ।

श्रेणिक के मुख से ये शब्द सुनते ही अभयकुमार एक दम स्तम्भित हो गये और बडे भारी विस्मय मे पड कर विचारने लगे कि जिस चेलना रानी पर महाराज का असीम प्रेम था, उस पर आज सहसा इतना रोष क्यो ? आज महाराज के मन मे इतना आकस्मिक परिवर्तन क्यो हो गया ? बहुत सोच-विचार करने पर भी वे कुछ निश्चय नही कर सके । वे यह बात भी भलीभाति जानते थे कि महाराज जिस बात का निश्चय कर लेते है, उसे पूरा करके ही रहते हैं । वे भारी असमजस मे पडे कि मैं क्या करू ? क्या केवल महल को ही जलाऊ, अथवा चेलना रानी को भी उसके साथ मे जला दू ? अरे, महाराज भी कितना अन्याय कर रहे है कि इधर तो निरपराधिनी रानी को जलाने की आज्ञा दे रहे हैं और उधर भगवान के दर्शनार्थ भी जा रहे है । मैं कैसे यह भयकर पाप-कार्य करू ? उसने यह भी सोचा कि यद्यपि श्रेणिक महाराज ने जलाने का आदेश

दिया है, तथापि मैं माता चेलना को कैसे जीवित जला दू ? आखिर वे मेरी माता हैं। ऐसा सोच-विचार करते हुए वे रानी चेलना के पास पहुचे। और उन्हे नमस्कार करके बोले—मा साहब, आप तल-घर मे चली जावें। चेलना ने पूछा—क्यो बेटा, क्या बात है ? अभयकुमार बोले, अभी ऐसा ही अवसर है। चेलना ने फिर पूछा—अरे, कुछ तो बता ? क्या बात है ?

अभयकुमार ने कहा—आप पहिले तलघर मे चली जावें। मैं पीछे बता दूगा। विवश होकर चेलना तलघर मे चली गई। तत्पश्चात महाराज के आदेशानुसार महल के चारो ओर इंधन, घास-फूस डलवा करके आग लगवा दी। देखते ही देखते वह विशाल महल जलकर राख हो गया। भाई, राजाओ को विवेक नही होता। उनके तो मन मे जो भी बात जम जावे, उसे ही कर गुजरते हैं।

राजा श्रेणिक भगवान की वन्दना करके धर्मोपदेश सुनने को बैठ गये। भगवान ने अपने दिव्य ज्ञान से जान लिया कि यह रानी चेलना का चादना करके आया है। तब भगवान ने कहा—श्रोताओ, राजा चेटक की सात पुत्रिया हैं, वे सातो ही रत्नो की मजूषा, बोधि की खानि, धर्म की धारिणी और शीलवती पतिव्रता है। उनमे से किसी के भी भीतर राई बराबर भी दोष नही है।

ज्यो ही भगवान के मुखारविन्द से निकले हुए ये शब्द राजा श्रेणिक ने सुने कि त्यो ही सोचने लगे—अरे, गजब हो गया। मेरी रानी चेलना भी तो उन सातो मे से एक है। जब भगवान के श्रीमुख से ये शब्द निकले हैं, तब तो चेलना अवश्य ही निर्दोष है। हाय, मैंने तो उसे दोषी समझ कर महल-सहित जीवित जलाने का हुक्म दे दिया है। हाय, मैं बिना निर्णय किये ही यह क्या कर बैठा ? ऐसा सोचते और पश्चात्ताप करते हुए श्रेणिक अति खिन्न मन से उठे और भगवान की वन्दना करके घोडे पर सवार हो पवन वेग से राजमहल को चल दिये। मार्ग मे घोडे पर चढे और सामने आते हुए अभयकुमार मिले। उन्हे देखते ही श्रेणिक ने पूछा-अभयकुमार, क्या महल जला दिया ? अभय ने कहा हा महाराज, आपकी आज्ञा का पालन करके ही आ रहा हू। तब श्रेणिक ने कहा—'जा रे जा अभय, तुझ मे अक्ल नही है।'

अभय कुमार ने ज्यो ही श्रेणिक के मुख से उक्त शब्द सुने तो वे सीधे भगवान के समवसरण मे पहुचे और वस्त्राभूषण उतार कर, तथा पचमुष्टि केश लोच करके भगवान के सम्मुख उपस्थित होकर वोले—भगवन् ! मुझे भगवती जैनेश्वरी दीक्षा दीजिए। इस प्रकार दीक्षा धारण करके अभयकुमार मुनियो की श्रेणी मे जाकर बैठ गये।

इधर राजा श्रेणिक जब राजमहल पहुचे तो देखा कि रानी चेलना का महल जलकर राख वन चुका है। उसे देखते ही वे विलाप करने लगे—हाय, चेलने, तू कहा चली गई ? हाय, मैंने अपने ही मुख से अपना यह क्या सत्यानाश करा डाला ? इस प्रकार कुछ समय तक विलाप करते हुए विचार आया कि अभयकुमार इतना मूर्ख नही है कि रानी को भी जला दे। अवश्य ही उसने चेलना को कही न कही छिपा दिया होगा ? यह विचार कर उन्होने उस भस्म हुए महल के बीच मे खडे होकर 'चेलना, चेलना' पुकारना प्रारम्भ किया। चेलना ने ज्यो ही महाराज के ये शब्द सुने तो तलघर मे से आवाज दी—महाराज, मे यहा हू। यह कहती हुई चेलना तलघर से बाहिर निकली। उसे बाहिर निकलती हुई देखकर श्रेणिक का जी मे जी आया और चेलना की ओर स्निग्ध दृष्टि से देखते हुए वोले—अरे, मैंने तो तुझे जला देने का हुक्म दे दिया था। परन्तु अभय की सूझ-बूझ से तू बच गई है।

कुछ देर के बाद श्रेणिक को याद आया कि अरे, मैंने तो अभयकुमार को यह कह दिया - 'जा रे अभय, जा'। कही वह भगवान के पास जाकर दीक्षा न ले लेवे ? यह विचार कर वे तुरन्त वापिस गये। वहा जाकर देखा कि अभयकुमार तो समवसरण मे दीक्षा लेकर मुनियो की श्रेणी मे बैठे हुए है। तब श्रेणिक ने भगवान से कहा - हे त्रिलोकीनाथ, आपने यह क्या किया ? फिर अभयकुमार से वोले—चलो अभयकुमार, घर। तुम्हारे विना हमारा राजपाट कौन सभालेगा ? भाई, जब मनुष्य के ऊपर बीतती है तभी पता चलता है।

**जब अपने ऊपर बीते तब ?**

ब्यावर मे एक श्रावक था। वह धर्म की दलाली का काम भी बहुत करता था। वह जिस किसी के यहा जाता, उससे कहता —आपकी तो बडी पुण्यवानी है, जो आपके यहा से अमुक व्यक्ति दीक्षा ले रहा है। धन्य है आपको। इस प्रकार वैरागी भाइयो के घरो पर जाता और अपनी वात की करामात से घर-वालो को तैयार करके दीक्षा की आज्ञा दिलवा देता था। कुछ समय के पश्चात् उसके दोहिते को ही वैराग्य आ गया। जब उसने कहा - मैं तो दीक्षा लूगा। तब वही भाई वाजारो मे जाकर लोगो से कहने लगा—अरे, इन साधुओ की बुद्धि को भी क्या हो गया है ? ये तो बच्चो को वहका देते हैं। अब तो मे इन साधुओ का मुख भी नही देखूगा। उसने लडके को पकडकर घर मे बन्द कर दिया। वैरागी ने कहा—आप कुछ भी करें, परन्तु मैं तो दीक्षा लेकर के ही रहूगा। वह भाई वोला—मैं तुझे हर्गिज दीक्षा नही लेने दूगा। फिर दो दिन वाद वह सन्तो के पास पहुचा और उनसे कहने लगा—महाराज, आप यहा से विहार कर दीजिए। यदि विहार नही करेंगे तो मैं आत्मघात कर लूगा। यद्यपि वे मुनिराज तपस्वी थे और तेले-तेले पारणा करने वाले थे, तथापि उसने उनकी भी चतुराई भुला दी। जब मे वहा गया तब वह श्रावक भाई आकर जमा हुआ था। मैंने उपदेश मे कहा—देखो भाई, जो धर्म की दलाली करता है, वह तीर्थंकर गोत्र को वाधता है। फिर उस भाई को लक्ष्य करके कहा—अभी तक पराये घर की ही दलाली करते थे। जब घर पर बीती, तब मालूम पडी ! अरे, अन्य लोग क्या विना मा-बाप के हैं। वह कहने लगा—महाराज, वात तो सच है। परन्तु मेरे कलेजे मे आग लगी हुई है। मैंने कहा —भाई, पराये घर की दलाली सरल होती है। उसमे क्या लगता है ? केवल मुख से दो-चार वातें ही तो कहनी पडती हैं। परन्तु जब घर की दलाली का अवसर आता है, तब कलेजे मे आग लग जाती है ! सुनकर वह भाई चुप हो गया।

आप लोग अभी यहा पर वैठे हैं और तपस्या करने की चर्चा चले तो आप दूसरे से झट कह देंगे कि अरे, तेला कर लो, अठाई कर लो, पचरगी

[illegible] कर लो। और जब वे आपसे कहे कि आप भी करो। तब आप झट [illegible] कि भूख में तो तपस्या नही होती है। भाई, दूसरे से तो कहना आता है। परन्तु जब स्वयं करने का अवसर आता है, तब अगल-बगल झांकने लगते हो।

परन्तु भाई, अभयकुमार मुनि ने श्रेणिक से कहा—राजन्! हमारा-आपका [illegible] समाप्त हो गया है। अब मैं वापिस घर को जाने वाला नही [illegible]। [illegible] श्रेणिक बोले— तुमने मेरी आज्ञा के बिना दीक्षा कैसे ले ली? तब अभय मुनिराज ने कहा—राजन्, अपने वचनों को याद करो। आपने कहा था [illegible] अभय जा'। आपके यह कहने पर ही मैंने आकर के दीक्षा ले ली। [illegible] श्रेणिक ने कहा—अरे, मैंने जाने को नही कहा था। वह तो क्रोध [illegible] था। [illegible] अब तुम मेरे साथ चलो। अभय मुनिराज ने कहा—राजन्, [illegible] कि गृह-त्याग करके फिर वापिस घर को जाऊ? अब [illegible]। अन्त मे श्रेणिक निराश होकर और भगवान की वन्दना करके वापिस लौट आये।

के अजर-अमर स्थान को भी प्राप्त कर लेते हैं। भाई, ये सब समय की बातें हैं। व्यवहार मे दुनिया भी कहती है कि समय बलवान् है, 'वक्त पाहुनी है' यह आत्मा भी ममय के निमित्त को पाकर ही काम करती है।

भाइयो, यदि आत्मा के अजर-अमर स्थान को प्राप्त करना है तो कर्मों से नाता तोडो। जब तक नाता नही छूटेगा, तब तक आत्मा के स्थान को प्राप्त नही कर सकोगे।

वि० स० २०२७, आसोज वदि–३

सिंहपोल, जोधपुर

# ५ आत्म-सिद्धि

सज्जनो, आज का विषय है आत्मसिद्धि । वैसे तो शास्त्रो मे अष्ट-सिद्धियो और नव-निधियो का वर्णन किया गया है । और इनको पाने के लिए सारी दुनिया अभिलाषा करती है । तब लोग चाहते है कि हमारे घर मे आठ-सिद्धिया और नव-निधिया आ जावें । परन्तु एक भी सिद्धि और निधि का पता नही कि वह कैसे होती है और कैसे प्राप्त की जाती है ? भाई, केवल चाहने मात्र से इनकी प्राप्ति नही होती है ।

### पूंजी पास मे हो तो…

आपने किसी शहर मे आढतिया की दुकान पर रकम जमा करा रखी है । अब यदि आप उस शहर मे पहुचते है और दुकान पर जाते है, तो वह देखते ही आपके सामने आता है, आपका स्वागत करता है और अन्य लोगो से आपका परिचय कराता है । इस प्रकार आपको वहा आदर-सत्कार भी मिलता है और खाने के लिए भी बढिया तर-माल मिलते हैं । वह यह सब क्यो करता है ? इसीलिए कि आपकी जो रकम उसके यहा जमा है, वह आप वापिस न कर लेवें । दुनिया बडी होशियार है । बिना स्वार्थ के क्या कोई किसी को पूछता है ? नही पूछता । कहने का साराश यह कि आपकी रकम जिसके यहा जमा है उसके यहा जाने पर आदर-सत्कार भी मिला और बढ़िया खान-पान भी मिला ।

यदि कोई दुकानदार आप पर पाच हजार रुपये मागता है और आप उसकी दुकान के सामने पहुचते हैं तो इतना वह अवश्य कहेगा कि आइये। परन्तु आपके दुकान पर वैठते ही कहेगा—भले आदमी कब से कह रहा है कि रुपये दूंगा पर आज तक एक भी पैसा जमा नही कराया है? यदि तुझे कुछ भी शर्म हो तो इसी समय हमारी सारी रकम लाकर दे। यदि सात दिन के भीतर रकम नही आई, तो तेरे ऊपर अदालत मे दावा दायर कर दिया जावेगा। भाई, इस दुकानदार के यहा जाने पर न तो स्वागत-सत्कार हुआ और न खाने को तर-माल ही मिले? प्रत्युत फटकार, धुतकार और गालियो की बौछार अवश्य प्राप्त हुई।

इसी प्रकार अपने पास मे पूर्व की पुण्यवानी जमा है, तब तो आप जिस वस्तु की कल्पना करेंगे, वह अनायास ही प्राप्त हो जायगी। परन्तु इसके विपरीत यदि पुण्यवानी पोते नही हैं और फिर किसी वडी वस्तु की इच्छा करोगे, तो वह कैसे प्राप्त हो जायगी? कभी नही होगी। भाई, यह पचायती तो दुनिया की है। हमको इस विषय मे अधिक विचार करने की आवश्यकता नही है। दुनिया खाली दे, या भरी दे, यह दुनिया का काम दुनिया करे। हमे तो आठ-सिद्धि और नव-निधि की भी आवश्यकता नही है।

भाई, अपनी वस्तु तो निराली है और उसी पर आज हमे कुछ विचार करना है। वह निराली वात है आत्मसिद्धि की। अर्थात् आत्मा की सिद्धि कैसे हो? इसके लिए हमे किसी वडे सेठिया, आडतिया या दलाल को पकडने की आवश्यकता नही है। हम अपनी आत्म-सिद्धि स्वय कर सकते हैं। इसके लिए हमारे भीतर अपनापन आवश्यक है। क्योकि हमे अभी तक अपनापन प्राप्त नही हुआ है। अभी तक तो हमारे भीतर परपना ही है। हमारे द्वारा दूसरे ही दूसरो का काम हो रहा है। अपना काम नही हो रहा है।

**कौन अपना? कौन पराया?**

आप लोग कहेंगे—महाराज, हम तो अपना ही अपना काम दिन-रात करते है। हम तो दूसरे का कुछ भी काम नही करते हैं। फिर आप यह कैसे कहते है कि परका ही काम कर रहे हो? परन्तु भाई, मैं पूछता हू कि आप

जो शरीर को नहला रहे है, वढिया वस्त्राभूषण पहिना रहे है, अच्छे-अच्छे भोजन करा रहे है और शरीर को सब प्रकार से सहायता पहुँचा रहे है, तो ये काम अपने हैं क्या ? यदि यह शरीर अपना होता, तो यह मरण के समय अपने ही साथ चलता ? परन्तु यह साथ नही जाता है, इससे सिद्ध है कि यह अपना नही है। इस प्रकार पहिले तो आप इस अपने से भिन्न पर-शरीर के लिए काम कर रहे हैं। इसके बाद स्त्री के लिए, पुत्र के लिए, माता-पिता के लिए, पुत्री-जमाई के लिए, पोते-पोतियो और दोहिते-दोहितियो के लिए काम कर रहे हैं और यदि इनसे अवकाश मिल गया तो मित्रो और पडौसियो के लिए काम करते है। मैं पूछता हू कि क्या ये अपने हैं ? अरे !

**जहां देह अपनी नहीं, तहां न अपना कोय।**
**घर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥**

भाई, जब अपने जन्मते ही साथ आया यह शरीर अपना नही, तब शरीर के साथ सम्बन्ध रखने वाले ये माता-पिता, भाई-वहिन और स्त्री-पुत्रादि अपने कैसे हो सकते है ? कभी नही हो सकते है। ये तो सब प्रत्यक्ष ही पर दिख रहे हैं। उनके लिए जो हम काम रहे है, वह सब पराया काम है। हम जो उनके लिए किये जाने वाले कार्यो को अपना मान रहे है, सो यही सबसे बडी भूल है। परन्तु इस भूल को बताने वाला कौन है ? क्योकि मनुष्य को अपनी भूल स्वय दृष्टिगोचर नही होती है। इसे बताने के लिए तो तीसरे की ही आवश्यकता होती है। वह भूल बताने वाला है—सम्यग्ज्ञान। जब आत्मा को भेद-विज्ञान हो जाता है, तभी वह जान पाता है कि अभी तक जिनको मैं अपना समझ रहा था, वे सव तो वस्तुत पर हैं। मेरा स्वरूप इन सवसे पर है। मैं अपनी भूल से पर वस्तु को अपना मान रहा था। इसी भ्रम के कारण मैं इस ससार मे अनादिकाल से परिभ्रमण करता आ रहा हू। जब इस प्रकार का भेद-ज्ञान प्राप्त हो जाता है, तभी वह कर्म-बन्धनो से छूटने का प्रयत्न करता है और तभी आत्म-सिद्धि होती है। इसीलिए महर्षियो ने कहा है—

**भेदविज्ञानत. सिद्धाः सिद्धा ये किल केचन।**
**तस्यैवाभावतो वद्धा : बद्धा ये किल केचन ॥**

अर्थात्—आज तक जितने भी जीवो ने आत्म-सिद्धि प्राप्त की है और सिद्ध हुए हैं, वे सव भेद-विज्ञान से ही सिद्ध हुए हैं। और आज जितने भी प्राणी कर्मों से वधे हुए दिखाई देते है, वे सव भेद-विज्ञान के अभाव से ही वधे हुए हैं।

जो जीव इस भेद-विज्ञान को प्राप्त कर लेते हैं और तदनुसार पराये कार्य छोडकर आत्मकार्य मे सलग्न हो जाते हैं, वे ही लोग हमारी-आपकी भूल वता सकते हैं। वे कहेगे—अरे भाइयो, यह क्या कर रहे हो ? अपनी वस्तु को सभालो और परवस्तु को छोडो। यह वात वे अपनी कपोल-कल्पना से नही कह रहे हैं। किन्तु भगवान ने जो दिव्य उपदेश दिये हैं और जो आगमो एव शास्त्रो मे निवद्ध है, उनका मनन-चिन्तन करके और उस पर स्वय अमल करके हमे प्रेरणा दे रहे है। वे कहते हैं—

ज्ञानी जीव निवार भरम तम, वस्तु स्वरूप विचारहु ऐसें ।।टेर।।
सुत तिय वन्धु धनादि प्रगट पर, ये मुझसे हैं भिन्न प्रदेशें।
इनकी परिणति है इन आश्रित, जो इन भाव परिणवें वैसें ।। ज्ञानी०१।।
देह अचेतन, मैं चेतन, इन परिणति हो य एकसी कैसे।
पूरण-गलन स्वभाव धरे तन, मैं अज अचल अमल नभ जैसे ।। ज्ञानी०२।।
पर परिणमन न इष्ट अनिष्ट न, वृथा राग रूप द्वन्द भये से।
नसे ज्ञान निज, फसे वन्ध मे, मुक्ति होय समभाव लये से ।। ज्ञानी०३।।
विषय चाह दव-दाह नसै नहिं, विन निजसुधासिन्धु मे पैसे।
अव जिनवैन सुने श्रवणनितें, मिटै विभाव करू विधि तैसे ।। ज्ञानी०४।।
ऐसो अवसर कठिन पाय अव, निज हित हेत विलंव करे से।
पछतावो वहु होय सयाने, चेतन दौल छुटो भव-भय से ।। ज्ञानी०५।।

हे ज्ञानी जीव, अपना भ्रम-तम दूर करके वस्तु-स्वरूप का विचार कर। ये पुत्र-स्त्री आदि जो प्रत्यक्ष ही तेरे से भिन्न है। उनकी परिणति उनके आश्रित है। उनके पीछे तू अपने भावो को क्यो विगाडता है ? और जो तेरा यह देह है, जिसे तू अपना मान रहा है सो भाई, देह तो अचेतन है और तू चेतन है। फिर

दोनो की परिणति एक कैसी से हो सकती है ? देह का पूरणगलन मलिन स्वभाव है और तेरा अजर-अमर निर्मल स्वभाव है। इसलिए तू पर-वस्तु के परिणमन मे व्यर्थ ही इष्ट-अनिष्ट की कल्पना करके राग-द्वेप कर रहा है। इस राग-द्वेष से ही तू बन्धन मे पड रहा है और तेरा विवेक नष्ट हो रहा है। यदि तू मुक्ति चाहता है – आत्म-सिद्धि को प्राप्त करना है तो समभाव को धारण कर। इस समभाव से ही मुक्ति प्राप्त होगी। यह जो विपयो की चाह-रूपी दव-दाह तुझे जला रहा है, वह अपने भीतरी ज्ञानरूपी अमृतसागर मे प्रवेश किये विना शान्त नही होगा। हे आत्मन्, अव जिन भगवान के वचनो के सुनने का अवसर प्राप्त हुआ है, तो ऐसा उपाय कर कि जिससे तेरी यह विभाव परिणति छूट जाय। यह कठिन सुवर्ण-अवसर पाकरके भी यदि तू अपने आत्म-हित के करने मे विलम्ब करेगा तो पछताना पडेगा। इसलिए हे चेतन आत्माराम! स्वभाव-परिणति को प्राप्त करने का प्रयत्न करो, जिससे कि तू भव के भय से छूट सको।

भाई, प्रभु के इन वचनो का जिन्होने भूतकाल मे विश्वास किया और तदनुसार आचरण किया है, उन्हे आत्म-सिद्धि प्राप्त हुई है। आज तो भगवान के वचनो पर विश्वास कर तदनुकूल आचरण कर रहे है, वे भी विदेह क्षेत्रो से आत्म-सिद्धि पा रहे है और जो विश्वास के साथ भगवान के कथनानुसार आचरण करेंगे, वे नियम से सिद्धि प्राप्त करेगे।

जैसे एक वैद्य ने अपने बुद्धि-बल से एक ऐसी औपधि का निर्माण किया, जिससे उसका भी रोग मिट गया और उसने जिस-जिसको वह औषधि सेवन के लिए दी, उन सबका भी रोग मिट गया। अब बतलाइये कि ऐसा वैद्य यदि आपको औपधि देवे तो आपको उस पर विश्वास आयेगा, या नही ? अवश्य ही आयेगा। फिर भी कदाचित् यह विश्वास गलत हो सकता है, क्योकि वैद्य छद्मस्थ है, अल्पज्ञानी है, अत उससे कोई न कोई भूल होने की सभावना है। परन्तु वीतरागी सर्वज्ञदेव ने भव-रोग को मिटाने के लिए जो औपधि बताई है, उसमे भूल नही हो सकती है, वह सदा अमोघ और अचूक ही सिद्ध होगी। उनके वचनरूपी औपधि मे शका करने की अणुमात्र भी गु जायश नही है।

उनके वचनो को चाहे निश्चय मे परखो, चाहे व्यवहार मे परखो और चाहे राजनीति मे परखो, वे मर्वत्र समान रूप से सत्य और अचूक फलप्रद ही सिद्ध होगे। ऐमे सर्वज्ञ परमात्मा के वचनो पर विश्वास करके और उनके द्वारा वतलाये गये मार्ग का अनुमरण करके ही हमे आत्मसिद्धि करनी है। परन्तु आत्ममिद्धि तभी होगी, जवकि आपकी पर-पुद्गलो से ममता हटेगी। आप लोग हम से कहते हो कि महाराज, आप तो तिर गये और कीचड से निकल गये। परन्तु हम तो अभी तक कीचड मे पडे हुए हैं। परन्तु भाई, हमारे भी अभी कई रोग लगे हैं।

म्हारा - म्हारा कर रह्या-चेता पुस्तक माल।
परिग्रह भाख्यो वीर जिन-वोले उपदेश माल॥

देखो, अभी हम भी तो कहते हैं— ये हमारे चेले है, यह हमारी सम्प्रदाय है और ये हमारे पोथी-पन्ने हैं, आदि। यह तो परिग्रह अभी तक हमारे लग ही रहा है। यदि यह परिग्रह उठ जाय तो भव-रोग ही मिट जाय। हमने आप लोगो वाला कुटुम्व-परिवार और धन-धान्य वाला परिग्रह रोग तो मिटा दिया। किन्तु यह नया रोग लगा लिया है। पहिले एक घर की चिन्ता थी, अव हजारो घरो की चिन्ता लग गई। अव तो पहिले से भी अधिक प्रपच पीछे लग गया है। इस प्रकार जव हम इस प्रपच मे उलझ गये, तव कैसे मानें कि हम कीचड से निकल गये है? हमे तो ऐसा प्रतीत होता है कि हम पहिले से भी अधिक कीचड मे फस गये हैं। जो लोग अधिक लम्बी चौडी वाते करते हैं और आज चारो ओर से समन्वय-ममन्वय की आवाज आरही है और कहा जा रहा है कि सव एक-रूप मे हो जाओ। और इस राग मे सव अपना स्वर मिला कर कहते हैं कि हा साहव, हमे एक होना है। परन्तु मैं एक वात कहूगा कि जो राग मे राग मिलाते है, उनके हृदयो को भी तो जरा टटोल कर देखिये कि क्या वे वास्तव मे एक होना चाहते हैं?

#### समन्वय कैसा?

समन्वय का नारा वुलन्द करने वालो के हृदयो मे कैसा समन्वय हो रहा है, यह तो वे ही जान सकते हैं। परन्तु मैं इतना कह सकता हू कि समन्वय भी

दो प्रकार का होता है। जिससे आप अनुमान लगा सकेंगे कि उनके मन मे कौन से समन्वय का भाव है ? एक समन्वय होता है खरबूजे के समान और दूसरा होता है नारगी के समान। खरबूजे को देखो तो ऊपर से न्यारी-न्यारी फाके दिखाई देती हैं। परन्तु अन्दर से चीरकर देखो तो एक रूप मे दिखाई देता है। दूसरा समन्वय नारगी के समान होता है। अर्थात् नारगी ऊपर से तो एक दिखती है। परन्तु उसके छिलके को तोडकर देखो तो अलग-अलग फाके निकलती है। इससे आप लोग अनुमान लगा सकेंगे कि आज का समन्वय का नारा नारगी के समान है। लोग ऊपर से तो समन्वय की डीगे हाकते है— और समन्वय का भाव दिखाते है जब कि उनका हृदय नारगी की फाको के समान अलग-अलग है।

**ऊपर से एक : भीतर से अनेक**

भाई, अभी चार दिन पहिले भारत जैन महामडल के लोग आये और कहने लगे कि विश्वमैत्री दिवस मनाना है। तब मैंने कहा—भाई, अभी तक घर का ही प्रेम नही हुआ तो विश्वमैत्री होना तो कोसो दूर है ? और आप कहा जा रहे है ? तब वे लोग बोले—महाराज, आज हवा ही ऐसी चल रही है। अतएव हमे भी लोगो के साथ चलना पडेगा। मैंने कहा—ऐसे कार्य मे मुझे कुछ रस-कस नही दिखाई देता है। और विना रसके काम करने मे कोई मजा भी नही है। सोचो तो सही ? आप चार आदमी यहा आये है। अब चारो के मन मे एक भाव आगये कि मैं इनका और ये मेरे है। अब यदि कोई छोटा काम आ जायगा तो उसे करने मे देर नही लगेगी। परन्तु चारो के हृदय के भाव अलग अलग है और ऊपर से एक दिखा रहे है तो कोई काम सफल नही होगा।

आप लोग दुनिया मे चारो ओर दृष्टि दौडाकर देखिये तो यही ज्ञात होगा कि सब लोग ऊपर से एक होने की बात करते है, परन्तु भीतर किसी के भी एक भाव नही है। राजनैतिक क्षेत्र मे देखे तो वे लोग भी यही कहते है कि सम्प्रदायवाद का त्याग करो। सम्प्रदायवाद किसे कहते है ? हजारो लाखो व्यक्तियो के एक गुट मे मिलने को सम्प्रदाय कहते हैं। और उसके प्रति राग-

भाव की कट्टरता आ जाना सम्प्रदायवाद कहलाता है। अब आप उनसे भी पूछिये कि आप लोगो ने भी इसे जीता है, या नही ? केरल मे इ डीकेट वाली इन्दिरागधी गई तो वे कहती है कि खास काग्रेस तो हमारे भीतर ही है। हमने सिडीकेट वाली काग्रेस को वाहिर निकाल दिया है। अब वे काग्रेस मे नही हैं। सिंडीकेट या पुरानी काग्रेस वाले कहते है कि असली काग्रेस तो हमारी ही है। इन्दिरा आदि को तो हमने काग्रेस से वाहिर निकाल दिया है। अब वे काग्रेस मे नही है। अब आप लोग बतावे कि दोनो पार्टियो के हृदय उज्ज्वल है, या कोयला के समान काले हैं ? अब सोचिये—दुनिया कहती है कि सम्प्रदायवाद को समाप्त करो। परन्तु वे लोग स्वय कैसे सम्प्रदायवाद से भरे हुए है ? वे इन्डीकेट और सिंडीकेट क्यो वनाये बैठे है ? भाई, दुनिया मे चौडे-धाडे सम्प्रदायवाद दिख रहा है। फिर भी वे ही सम्प्रदायवादी लोग कहते हैं कि सम्प्रदायवाद नही रखना। ये बाते देखने की हैं तो राजनीति मे देखो कि वहा भी सगठन थोथा रह गया है।

अब व्यवहार मे देख लीजिए—चारो ओर से ऐसी आवाज आ रही है कि ओसवाल ओसवाल एक हो, माहेश्वरी माहेश्वरी एक हो, पोरवाल, पोरवाल, अग्रवाल अग्रवाल, बीजावर्गी बीजावर्गी एक हो। ये सब अलग-अलग जाति के नाम हैं। परन्तु 'महाजन' नाम मे सब जातिया आ जाती है। और जाति के दायरे मे गिने तो अलग-अलग है। अब उनसे पूछो कि क्या एक जाति वाले भाई भी दम भरकर कह सकते हैं कि हम सब एक हैं और हमे सबको एक करना है। अन्त मे यही कहना पडेगा कि विचार तो एक नही है। भाई, जब एक ग्रूप मे भी एक विचार नही हैं, तब सब एक कैसे हो सकते है ? जोधपुर मे ओसवालो के तीन हजार घर हैं। परन्तु उनमे भी अलग-अलग मत हैं। अलग-अलग जातिया है—दस्सा, बीसा, पाचा, टाया आदि। इन सब मे भी एकता नही है और वे आपस मे एक दूसरे को हीन-दृष्टि से देख रहे है। व्यापारी-व्यापारी को भी एक दृष्टि से नही देख रहा है जब एक मोहल्ले मे भी एक आवाज नही है, तब सारे शहर मे एक आवाज कैसे हो सकती है ? जब सारे शहर की एक आवाज नही हो

सकती है, तव सारे मारवाड की एक आवाज कैसे हो सकती है ? जव सारे मारवाड की एक आवाज नही, तव समस्त राजस्थान की एक आवाज कैसे हो सकती है ?

हा, जिस दिन यह सुअवसर और सुनहरा मौका आ जायगा—जव कि लोग ऊपर से नारे लगाये, या नही लगाये, परन्तु हृदय से एक अवश्य हो जायेंगे—उस समय न कोई झगडा है और न टटा है। परन्तु आज के युग मे ऊपर का यह दिखाऊ एकता का नारा अवश्य है। किन्तु भीतर मे मन एक नही है। कहा भी है—

**मन विन मिलवो ज्यो; चाववो दत हीने।**
**गुरु विन भणवो ज्यो—जीमवो ज्यों अलूणे।**
**जस विन बहु जीवी जीवतो ज्यो न शोहे—**
**त्यो धर्म न होए भावना जो न होए॥**

भाई, मन तो मिलना नही चाहता और ऊपर से कहते है कि नही साहव, मिलना पडेगा। सगठन करना पडेगा। जो कहते है कि मैं नही मिलना चाहता हू। परन्तु आपने बलात् पकड कर परोसे थाल पर खाने के लिए वैठा दिया। अब वह बैठ तो गया और ग्रास भी मुख मे दे रहा है, पर मन मे तो आग लग रही है और भीतर ही भीतर कह रहा है कि ये कहा से आ गये और मुझे ये विष के ग्रास क्यो खिला रहे है ? अव कहिये—क्या उनका एका हो गया ? जो फोडा हो रहा है, वह दवा से ऊपरी तौर पर भले ही भरा हुआ-सा दिखे, परन्तु भीतर से क्या वह भर गया है ? भले ही इस समय ऊपर मवाद बहता हुआ न दिखे। किन्तु भीतर ही भीतर तो वह बढ ही रहा है, जिसका किसी न किसी समय विस्फोट के रूप मे भयकर परिणाम हो सकता है। इसी प्रकार सब समाज वाले भीतर के भीतर तो लड रहे है और ऊपर से मिलने का यह ढोग रच रहे हैं। भाई, ऊपर से मिलना मिलना नही कहलाता। जब भीतर से सबके मन एक हो जाये, तभी मिलना कहलाता है।

देखो—दात तो सब गिर गये है। अब कहते है कि नयी बत्तीसी बधवा लेंगे और फिर चने भी चबावेंगे। ठीक है साहब, चबा लोगे। परन्तु मै कहता

हू कि चने तो चवाना दूर की वात है। किन्तु यदि एक फल भी दातो से तोडेंगे तो वह भी वाहिर आकर गिर जायगा। तव वह वत्तीसी वधाना व्यर्थ सिद्ध होगा। अब कहते हैं कि कुटवाकर-पिसवाकर खालेंगे। परन्तु वह भी वेकार है, क्योकि वह मजा तो दातवाले ले गये। अरे, विना दात के खाना भी वेकार है। इसी प्रकार विना मन के मिलना भी वेकार ही है।

**ज्ञान-सिद्धि गुरु से!**

भाइयो, किसी ने गुरु के पास जाकर के तो विद्या पढी नही। और स्वय ही पुस्तक पढ करके पडित वन गया, और अपने को पडित समझने लगा तो वह भी ठीक नही है, क्योकि गुरु से पढे विना ज्ञान मे गभीरता नही आती। शास्त्र का रहस्य भी समझ मे नही, तव वह कैसे रहस्य को स्वय समझेगा तथा कैसे औरो को समझायेगा। फिर पुस्तको के लिखने या छपने मे भी अनेक अशुद्धिया रह जाना स्वाभाविक है। जव वह विद्वत्समाज के वीच मे वैठकर चर्चा करेगा, तव वह सवकी हसी का पात्र वनेगा। क्योकि उस समय उसके मुख से अशुद्ध-वाक्य निकलना स्वाभाविक ही है। कहा है—

**पुस्तक प्रतयाधीत, नाधीत गुरुसन्निधे।**
**समामध्ये न शोभन्ते जारगर्भ इव स्त्रिया॥**

जिस व्यक्ति ने गुरु से नही पढा और स्वय ही पुस्तक से पढकर पडित वना तो वह विद्वत्सभा मे कैसा लज्जित होता है, जैसे कि पर-पुरुष से गर्भ-धारण करने वाली स्त्री नारी समाज मे लज्जित होती है।

आप कहेगे कि महाराज, आज समाज मे यह क्या चल रहा है कि कोई कुछ लिख देता है और कोई कुछ लिख देता है? हम तो उनकी परस्पर विरोधी वाते पढकर के वहम मे पड जाते हैं। भाई, वे पुस्तकें किनकी है? जो अन्य तीर्थियो को रख कर पढते हैं, उनकी पढाई वाजारू होती है। वह घर की पढाई नही है। वह जैसा पढेगा, वैसा ही तो उसके दिमाग से निकलेगा। उसे वाहिर का जैसा ज्ञान मिला है, वह वैसी ही प्ररूपणा करेगा। जिसने अपने ही साधर्मी गुरुओ से पढा होगा, वह अपने घर से वाहिर नही जायेगा। और

गुरु के विना घर की पढाई का भी कोई अर्थ नही है। नमक के विना भोजन का कोई स्वाद नही आता है। इसी प्रकार यश के विना जीना भी वेकार है। किसी ने आयु तो अस्सी वर्ष की पाई, किन्तु यश कितना पाया? कुछ भी नही? वह जहा भी जाता है, वही उसका अनादर और अपयश होता है। भाई, वह जीते हुए भी मृतक के समान है। किन्तु जिसका यश सर्वत्र फैला हुआ है, तो वह मर जाने पर भी जीवित ही है। कहा भी है—

**जिसकी शोभा जगत मे, वा को जीतव धन्न।**
**जीवत्त ही मूआ चला, सुणे कुशोभा कन्न॥**

और भी कहा है—

**आस्था सता यश. काये, नह्यस्थायिशरीरके।**

अर्थात् सन्त पुरुषो की आस्था चिरस्थायी यशरूपी शरीर मे होती है, इस क्षण-भगुर शरीर पर उनकी आस्था नही होती है।

जिनका यश ससार मे फैला हुआ है, वे मर करके भी जीवित है और जिनका अपयश सर्वत्र फैल रहा है, वे जीवित होते हुए भी मरे के समान है। इसी प्रकार जिनकी भावना पवित्र नही है, उनकी धर्म-करणी भी किसी लेखे मे नही है। क्योकि आचार्यो ने कहा है—

**'यस्मात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः।'**

अर्थात् भावो के बिना की गई धर्म-क्रियाए भी कोई भी फल नही देती हैं। कहा भी है कि—

**'होती नहीं सफल भाव-बिना क्रियाएं।'**

हा, तो मैं आत्मशुद्धि पर कह रहा था। ऊपर की जो शुद्धिया है—मेल-मिलाप है—उनमे भी जब प्रकृतियो का एकीकरण नही होता है, तब फिर आत्म-शुद्धि की मजिल तो बहुत दूर है। जब पहिली मजिल पर चढते हुए ही पैर कप रहे है, तब ऊपरी मजिलो को पार करना तो बहुत कठिन है। यदि मन मे शान्ति आ गई तब किसी दूसरे को कुछ कहने की आवश्यकता नही है। फिर तो वह अपने-आप ही अपनी वस्तु को ग्रहण कर लेगा।

जो मनुष्य बुद्धिमान होते है, उनमे यदि किसी निमित्त से कहा-सुनी हो

जाय तो घर पहुचने पर वे दोनो ही विचारते है कि अरे, मेरे से आज बडी भूल हुई, जो अमुक भाई से मैंने कडवी बाते कह दी। मुझे ऐसा नही कहना चाहिए था। ऐसा विचार करके दोनो अपने-अपने घर से क्षमा मागने को निकले। मार्ग मे दोनो आमने-सामने मिले तो वे दोनो ही हाथ जोडकर परस्पर क्षमा मागते है और शुद्ध हृदय होकर गले से गले मिलते है। भाई, इसी को सच्चा सम्मिलन कहते है। यही एकता ही सच्ची एकता है। किन्तु जहा दोनो ही अपनी भूल को स्वीकार नही करें और एक दूसरे पर दोषारोपण करें, वहा कभी मेल-मिलाप नही हो सकता है। शुद्ध हृदय वालो का सम्मेलन टिकाऊ है, वह हमेशा रहेगा, क्योकि दोनो के हृदय पवित्र हो गये हैं। वे आगे कोई भी ऐसा कार्य नही करेंगे कि जिससे परस्पर मनोमालिन्य उत्पन्न हो।

लोग कहते है कि खमत-खामणा कर लो। मैं पूछता हू कि उनको तिरना है, या आप लोगो को तिरना है? यदि आपको तिरना है तो तीर पर आपको ही जाना पडेगा। जो भीतरी भावो के विना लोगो के कहने-सुनने से काम किया जाता है, उसका कोई महत्त्व नही है। किन्तु जो अपने हृदय की प्रेरणा से काम किया जायगा, वह सदा सफल होगा और उसी का महत्त्व माना जायगा।

### आत्म-सिद्धि कहा ?

भाई, आत्मसिद्धि अपने भीतर ही है। आपने कोई भूल की और उसे स्वीकार कर लिया—उसका पश्चात्ताप कर लिया। बस, यही आत्म-शुद्धि है और यही आत्म-सिद्धि है। आत्म-सिद्धि के तीन मार्ग हैं—

निज आतमा को दमनकर पर आतम को चीन।
परमात्मा को भजनकर जो तू है परवीन॥

ज्ञानियो ने आत्म-सिद्धि का यह मार्ग बतलाया है कि पहिले अपने भीतर की भूलो को देखो, अपनी कमिया देखो और उन्हे छोडो। दूसरो को खोटा मत कहो, पराई बुराई मत करो। किन्तु यह देखो कि अमुक व्यक्ति जो इतनी अधिक आत्मोन्नति के शिखर पर पहुचा है, तो उसमे कौन-कौन से विशेष गुण है? वे गुण मुझे कैसे प्राप्त हो? गुणी पुरुषो को देखकर आनन्दित होओ। जो

गुणी पुरुषो को देखकर प्रमोद को प्राप्त होता है, उसमे उन गुणो की प्राप्ति स्वयमेव हो जाती है। दूसरा आत्मसिद्धि का मार्ग यह है कि जो बात तुम अपने लिए बुरी समझते हो, दु खदायक मानते हो, उसे दूसरे के साथ व्यवहार मत करो। महर्षियो ने कहा है कि—

**श्रूयता धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चैवावधार्यताम्।**
**आत्मनः प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्॥**

धर्म का सर्वस्व यही है, इसे ही सुनना चाहिए और सुन करके हृदय मे अवधारण करना चाहिए कि जो-जो कार्य तुम अपने लिए प्रतिकूल समझते हो, उन्हे दूसरो के साथ आचरण मत करो।

जब आपने अपनी आत्मा का दमन कर लिया और दूसरे की आत्मा को अपने समान समझ लिया, तभी आप भगवान् के भजन करने के अधिकारी हो सकते है। जब तक आपने अपनी आत्मा को नही पहिचाना और दूसरे की आत्मा को भी नही पहिचाना, तब तक हरे हरे, शकर शकर या महावीर महावीर करते रहो, उससे क्या लाभ होने वाला है। वह तो वैसा ही जाप है जैसा कि द्रुमट से सडक कूटने वाले 'जय हनुमान' बोलते हुए सडक को कूटा करते है। वे हनुमानजी को नही सुमरते है, किन्तु एक साथ हाथ को उठाने को बोलते हैं। ऐसे भोले भक्तो से भगवान् कहते है कि जिसने अपनी आत्मा का दमन किया नही, और पराये गुण लिए नही, तब तक तुम मेरे भजन करने के अधिकारी नही हो। और फिर बतलाया गया है कि—

**गुणी देखकर करो वन्दना निर्गुण देख नहीं द्वेष करे।**
**दुखी जीव पै करुणा आणे मित्र भाव को पेश करे॥**

जिस व्यक्ति मे हमको गुण दिखे कि इस व्यक्ति मे मेरे से यह गुण अधिक है, उसे देखते ही जैसे फला हुआ केले का पेड झुक जाता है वैसे ही झुक जाना चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई विरोधी मनुष्य मिले तो उसे देखकर द्वेष नही करना चाहिए। तथा दुखी मनुष्यो को देखकर के हृदय मे करुणा भाव उमड आना चाहिए। और मन मे यह विचार करना चाहिए कि हे भगवन्, कब ऐसा सुअवसर प्राप्त हो कि मैं दीन दुखी जनो की तन-मन-धन से सेवा करू ? बस,

संक्षेप में ये ही आत्म-सिद्धि के उपाय है। तत्त्वार्थ सूत्रकार ने इसे इस प्रकार कहा है—

**मैत्री प्रमोदकारुण्य माध्यस्थ्यानि च सत्त्वगुणाधिक-क्लिश्यमानाविनयेषु।**

इसी की व्याख्या अमितगति ने इस प्रकार की है—

**सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषुप्रमोदं, क्लिष्टेषुजीवेषु कृपापरत्वम्।**
**माध्यस्थ्यभाव विपरीतवृत्तौ सदाममात्मा विदधातु देव!॥**

हे भगवन्, सर्वप्राणियो पर सदा मैत्री भाव रहे, गुणीजनो को देखकर प्रमोदभाव प्रकट हो, दुखी जीवो मे करुणाभाव जागृत हो और विरुद्ध आचरण करने वालो पर माध्यस्थ्यभाव रहे। इस प्रकार इन चारो भावनाओ को भाते रहने से जीव की अशुद्ध प्रवृत्ति दूर होती है और शुद्ध प्रवृत्ति प्रकट होती है, जिससे सहज मे ही आत्म-सिद्धि प्राप्त हो जाती है।

जब तक उक्त गुण प्राप्त नही होते हैं, जब तक केवल आत्मार्थी कहने से या अपने को आत्मार्थी मानने से आत्मसिद्धि नही प्राप्त होती है। तब तक तो उन्हे पेटार्थी ही जानना चाहिए। आत्मसिद्धि के हुए बिना ज्योतिर्मय निज स्वभाव की प्राप्ति असभव है। वक्ता मे ये सर्वगुण प्रथम होना चाहिए, तभी श्रोताओ को उन गुणो की प्राप्ति सहज मे हो सकेगी।

जैसे कुए मे पानी आता है तो उसका प्रथम अधिकारी वह कुड या हौज है, जिसमे वह पानी आता है। फिर उसका पानी नेली मे जाता है और तत्पश्चात् वह खेत मे जाता है। इसी प्रकार जिनवाणी-रूप बावडी का पानी पहिले व्याख्याता के पास आता है। यदि व्याख्याता सदोष है तो उसमे से निकलने वाला उपदेश-रूप पानी भी सदोष एव दुर्गुणयुक्त हो जायगा। यदि वक्ता का हृदय स्वच्छ है, तो उसका प्रभाव श्रोताओ पर भी अच्छा पडेगा और दोनो का ही कल्याण होगा। यदि वक्ता का हृदय स्वच्छ है और स्वच्छ ही उपदेश देता है। फिर भी श्रोता यदि सदोष है और वह अपने दोषो को दूर नही करता है, तो उसका ही अहित होगा। वक्ता का तो अपना कर्तव्य पालन करने के कारण कल्याण ही कल्याण है। कदाचित् ऐसा भी होता है कि वक्ता केवल उपदेश देता ही है, स्वय तदनुकूल आचरण नही करता है। किन्तु उसके

उपदेश को सुनकर तदनुकूल आचरण करने वाला श्रोता आत्महित कर लेता है और वक्ता खाली रह जाता है।

इसलिए यह सोचना और विचार करना चाहिए कि आत्म-सिद्धि करना बडा गहन कार्य है। इस तत्त्व को समझना, उस पर चलना और अन्त तक उस पर कायम रहना बच्चो का खेल नही है। उसके लिए तो भारी त्याग करना पडेगा। उसे भारी कुर्बानी देनी पडेगी। भाई, त्यागी महापुरुपो का यह मार्ग है। जो महापुरुष त्याग को अपने जीवन का लक्ष्य बनायेंगे, वे ही आत्मसिद्धि को प्राप्त कर सकेंगे। बिना त्याग के इस पर चलना बहुत कठिन है।

वि० स० २०२७, आसोज वदि–४
सिंहपोल, जोधपुर

●●

# ६ | विश्वमैत्री का मंत्र

आज विश्वमैत्री दिवस के उपलक्ष्य मे आयोजित इस सभा मे सती कृष्ण-कुमारी जी ने अपनी मधुर वाणी मे विश्वमैत्री के भाव प्रकट किये। तत्पश्चात् आचार्य श्री तुलसी के अनुयायी प० शकरलालजी ने भी कहा। और इनके वाद सती राजश्री जी ने अपनी बुलन्द आवाज से 'समभावी वनो', इस वात पर जोर दिया। इस प्रकार ये तीन भाषण आप लोगो ने सुने हैं।

अव वात यह है कि दूध पी लिया गया, दही भी काम मे आ गया और मक्खन भी खा लिया गया है। अव तो छाछ रह गई, जो मेरे हिस्से मे आई है। खैर! कोई नुकसान की वात नही है, क्योकि यदि अधिक माल खाने से पेट मे आफरा आजाय, रुचि कम हो जाय, खाया हुआ अन्न नही पचे या अजीर्ण हो जाय, तो उस समय छाछ ही काम मे आती है। भाई, छाछ की ऐसी महिमा है। इसके लिए कहा गया है कि 'तक्र शक्रस्य दुर्लभ' अर्थात् छाछ तो इन्द्र के लिए भी दुर्लभ है। तथा स्वास्थ्य ठीक रखने के लिए चिकित्सको ने कहा है—'भोजनान्ते पिवेत्तक्र कि वैद्यस्य प्रयोजनम्' अर्थात् मनुष्य यदि प्रतिदिन भोजन के अन्त मे छाछ पीवे तो फिर वैद्य का क्या प्रयोजन है? क्योकि उस व्यक्ति को कोई रोग उत्पन्न ही नही होगा। फिर आज कल यह छाछ तो दुर्लभ हो रही है कि हिन्दुओं के भी हाथ नही आती है। अत मेरे भाषण को छाछ के समान मत समझकर इधर-उधर मत डालना। किन्तु उसे ध्यान मे रखना।

कितने ही वक्ताओ ने हिन्दी मे अपने भाषण दिये हैं। परन्तु मैं तो मारवाड मे जन्मा हू, इसलिए मुझे तो मारवाडी मे ही बोलना पसन्द है। आज आप लोगो ने जो भाषण सुने है, उनमे एक ही बात 'विश्वमैत्री' की कही गई। अर्थात् सारे विश्व के साथ मैत्री भाव रखना चाहिए। यह बात इन्होने नही, मैंने नही, किन्तु भगवान महावीर ने अढाई हजार वर्ष पूर्व कही है। भगवान ने कहा है—**'मित्ती मे सव्व भूएसु वेरं मज्झं ण केण वि'**। विश्व के सर्व-प्राणियो पर मेरा मैत्री भाव है, किसी भी प्राणी के साथ मेरा वैर भाव नही है। प्राचीन काल मे ही ऐसी स्वर्णिम-शिक्षाए हमारे पूर्वजो को मिली हैं' और उन्हे ही हम लोग आप सबको सुना रहे है। भाई, इन अनमोल वचनो मे कितना गौरव, कितना बडप्पन और कितना विश्व-बन्धुत्व का भाव भरा हुआ है, यह विचारने की बात है। यह स्वर्णिम दिव्य-उपदेश अपने पास नया नही है, किन्तु पुराना ही है। महापुरुषो के प्रताप से ही ऐसी उत्तम शिक्षाए आज हमारे पास बनी हुई है। अन्यथा जैनधर्म पर कितनी-कितनी आपदाए आई और कैसे-कैसे विकट सकटकाल आये, परन्तु जैनधर्म का बचाव हुआ तो केवल भगवान महावीर के वचनो से ही हुआ है।

**खमत-खामणा का हार्द :**

आज लोग कहते है कि 'खमत-खामणा' करने से क्या होता है ? अरे भाई, आप कहो तो इस प्रथा को बन्द कर दे ? परन्तु जो उत्तम काम के लिए परम्परा चली आ रही है, तो उत्तम काम करते-करते ही परिवर्तन आते हैं। यदि कोई कहे कि आपके शरीर मे शक्ति नही है, तो रोटी खाने से क्या लाभ है ? अरे भाई, यदि रोटी खाना छोड देगा, तो क्या शक्ति आ जायगी ? बिना खाये क्या वह उठ सकेगा ? और क्या कोई काम कर सकेगा ? जैसे शक्ति-सचय के लिए भोजन करना आवश्यक है, पानी पीना आवश्यक है और नीद लेना आवश्यक है। इसी प्रकार आत्मोत्थान के लिए भगवान की वाणी के सुन्दर अनमोल वचनो का व्यवहार करना और उन पर अमल करना भी आवश्यक है। 'खमत-खामणा' की जो परिपाटी चली आ रही है, वह बहुत उत्तम है। इसी के द्वारा हम आगे बढ सकते है। अत जब तक इन परम्पराओ की

मर्यादा चल रही है, तब तक सब कुछ ठीक है। यदि ये मर्यादाए हट गई, तो फिर कुछ भी नही है।

आज लोग औरो का उदाहरण देकर कहते है कि वे ऐसे हो गये, वैसे हो गये। परन्तु मैं पूछू कि आपके घर मे क्या घाटा है? क्या जैनियो मे क्षमावान् प्रचारक हुए ही नही है? यहां तो वीरो का मार्ग ही मैत्री है। अभी राजश्री सतीजी ने कहा कि **'रागो य दोसो विय कम्म बीय'** यह वचन अमल करने के लिए है, या केवल बोलने के लिए है? ये वचन तो नवयुवको, वृद्धो और बालको को मानने के लिए हैं। आपको नवीनता लाना है, नये मोड मे जाना है, परन्तु सब कुछ मर्यादा रखते हुए ही करना है। यदि मर्यादा समाप्त हो जायगी तो फिर नवीनता नही रहेगी।

**सप्रदाय . बाडा नहीं, मर्यादा है**

भाइयो, अपने पूर्वज महापुरुषो ने जो अनेक सम्प्रदाय कायम किये, तो वे समाज के तीन-तेरह करने वाले नही थे और न देश के गद्दार थे। उन सबका एक ही लक्ष्य था कि धर्म की मर्यादाओ का सरक्षण किया जाय। जैसे आज भारत देश की बडी भारी सेना है, तो उसे एक ही सेनापति गाइड (सरक्षण) नही कर सकता है। अतएव जल, थल और नभ-सेना के अलग-अलग सेनापति है। वे सब अपनी सीमाओ का सरक्षण करते है। इसी प्रकार से **सम्प्रदाय भी अपनी-अपनी मर्यादाओ का सरक्षण करते हैं। अत सम्प्रदाय खराब नहीं हैं, किन्तु सम्प्रदायवाद खराब है। भाई, उन महापुरुषो ने ये सम्प्रदाय अपना पेट भरने के लिए कायम नहीं किये थे। किन्तु उनके समय मे धर्म और समाज मे आये हुए विकारो को दूर करने के लिए कायम किये थे।** किसी एक मर्यादा मे चलने वाले अनेक आदमियो के समुदाय को सम्प्रदाय कहते हैं। यह कोई बुरी बात नहीं है। और उसमे मिलने मे कोई नुकसान नही है। परन्तु उसमे मैत्री भाव होना चाहिए कि ये दूसरे नही और हम दूसरे नही है। देखो—हमारे शरीर मे हाथ, पैर, पेट आदि अलग-अलग आठ अग है और इन सब अगो का काम भी अलग-अलग है। परन्तु वे सब शरीर के ही अग है। यदि इनमे से कोई एक भी अग अपना काम करना छोड दे, तो विघ्न हो

जाय, तो उस का प्रभाव सारे शरीर पर पडता है और वह विकलाङ्ग कहलाने लगता है। इसी प्रकार समाज मे जो सम्प्रदाय अलग-अलग काम कर रही है, यदि उन्हे मिटा दिया जाय या विलीनीकरण कर दिया जाय, तो उससे भी कोई प्रयोजन सिद्ध नही होगा। जो मर्यादाएँ बधी हुई है, उनके भीतर रहकर के ही धर्म और समाज के उत्थान का कार्य करना चाहिए। भगवान महावीर ने ऐसे सुन्दर नियम बनाये और आचार्यों ने ऐसे उत्तम नियम चलाये कि जो सदा सर्व को सुख-दायक है। त्रिकाल मे भी किसी को दु खदायी नही है। परन्तु समय के प्रवाह से उनमे जो विकार दृष्टिगोचर हो रहा है, उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

भाई, खान-पान आदि की असावधानी से आख मे मोतिया बिन्दु हो गया। अव उसे हटाने की आवश्यकता है, आखो को ही फोड देना उचित नही है। आख तो उत्तम है, ज्योति भी अच्छी है। परन्तु जो उसमे विकार आ गया है, उसे ही केवल दूर करना उचित है। इसी प्रकार सम्प्रदाय मे यदि कोई विकार दृष्टिगोचर होता है, तो उसे ही दूर करना चाहिए, न कि सम्प्रदाय को ही समाप्त कर देना चाहिए।

सनातन धर्म के विद्वान् माधवाचार्य ने कहा कि आत्मोत्थान के लिए तीन वातो की आवश्यकता है—**भक्ति, दया** और **विश्वास**। यदि ये तीनो बिखरी हुई चीजे एकत्रित हो जाये तो भारत का उद्धार हो जाय। भक्ति वैष्णवो मे अधिक पाई जाती है। विश्वास जैसा मुसलमानो मे देखा जाता है, वैसा, दूसरो मे नही है। और दया जैसी जैनियो मे पाई जाती है, वैसी दूसरो मे नही है। ये तीन वाते जो भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय मे विशेप रूप से पाई जाती हैं, उन्हे यदि एकत्रित कर दिया जाय तो भारत का उद्धार होते देर न लगे। कहने का भाव यह है कि आत्मोत्थान के लिए भी भक्ति, श्रद्धा और दया इन तीनो की ही आवश्यकता है। जब समाज मे ये तीनो होगी, तब समाज का उत्थान होने मे विलम्ब नही होगा।

भाइयो, यदि हमारे भीतर भी विश्वमैत्री की भावना है तो मूर्त्तिपूजक श्वेताम्बर, दिगम्बर और स्थानकवासी तथा तेरहपथी सब एक हो जाये। यदि

कोई कहे कि दिगम्वर और श्वेताम्वर मे कितने ही मत है। भाई, भले ही उनमे अनेक मत हो, परन्तु सवकी मान्यता तो एक ही है। स्थानकवासियो मे भी तेरा-पन्थी है—तो तेरापन्थ का मतलव है—भगवन्, एकमात्र तेरा ही पन्थ सच्चा है। इसलिए नाम कुछ भी रहा आये, परन्तु दया मे करुणाभाव मे रहना चाहिए। हमे तेरापन्थियो का अनुशासन लेना चाहिए, मूर्त्तिपूजको की भक्ति लेना चाहिए और स्थानकवासियो का विश्वास लेना चाहिए। भक्ति जितनी मूर्त्तिपूजको मे है, उतनी दूसरो मे नही है। वे मूर्त्तियो के अतिरिक्त आगमो की ज्ञान की भी पूजा करते है। वे भक्ति मे वहुत आगे वढे हुए हैं। अनुशासन—एक आचार्य के नेतृत्व मे रहकर कार्य करना—यह वात तेरापथियो मे विशेष है। और क्रियापरता तो स्थानकवासियो मे कम नही है। ये तीनो वाते अभी न्यारी-न्यारी है। अव यदि इनको एकत्रित कर दिया जाय, तो वहुत अच्छा हो।

सतीजी ने एक मार्के की वात कही कि दिवाल के तोडने से दीवाला निकल जाता है। परन्तु मैं कहता हू कि जव तक दीवाल है, तव तक साहूकारी है। यदि दीवाल गिर गई तो चोरिया होगी। जव जोधपुर के चारो ओर दीवाल गिरा दी गई है, तव से चोरिया अधिक होने लगी हैं। इसलिए दीवाल के तोडने से दीवाला ही निकलेगा। जो भी गच्छ, पन्थ या सम्प्रदाय वनी है, मैं तो उनके सस्थापक आचार्यो का वडा आभार मानता हू कि उन्होंने इनको स्थापित करके धर्म के विविध अगो का सरक्षण कर दिया है। जो वात सरक्षण मे है, उसे कभी भी काम मे लिया जा सकता है।

### सवका ध्येय एक है

कोई वाप अपने वेटे से नाराज हो गया तो उसने वेटे को पू जी नही दी। और उसे अपने पास सुरक्षित रख लिया। अव वाप मर गया और लोग अपना रुपया वेटे से मागने लगे, तव वह सुरक्षित पू जी उसके काम मे आगई। इसी प्रकार हमारे पूर्वजो ने विभिन्न सम्प्रदाय वनाकर भगवान् महावीर की देशना-रूपी पू जी को सुरक्षित रखा है। लोग कहते हैं कि जैन ढीले पड गये हैं। परन्तु भाई, अभी तो जैन वहुत ठीक रास्ते पर है। उनके वचनो मे मर्यादा है और खान-पान तथा आचार-व्यवहार मे भी मर्यादा है। परन्तु आज की नयी

जाय, तो उस का प्रभाव सारे शरीर पर पडता है और वह विकलाङ्ग कहलाने लगता है। इसी प्रकार समाज मे जो सम्प्रदाय अलग-अलग काम कर रही हैं, यदि उन्हे मिटा दिया जाय या विलीनीकरण कर दिया जाय, तो उससे भी कोई प्रयोजन सिद्ध नही होगा। जो मर्यादाएँ बधी हुई है, उनके भीतर रहकर के ही धर्म और समाज के उत्थान का कार्य करना चाहिए। भगवान महावीर ने ऐसे सुन्दर नियम वनाये और आचार्यों ने ऐसे उत्तम नियम चलाये कि जो सदा सर्व को सुख-दायक हैं। त्रिकाल मे भी किसी को दु खदायी नही है। परन्तु समय के प्रवाह से उनमे जो विकार दृष्टिगोचर हो रहा है, उसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

भाई, खान-पान आदि की असावधानी से आख मे मोतिया बिन्दु हो गया। अव उसे हटाने की आवश्यकता है, आखो को ही फोड देना उचित नही है। आख तो उत्तम है, ज्योति भी अच्छी है। परन्तु जो उसमे विकार आ गया है, उसे ही केवल दूर करना उचित है। इसी प्रकार सम्प्रदाय मे यदि कोई विकार दृष्टिगोचर होता है, तो उसे ही दूर करना चाहिए, न कि सम्प्रदाय को ही समाप्त कर देना चाहिए।

सनातन धर्म के विद्वान् माधवाचार्य ने कहा कि आत्मोत्थान के लिए तीन वातो की आवश्यकता है—**भक्ति, दया** और **विश्वास**। यदि ये तीनो बिखरी हुई चीजे एकत्रित हो जाये तो भारत का उद्धार हो जाय। भक्ति वैष्णवो मे अधिक पाई जाती है। विश्वास जैसा मुसलमानो मे देखा जाता है, वैसा, दूसरो मे नही है। और दया जैसी जैनियो मे पाई जाती है, वैसी दूसरो मे नही है। ये तीन वातें जो भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय मे विशेप रूप से पाई जाती हैं, उन्हे यदि एकत्रित कर दिया जाय तो भारत का उद्धार होते देर न लगे। कहने का भाव यह है कि आत्मोत्थान के लिए भी भक्ति, श्रद्धा और दया इन तीनो की ही आवश्यकता है। जव समाज मे ये तीनो होगी, तव समाज का उत्थान होने मे विलम्व नही होगा।

भाइयो, यदि हमारे भीतर भी विश्वमैत्री की भावना है तो मूर्त्तिपूजक श्वेताम्बर, दिगम्बर और स्थानकवासी तथा तेरहपथी सव एक हो जाये। यदि

कोई कहे कि दिगम्बर और श्वेताम्बर मे कितने ही मत हैं । भाई, भले ही उनमे अनेक मत हो, परन्तु सवकी मान्यता तो एक ही है। स्थानकवासियो मे भी तेरा-पन्थी हैं–तो तेरापन्थ का मतलव है—भगवन्, एकमात्र तेरा ही पन्थ सच्चा है । इसलिए नाम कुछ भी रहा आये, परन्तु दया मे करुणाभाव मे रहना चाहिए । हमे तेरापन्थियो का अनुशासन लेना चाहिए, मूर्त्तिपूजको की भक्ति लेना चाहिए और स्थानकवासियो का विश्वास लेना चाहिए । भक्ति जितनी मूर्त्तिपूजको मे है, उतनी दूसरो मे नही है । वे मूर्त्तियो के अतिरिक्त आगमो की ज्ञान की भी पूजा करते हैं । वे भक्ति मे वहुत आगे वढे हुए हैं । अनुशासन—एक आचार्य के नेतृत्व मे रहकर कार्य करना—यह वात तेरापथियो मे विशेप है । और क्रियापरता तो स्थानकवासियो मे कम नही है । ये तीनो वातें अभी न्यारी-न्यारी हैं । अव यदि इनको एकत्रित कर दिया जाय, तो वहुत अच्छा हो ।

सतीजी ने एक मार्के की वात कही कि दिवाल के तोडने से दीवाला निकल जाता है । परन्तु मैं कहता हू कि जव तक दीवाल है, तव तक साहूकारी है । यदि दीवाल गिर गई तो चोरिया होगी । जव जोधपुर के चारो ओर दीवाल गिरा दी गई है, तव से चोरिया अधिक होने लगी है । इसलिए दीवाल के तोडने से दीवाला ही निकलेगा । जो भी गच्छ, पन्थ या सम्प्रदाय वनी है, मैं तो उनके सस्थापक आचार्यो का वडा आभार मानता हू कि उन्होंने इनको स्थापित करके धर्म के विविध अगो का सरक्षण कर दिया है । जो वात सरक्षण मे है, उसे कभी भी काम मे लिया जा सकता है ।

### सवका ध्येय एक है

कोई वाप अपने वेटे से नाराज हो गया तो उसने वेटे को पू जी नही दी । और उसे अपने पास सुरक्षित रख लिया । जव वाप मर गया और लोग अपना रुपया वेटे से मागने लगे, तव वह सुरक्षित पू जी उसके काम मे आगई । इसी प्रकार हमारे पूर्वजो ने विभिन्न सम्प्रदाय वनाकर भगवान् महावीर की देशना-रूपी पू जी को सुरक्षित रखा है । लोग कहते हैं कि जैन ढीले पड गये हैं । परन्तु भाई, अभी तो जैन वहुत ठीक रास्ते पर हैं । उनके वचनो मे मर्यादा है और खान-पान तथा आचार-व्यवहार मे भी मर्यादा है । परन्तु आज की नयी

रोशनी वाले लोग कहते है कि इस त्यागमयी धर्म को उठा दो। इसे समाप्त कर दो। भाई, इस प्रकार की नवीनता मे वह जाना ठीक नही है। परन्तु मैत्री-भाव का अर्थ यह है कि एक-एक सम्प्रदाय के गुण लो, एक-एक के समीप जाओ और एक-एक के साथ मिलकर आगे कदम बढाओ। भाई, इस मुह पत्ती को चाहे कोई लम्बी बाधे, या चौडी बाधे, या कोई हाथ मे रखे। इसके रखने का अभि-प्राय तो यतना रखने का है। यदि यतना रखते है तो सब मार्गी एक हो जाते है। मन्दिरमार्गी कहते हैं कि यतना से बोलो, तेरापन्थी भी यही कहते हैं और हम स्थानकवासी भी यही कहते है। अब समझ मे नही आता है कि फिर झगडा किस बात का है? दूसरे प्राणियो की रक्षा करो, यह सभी कहते हैं। कोई भी यह नही कहता है कि हिसा करो और जीवो को मारो। जो सुपात्र है और अपने गुरु के वचनो पर चलने वाला है, वह तो कभी नही कहेगा कि जीव को मारो। और तीसरी बात है कि झूठ नही बोलना, चोरी नही करना, ब्रह्मचर्य का पालन करना और ममता का त्याग करना। सभी जैन सम्प्रदाय एक स्वर से इन पाचो व्रतो के पालन करने का उपदेश देते है। क्या कोई जैन सम्प्रदाय कहता है कि हिंसा करो, झूठ बोलो, चोरी करो, कुशील सेवन करो और परि-ग्रह रखो, आदि। अरे, भाई मूल बात तो सभी सम्प्रदायो मे एक रूप से कायम है। हा, कुछ ढीलापन अवश्य आगया है और परस्पर समन्वय नही है। इतने पर से ही कुछ लोग कहते है कि समाज तो मुर्दा हो गया? अरे भाई, यदि समाज मुर्दा हो गया, तो फिर आप कैसे जीवित है? समाज और हम क्या बाकी रहेगे? इसलिए ऐसा कहना चाहिए कि समाज जीवित है और जयवन्त है। समाज सब कुछ कर सकता है।

अभी आपके सामने एक बाई सुशीला बोहरा कहकर गई कि गलतफहमियो की वजह से यह बात हो रही है। यदि वचनो पर, कलम पर और भावो पर कट्रोल (नियन्त्रण) कर ले, तो फिर कोई भी झगडा नही है। आज से तीस वर्ष पहिले खडन-मडन पर अनेको पुस्तके निकली। परन्तु अब किसी के खडन-मडन मे लिखने के लिए लोगो की लेखनी कपती है। बात यह है कि मन मे खडन-मडन के विचार अवश्य आ जाया करते है। परन्तु उन पर नियत्रण

रखना आवश्यक होता है। कुछ समय पूर्व परस्पर मे अनेक गलतफहमिया पैदा हो गई थी। वे क्यो पैदा हुई ? इसलिए कि लोगो ने अपनी जवान पर नियत्रण नही रखा और कलम पर भी नियत्रण नही रखा। किन्तु विचारशील व्यक्ति को विचारो पर भी नियत्रण रखना चाहिए और लिखने पर भी। आप कोई लेख लिखने को बैठे तो तर्क कर सकते है। परन्तु किसी व्यक्ति के चारित्र पर या धर्म के ऊपर आक्षेप करना और उसके प्रति बुरे शब्दो का प्रयोग करना सर्वथा अनुचित है। यदि आप ऐसा करते है तो यह लडाई-झगडे का काम हो जाता है।

### गलतफहमी से बचो !

भाइयो, हम सबको भगवान् महावीर के झण्डे के नीचे रहना है और विश्व मे उसकी आवाज बुलन्द करना है। इसलिए हमे कमर कसकर तैयार हो जाना चाहिए। आप लोगो मे कमी किस बात की है ? आज जैनियो मे धन-बल है, बुद्धि-बल है और जन-बल भी बहुत है। त्यागभाव तो ससार की सभी जातियो से जैनियो का बढकर है। हम छाती के ऊपर हाथ रखकर के कह सकते हैं कि हमारे गुरुओ के समान अन्य कोई त्याग नही कर सकता है। फिर आप लोग क्यो कहते है जैनियो मे कुछ नही है ? यदि हममे कुछ नही है तो फिर हम जैसे भिक्षुको के सामने इतने लोग क्यो एकत्रित होते है ? यदि हमारे कहे हुए का असर नही होता है, तो फिर हमारी क्यो सुनते हो ? हम जैसा भी कहते है, वैसा आप प्रेम से सुनते है, इसका अर्थ यही है कि आप लोगो के हृदय मे यह विश्वास जमा हुआ है कि इस धर्म के सिवाय और कोई उत्तम धर्म नही है और इस धर्म के गुरुओ के समान दूसरे कोई गुरुओ मे त्याग नही है। इतना सब कुछ होने पर भी एक बात अवश्य है कि हमारे भीतर शिथिलाचार आगया है। वह आप मे ही नही आया है, किन्तु आपके पहिले धर्म के उत्तराधिकारी माने जाने वाले हम लोगो मे आया है। हमने अपने अलग-अलग गीत गाने प्रारम्भ कर दिये। उसका प्रभाव आप लोगो पर भी पडा है। तभी आप लोग कहने लगे कि अमुक महाराज तो ऐसा कहते है और अमुक महाराज ऐसा कहते है। इसलिए हमे तो अपने ही घर मे धर्मध्यान

करना चाहिए। परन्तु भाई, होना तो ऐसा चाहिए कि उनके गुण-गान ये करे और इनके गुणगान वे करे। यदि ऐसा करने लग जाये तो फिर यह भेदभाव या पारस्परिक विद्वेष की बात ही उत्पन्न नही होगी।

एक समय की बात है कि किसी वन मे जिनकल्पी दिगम्बर मुनिराज विराजमान थे और नगर मे स्थविरकल्पी मुनिराज विराज रहे थे। एक भाई तमाशबीन बनकर इधर-उधर चक्कर लगाने मे जीवन का सार समझता था। वह एक दिन वन मे गया और जिनकल्पी मुनिराज के सामने जाकर कहने लगा—ओ हो, कैसा त्याग है, कैसा अनुपम वैराग्य है, कैसा मन को वश मे किया है ? सर्दी-गर्मी की भी कोई परवाह नही है। यदि खाने को मिल गया तो शरीर को भाडा दे दिया और नही मिला तो लघन कर लिया। और रात-दिन भगवद्-भक्ति मे और आत्म-ध्यान मे लीन हैं। साधुपना तो आप मे है। परन्तु जो मुनिराज नगर मे रहते हैं, वे तो मजे से भोजन करते है और मस्त पडे रहते है। उनमे कुछ भी त्याग और तप नही है, वे क्या साधु है ? इस प्रकार उस व्यक्ति ने नगरवासी साधु की निन्दा की और उनकी भरपूर प्रशसा की। वह जब इस प्रकार के स्तुति-निन्दा रूप वचन कह रहा था, तभी उन मुनिराज ने अपने दोनो कानो मे अगुली डाल दी। उन्होने ऐसा इसलिए किया कि वे न तो अपनी प्रशमा की बाते सुनते थे और न दूसरो की निन्दा की ही बातें सुनना चाहते थे। प्रत्युत जब वह कहकर चुप हो गया, तब मुनिराज ने कहा—कि जो लाय (ज्वाला) मे रहते हुए भी उससे बचकर अपना कार्य करते हैं, उनका त्याग सबसे ऊचा है।

अब उस व्यक्ति ने सोचा कि यहा पर तो मेरी दाल नही गली। अत वह वन से लौटकर नगर-निवासी स्थविरकल्पी मुनिराज के पास पहुचा और उनसे कहने लगा—महाराज, आपका त्याग अद्भुत है। और आप ही सच्चे साधु है। जगल मे जो साधु है, वह क्या खाता-पीता है, इसका क्या पता है ? मैं तो असली साधु आपको ही मानता हू। उसकी ऐसी बाते सुनते ही उन स्थविर-कल्पी साधु ने भी अपने दोनो कानो मे अगुली डाल दी। पुन उसके चुप हो जाने पर कहा—भाई, जो जगल मे साधु रहते है, वे नग्न रहते है, सर्दी-गर्मी

और भूख-प्यास का महान् कष्ट सहते है। मैं उनकी निन्दा नही सुनना चाहता हू। वे बहुत बडे त्यागी और तपस्वी हैं।

जब उसने ये वचन सुने और देखा कि न मेरी यहा पर ही दाल गली है और न वहा पर ही गली है, तो सोचने लगा कि ये दोनो तो आपस मे मिले हुए हैं। अत वह उनके चरणो मे पड गया और बोला—महाराज, मैंने दोनो की एक दूसरे के सामने भरपूर निन्दा की। परन्तु आप दोनो ही सन्तो ने उसमे रस नही लिया, प्रत्युत कानो मे अगुली दे कर अपना उपेक्षा भाव ही दिखाया। इसलिए आप दोनो ही जहाज के समान तरण-तारण है।

भाई, उस कलह-प्रिय व्यक्ति के द्वारा यह विद्वेप की गलतफहमी फैलने वाली थी, परन्तु दोनो ही सन्तो ने सावधानी वरत करके उसे सुधार दिया। इसलिए आप लोगो का कर्तव्य है कि कलह-प्रिय लोगो के द्वारा जो गलतफहमिया (भ्रान्तिया) फैले, उनके निवारणार्थ एक ऐसी तटस्थ लोगो की कमेटी बनावे, जो कि समय-समय पर उठने वाली सभी प्रकार की भ्रान्तियो का परिहार करती रहे। जिस किसी ओर से कोई भी बात विद्वेप-वर्धक उठे, वहा जाकर वह कमेटी उनसे कहे कि आज के शान्ति और सगठन के युग मे आप क्यो खाई-खोद रहे हैं। इससे कोई भी उत्तम काम होने वाला नही है। इस प्रकार जहा से जो भी विद्वेप एव फूट बढाने वाली बात उठे, उसे वही समाप्त कर देवे। ऐसा करने से जो भ्रान्तिया बढ रही हैं, वे सब समाप्त हो जावेंगी। भाई, सन्तो के न तो कुछ लेना है और न कुछ देना है। भाव आप लोग ही भरते हैं और फिर हमारे ऊपर सवार हो जाते हैं। अब आप लोग तो यह नियम कर लेवें कि शान्ति का वातावरण बनायेंगे और भ्रान्तियो को दूर करेंगे। अब तो सीना खोलकर आगे आ जाओ और परस्पर मे एक दूसरे का हाथ पकडकर उसमे जुट जाओ और यह दृढ निश्चय करो कि जब तक समाज मे से अशान्ति नही मिटेगी, तब तक हम दम नही लेंगे। फिर देखो कि शान्ति होने मे देर नही लगेगी।

अरे, जिन के राज्य थे, भारत सरकार ने उनको ही पीछे ले लिये और राजाओ के राज्य समाप्त कर दिये, तो समाज की इस जरा सी अशान्ति को

और भ्रान्ति-पूर्ण वातावरण को समाप्त करने मे क्या देर लगेगी ? वस, एक बार दृढता-पूर्वक खडे हो जाओ तो सव भ्रान्तिया दूर हो जावेगी। उनके दूर होते ही आप लोग देखेंगे कि यह समाजरूपी कल्पवृक्ष फिर हरा-भरा हो गया है और उसमे अमृतमय फल लग रहे है। भाई, प्रभु के वचन और उनका शासन समाप्त होने वाला नही है। फिर भी इस ध्रुव-सत्य के भरोसे ही नही बैठना है। दुकान तो चलेगी, परन्तु जब रकम की सभाल रखोगे, तभी चल सकेगी। आप लोग कम नही हैं। हजारो-लाखो की सख्या मे है। वीर-शासन के उद्धार, प्रसार और प्रचार का जो भी कार्य आप लोग करना चाहे, वह सहज मे ही कर सकते हैं।

आज आप जैनियो की सख्या एक करोड से ऊपर ही है। किन्तु आप लोगो की भूल से पिछली जन-गणना मे केवल पच्चीस लाख ही जैनियो की सख्या बतायी गई। अब सन् १९७१ मे होने वाली जन-गणना के लिए यह आन्दोलन चल रहा है कि धर्म के खाने मे प्रत्येक जैन भाई अपनी जाति को न लिखाकर 'जैन' ही लिखावे। यदि इस प्रकार सभी जैन-सम्प्रदाय वाले अपना सम्प्रदाय-व्यामोह छोडकर केवल 'जैन' लिखाते है, तब तो हमारे लिए सहज मे ही विश्व-मैत्री हो जाती है। क्योकि उस जन-गणना की रिपोर्ट मे सम्प्रदाय का कोई स्थान नही रहता है। इस प्रकार से जन-गणना मे जैन-सख्या का भी ठीक ठीक पता लग जायगा और सारे पचडे दूर हो जायेंगे। जब सरकारी रिपोर्ट सही आवेगी, तब सभी सम्प्रदायो को परस्पर मे मिलने का अवसर प्राप्त होगा और वातावरण भी शुद्ध बनेगा। इसलिए हमे इस जन-गणना के समय सावचेत होकर और भेद-भाव भूलकर धर्म के खाने मे एक मात्र 'जैन' ही अपने को लिखाना आवश्यक है।

### फूट मे सहयोगी मत बनो !

बाइस सम्प्रदायो का विलीनीकरण सादडी मे हुआ। यदि सम्प्रदाय का व्यामोह होता तो आचार्य लोग क्या अपनी पदवियाँ छोड़ते ? कभी नही छोडते। सारी सम्प्रदायो को समाप्त करके एक श्रमणसघ बन गया। फिर भी गलतफहमिया पैदा कर दी गई कि अब हमारा निर्वाह नही हो सकता है।

भाई, यहा तो खुला मार्ग है। जावें तो उनकी मर्जी है और रहने है तो उनकी मर्जी है। परन्तु शब्द तो श्रमण ही रहेगा। श्रमणसघ से तो गृहस्थ भी अलग है। परन्तु कही भी जाओ—श्रमण-पर्याय मे तो रहना ही पडेगा। मैं आप से पूछता हू कि वे अलग क्यो होते हैं? आप कहेंगे कि उनकी इच्छा नही है। परन्तु मैं कहूगा कि उनके अलग होने मे आपका प्रताप है। आप जा-जाकर उनके कान भर देते हैं, कुछ का कुछ भिडा देते है तो वे अलग हो जाते है। फिर भी हम और वे अलग नही हैं। जो प्रभु के मार्ग को ऊचा नाके दिखावे तो वे सभी अपने ही बन्धु हैं। वे दुश्मन नही हैं। सबके साथ समभाव रखना चाहिए। परन्तु जो जिनशासन को नीचा दिखाने का प्रयत्न करे और इसको को चुनौती दे, उनके साथ हमारा मन मिला नही, मिलता नही और मिलेगा भी नही। क्योकि जो प्रभु के वचन तोडे-फोडे, वे पडित नही है, वे तो पडिता-भास है। जो भगवान के वचनो को चुनौती दे, वे जैन-समाज मे आदर के पात्र नही हो सकते है। ये स्वार्थी लोग आज तो यहा तक कहने लगे है कि लोच करने मे क्या है? सवारी पर बैठने मे क्या है? धन रखे तो क्या और नही रखे तो क्या है? फिर कहने लगेंगे कि यदि साधु स्त्री-सेवन भी कर लेवे तो क्या है? जो लोग ऐसे गद्दारो का साथ दे रहे हैं, उनको भी मैं मानने के लिए तैयार नही हू। समाज के लिए ये खाइया पैदा की जा रही है। और समाज को नष्ट किया जा रहा है। इन सबसे सावधान रहने की आवश्यकता है।

अभी शकरलालजी ने कहा कि वे नवयुवक यहा नही आये है। मैं समझता हू कि वे लोग भी इन्ही विचारो के होंगे? ठीक है, जाओ—मोटर मे बैठो और प्रचार करो। मैं ऐसे गये-गुजरो मे नही हू कि मोटर मे बैठकर प्रचार करता फिरू। इन्ही नवयुवको को ले लो तो बेडा पार है। ये लोग कहते है कि बाप का दीवाला बेटा नही चुका सकता है। भाई, ऐसा कहना तो कुपात्रो का ही काम है, हमारा नही। अरे, बाप का दीवाला तो पुत्र ही चुकाएगा। आप बतावे कि पहिले पुत्र है, या पिता? ये नवयुवक समाज के उदीयमान सूर्य है। परन्तु जो पठन-पाठन से, जिनवाणी से अनुरक्त हो गये और जिन मोड देने गये

तैयार हो जावे, तो हम उन्हे मान सकते है। यदि छह मास का बच्चा भी सीधा रास्ता बताएगा तो क्या नही मानेगे ? फिर नवयुवक तो हमारी समाज के दीपक है। किन्तु वे यद्वा-तद्वा खाना-पीना छोडे नही, बीडी-सिगरेट छोडे नही, और फिर भी हमारे ऊपर सवार होकर आते हैं और कहते है—महाराज, ऐसे नही, ऐसे करो, तो हम उनका कहना मानने को तैयार नही है।

भाइयो, हमे तो भगवान की आज्ञा के साथ आगे बढना है। भगवान महावीर ने तो विश्वमैत्री के प्रचार मे अपना समस्त जीवन ही अर्पण कर दिया। उनका प्रथम उपदेश वाक्य है—**'मित्ती मे सव्वभूएसु'**। सारे जीवो के साथ मैत्री भाव रखो। उन्होने इस विश्वमैत्री का स्वय आजीवन पालन किया और दूसरो को इसी पर चलने की प्रेरणा दी। यही कारण है कि उन पर घोरातिघोर उपसर्ग करने वालो पर भगवान ने पूर्ण मैत्री-भाव रखा और उसी के फल स्वरूप चण्डकौशिक जैसे विषधर सर्प भी शान्त हो गये। गजसुकुमालजी ने अपने सिरपर अगारो की तीव्र वेदना इसी एक मात्र मैत्री भाव से सहन की। खन्धकजी ने अपनी खाल उतरवाई तो इसी एक मैत्री-भाव के आधार पर। अन्यथा क्या कोई जीते-जी अपनी खाल उतरवा सकता है और सिरपर खैर के धधकते अगारो की तीव्र वेदना सह सकता है ? जिन-जिन भी महापुरुषो ने ये घोरातिघोर उपसर्ग सहकर मुक्ति को प्राप्त किया, उन सभी ने **'मित्ती मे सव्वभूएसु'** इस एक वाक्य के ही आधार पर आत्म-कल्याण किया है। उन्होने यह बात भलीभाति जान ली थी कि आत्मा का उद्धार इस विश्वमैत्री भावना से ही हो सकता है, अन्य प्रकार से नही।

### लोकैषणा को छोड़ो !

भाइयो, जहा यशोलिप्सा है, वहा भौतिक एषणा है। अत लोकैषणा को छोडकर आध्यात्मिकता मे आ जाओ और गलतफहमियो को हटाकर एक-एक करके सभी को समीप लाने का प्रयत्न करो। आपने विचार किया कि आज महाराज के व्याख्यान मे जाना है, तब आपने प्रयत्न किया और यहा पर आये। जमीन आपकी है और यह सब कुछ आपका है। अब आपने भी अपने विचार प्रकट किये और हमने भी अपने विचार आपके सामने रखे। इससे परस्पर

प्रेम-भाव की ही वृद्धि हुई है। इसलिए आगे ऐसे ही कार्य करते रहना चाहिए जिससे कि परस्पर में प्रेमभाव की वृद्धि होती रहे।

भाइयो, आज का समारोह बहुत अच्छा रहा। वातावरण सुन्दर बना। आज विश्व-मैत्री कल्याण की भावना पर प्रकाश डाला गया। इससे हमारे हृदय को बहुत सन्तोष प्राप्त हुआ। मैंने आपके सामने तीन बातें रखी— एक तो अपनी जबान पर अधिकार रखो। यदि कभी कोई बात मन में भी आजाय, तो उसे मुख से बाहिर मत निकालो। किन्तु भीतर ही भीतर ऊहापोह करके उसे समाप्त कर दो। दूसरे अपनी कलम पर संयम रखो, अर्थात् यद्वा-तद्वा लिखकर लोगों में मनोमालिन्य या विद्वेष-भाव को मत पैदा करो। लिखने की मनाई नहीं कर रहा हूं। धर्म और समाज के हित में जो बात हो उसे खूब लिखो और उत्तमोत्तम ग्रन्थ निकालो। परन्तु संयम और विशुद्ध भावों के साथ सब काम करो। तीसरे जो मर्यादाएं चल रही हैं, उनकी तह में जाकर उनके रहस्य को जानने का प्रयत्न करो। बिना समझे-बूझे सम्प्रदायों को नष्ट करने का प्रयत्न मत करो। हां, सम्प्रदायवाद को अवश्य समाप्त करो। यही सबका आधार आवश्यक है। यदि आप लोगों ने इन तीन बातों पर आचरण किया तो आप देखेंगे कि सभी सम्प्रदायों को समीप आने में देर नहीं लगेगी।

[illegible] में आचार्य तुलसीजी ने मुझसे मिलने की भावना प्रकट की। मैंने कहा— अवसर आने पर मिलना होगा। और जब पंचमी को गये, तब वे बाहिर खड़े हुए थे। मैंने उस दिन कह दिया कि—

'भोर से भाति भली-भली आज की एह।
ते तुलसी तेने हरी, मिश्री चाखो नेह ॥

आचार्य तुलसीजी ने कहा— [illegible] मेरे कौन और [illegible] कौन? [illegible] है। परन्तु हृदय में [illegible] की [illegible] है, यह [illegible] दोहा कहा—

दोनों-हाथ रहते सहज-हाथ लिये पहुंचान।
मिश्री-मिश्रित दाख से, [illegible] प्रेम निधान ॥

[illegible] प्रेम [illegible]। [illegible]

ही अग है। यदि अन्यतीर्थी भी मिले, तो उनमे भी गुण है, वात्सल्य भाव है और यदि वे समाज का भला करने वाले है तो उन पर भी मैत्री-भाव की भावना रखना चाहिए। कहा है—

**पखा-पखी मे पचरया जे नर मत कर हीन।**
**ज्ञानवन्त निरपक्ष रहै—सकल मत परवीन**

अन्य मतावलम्वी भाई जो भी अच्छा काम करते है, तो हम उनमे भी सम्मिलित है। परन्तु जो अपना मताग्रह रखते है, अपने को ही अच्छा और दूसरो को बुरा समझते है, उनसे क्या प्रयोजन है? फिर भी उनके साथ माध्यस्थ्यभाव रखना चाहिए। विद्वेषभाव तो उन पर भी नही रखना चाहिए। हमे मैत्री-भाव की इस प्रकार से वृद्धि करनी चाहिए और ऐसा सुन्दर वातावरण बनाना चाहिए कि जिसे देखकर ससार भी आश्चर्य चकित हो जाय। भाई, यहा लेने-देने को कुछ भी नही है। पात्र लेकर गोचरी को हम भी जाते है और वे भी जाते है। दोनो के ही पैरो मे न पगरखी है और न माथे पर तिलक ही। अहकार की जितनी भी वस्तुए थी, वे सभी खोल दी है। भगवान महावीर ने सभी परिग्रह का त्याग करा दिया है। अब केवल निर्मूल भ्रान्त धारणाए क्यो उत्पन्न हो? यदि कोई साधु निकले तो उसे देखकर के मुख नही फेरना चाहिए। किन्तु आदर और प्रेम से पूछना चाहिए कि आप कहा से पधारे है? अरे, पूछने मे भी क्या भूत लगता है?

भाई, विद्वेषभाव कब उत्पन्न होता है? जब कोई सम्प्रदाय वाला अपने आपको सबसे ऊचा समझता है। और फिर कुछ ऐसे लोग जाकर कहते है कि हाँ महाराज, आप जैसी करनी किसी की नही है। तब उनका अहकार सातवे आसमान पर चढ जाता है। एक श्रावक जी ऐसे सन्त के पास गये और 'मत्थएण वदामि' करके कहने लगे—महाराज, आप तो चौथे आरे की बानगी ही हो! आप तो बडा कल्याण करने वाले हो! अपनी प्रशसा सुनकर सन्त बोले—आप बडे धर्मात्मा श्रावक हो। इस प्रकार एक दूसरे की प्रशसा करके दोनो ने दोनो के मोक्ष जाने की हुडिया सिकार दी। परन्तु भाई, क्या हुडिया

इनकी निगाह गई ? नहीं ! यह तो परस्पर में एक दूसरे के गीत गाना हुआ। अब, हम ही तो नमक-देश निकालेंगे, तभी काम चलेगा।

भाइयो, प्रभु की आज्ञा में जो भी चलते हैं, वे सब ऊँचे हैं। यदि भगवान की आज्ञा छोड़ दी, तो वह चाहे कितनी भी ऊँची से ऊँची करनी करे, तो भी कुछ नहीं है। आप लोग आज्ञा में चलते हैं, तभी आपका धर्म प्रधान है। जो आज्ञा छोड़कर उच्छृंखल बन गये, वे भगवान महावीर के शासन में नहीं हैं।

आज इस विश्वमैत्री-दिवस के अवसर पर हमें सब प्राणियों के कल्याण के लिए यह भावना रखनी चाहिए—

सर्वेऽपि सुखिनः सन्तु, सन्तु सर्वे निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

अर्थात् सभी प्राणी सुखी हों, सभी निरोग रहें और सभी कल्याणभागी हों, किन्तु दुःख का भागी कोई भी न हो।

वि० सं० २०[illegible], आसोज वदि–४

[illegible], जोधपुर

# ७ समाधि कैसे प्राप्त हो ?

बन्धुओ, आज मैं आप लोगो के समक्ष 'समाधि' विषय पर कुछ विवेचन करूगा । यदि आप ध्यानपूर्वक सुनेंगे और इसमे से कुछ तत्त्व ग्रहण करेंगे तो आपके जीवन मे भी सुख-शान्ति का निर्झर प्रवाहित होने लगेगा ।

समाधि नाम है सुख-साता या शान्ति का । आप किसी भाई-बन्धु के यहा जाते है और उसके यहा जाकर पूछते है—क्यो साहब, आप मजे मे है ? आपकी भाषा—आनन्द मे, राजी-खुशी मे या मजे मे है । जबकि साधु-सन्तो की भाषा 'सुख-साता है, समाधि है ।' भाई, बात एक ही है—राजी-खुशी कहो, चाहे सुख-साता कहो और चाहे समाधि कहो । सबका अर्थ एक ही है । परन्तु साधु-सन्तो की भाषा मे और गृहस्थो की भाषा मे बोलने का अन्तर है । जैसे आप अपने किसी बन्धु आदि से पूछते है कि 'जीम लिया साहब ! जब कि मुनि-महात्मा कहते है कि 'आहार-पानी कर लिया ।' आप कहते हैं कि 'थाली कटोरी लाना । और मुनि कहते है—कि 'पात्र लाना ।' आप कहते हैं कि 'काम कर लेना ।' और मुनि कहते है कि 'अवसर देख लेना ।' आप पहिरने के वस्त्रो को 'धोती-कुर्ता' कहते है और हम लोग 'चादर-चोल पट्टा' कहते है । इस प्रकार साधु और श्रावक के सभी व्यवहार व भाषा मे अन्तर है । आप कहते है बिछौना कर लेना । परन्तु हम कहते हैं कि 'सथारा

दूसरी है आध्यात्मिक समाधि। इसमे लीन होने पर सासारिक सभी आधि (मानसिक चिन्ता) और व्याधि (शारीरिक चिन्ता) तथा सकल्प और विकल्प शान्त हो जाते है। इसी समाधि के द्वारा यह आत्मा अनादिकाल से लगे हुए सर्वदोषो के मूल कारण कर्मों का नाश करके परम ब्रह्मपद को प्राप्त करता है और सदा के लिए ससार के सर्वझझटो से मुक्त हो जाता है। भगवान् ऋषभदेव की स्तुति करते हुए समन्तभद्र स्वामी कहते है—

**स्वदोषमूलं स्वसमाधितेजसा निनाय यो निर्दयभस्मसात् क्रियाम्।**
**जगादतत्त्वं जगतेऽर्थिनेऽञ्जसा बभूव च ब्रह्मपदामृतेश्वरः॥**

हे भगवन्, आपने अपने सर्वदोषो के मूलकारण भूत राग-द्वेषादि-भाव कर्मों को, तथा ज्ञानावरणादि द्रव्य-कर्मों को भस्म करके केवलज्ञान प्राप्त किया और ससार से पार उतरने के इच्छुकजनो को आत्म-तत्त्व का उपदेश दिया। तथा परब्रह्म परमेश्वर बनकर अमृतपद को प्राप्त किया।

महर्षियो ने इस आध्यात्मिक समाधि के ऊपर अनेक महान् और गम्भीर ग्रन्थो की रचना की है। परम समाधिनिष्ठ पूज्यपाद स्वामी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ समाधितन्त्र को पूर्ण करते समाधितत्त्व का उपसहार करते हुए कहते है—

मुक्त्वा परत्र-परबुद्धिमहंधियं च,
संसारदुःखजननीं जननाद्विमुक्तः।
ज्योतिर्मयं सुखमुपैति परात्मनिष्ठ—
स्तन्मार्गमेतदधिगम्य समाधितन्त्रम्॥

जो अनन्त-काल से ससार के दुःखो का उत्पन्न करने वाली इस शरीरादिक पर-पदार्थों में आत्म-बुद्धि को और आत्मा में पर-बुद्धि को अर्थात् अपने सुख-दुःखादि [illegible] इस प्रकार की बुद्धि को छोड़कर अपने परम [illegible] में स्थिर या निरत होता है, वह इस जनम (भव) समुद्र से विमुक्त [illegible] ज्योतिर्मयी केवलज्ञान और अनन्तसुख को प्राप्त होता है। जो जीव [illegible] (समाधि प्रतिपादक ग्रन्थ) को भली प्रकार हृदयगम करके [illegible] करता है, वह परमात्मपद को प्राप्त करता है।

### चार प्रकार की समाधि

जिस आध्यात्मिक समाधि के द्वारा शिवपद पाकर आत्मा अजर-अमर और अनन्त सुख का भोक्ता बन जाता है, उससे सांसारिक सुखों को देने वाली अन्य वस्तुएं तो अनायास-सहज में ही प्राप्त हो जाती हैं। उस परम निर्विकल्प समाधि को प्राप्त करने की कारणभूत समाधि भी अनेक प्रकार की होती है। जैसे—श्रुतसमाधि, चारित्रसमाधि, विनयसमाधि और तपसमाधि। आप लोग समाधि प्राप्त करना चाहते हैं। पर वह कहां है? क्या वह किसी तालाब में, कुए या बावड़ी में है, अथवा किसी बाग-बगीचे या महल-मकान में है? या किसी की जेब या तिजोरी में रखी है, जो हम वहां से प्राप्त कर लेवें। भाई, वह समाधि अन्यत्र बाहिर कहीं नहीं रखी है। वह तो अपने पास ही है। यदि आप उस समाधि को प्राप्त करना चाहते हैं, तो कर सकते हैं। और यदि असमाधि लेना चाहते हैं, तो वह भी ले सकते हैं।

इस समाधि और असमाधि का क्या रहस्य है? यह आप जानना चाहेंगे? भाई, इसका रहस्य जानना बहुत आसान है। कल्पना कीजिए कि किसी व्यक्ति को व्यापार करना है। अब उसे उतना ही व्यापार करना चाहिए, जितनी कि उसके पास में निज की पूंजी है। यदि अपने पास हजार-पांच सौ की ही पूंजी है, तो उतने का ही माल खरीदना चाहिए और उसके बिक जाने पर आगे और लाना चाहिए। परन्तु इससे ये ऋण लेकर और [illegible] बढ़ाकर व्यापार करना ठीक नहीं है। ऐसा करने से आप अपनी नींद भी हराम नहीं करेंगे और दूसरों की भी नींद हराम नहीं करेंगे। आपके ऊपर किसी का दबाव नहीं रहेगा, इसलिए आजादी का भी आनन्द अनुभव करेंगे। इसके विपरीत यदि [illegible] पास पूंजी तो पांच हजार की है और [illegible] हजार का माल ले [illegible] आ गई, [illegible] आपके हाथ में नहीं रहेगा। आप सोचते हैं कि [illegible] इसलिए [illegible] परन्तु [illegible] अथवा [illegible]

[हा]थ मे नही है। जब जमाना अपने हाथ मे नही है, सब घर की पूजी तो चली गई। अब दूसरे से जो दस-पन्द्रह हजार कर्ज लाये थे, वह कहा से चुकाओगे ? भाई, भूखे दिन निकालना तो आसान है, परन्तु दूसरे की देनदारी माथे रखकर दिन निकालना कठिन है। बस, ऐसा व्यापार-धन्धा करना ही असमाधि का कारण है। घर की पूजी का विनाश तो सहन हो सकता है। परन्तु पराई पूजी का मारा जाना सहन नही हो सकता है। जब मागने वाला आकर अपनी रकम मागेगा, तब स्त्री के आभूषण और घर बार बेच कर उसका रुपया देना पडेगा। यदि उसमे कम बतलाओगे तो लोग कहेगे कि अजी, इसकी नीयत खराब है, इसने बेईमानी की है। माल दाबकर बैठ गया है और अब देने के नाम पर चार-आठ आना बताता है और हाथ ऊचे करता है। इस प्रकार पराई पूजी लेकर व्यापार करने का परिणाम यह हुआ कि घर मे घाटा पडने पर भी दूसरो की दृष्टि मे आप बेईमान सिद्ध हो गये। भाई, यही असमाधि का काम किया और अपनी सहज शान्तिसमाधि को गवा दिया।

### असमाधि के कारण

भाइयो, आज आप लोगो के कलेजे क्यो सूख रहे है ? खाया-पिया अगे क्यो नहीं लग रहा है ? आजकल कमाई तो बहुत है। पहिले साल भर मे दो सौ, चार सौ, हजार और बहुत हुआ तो पाच हजार रुपयों का बढाव होता था। इससे आगे क्या कभी आपने बढाव देखा ? परन्तु आज साधारण से साधारण व्यापारी के हजारों का बढाव है। पर यह बढाव किस काम का ? [illegible] था वह लाभ का था। दो सौ का भी बढाव होना [illegible] रहता था। परन्तु आज तो व्यापारियों के पास दूसरे लोगों [illegible]। [illegible] हजार रुपया साथ लाते है तो घर मे रखने के लिए [illegible]। [illegible] घर के भीतर तिजोरी मे नही है। [illegible] कहता है कि लाओ हमारे पचास हजार ! तब [illegible] नहीं है। वह कहता है कि तुम्हारी [illegible] करते है और अपमानित होना [illegible] पचास हजार की पूजी खाता है। परन्तु

उसकी तिजोरी में पांच हजार रुपये भी नहीं मिलेंगे ? क्योंकि यह महाजन जानता तो यही है कि बिना व्याज के एक रुपया भी अपने पास नहीं रखना चाहिए। परन्तु लोगों की नीति तो शान बिगाड़ने की है। दूसरे की रकम आई और आपकी शान गई। पहिले के लोग ऐसे थे कि यदि सामने वाले की परिस्थिति कुछ कमजोर देखते तो कहते—भाई, घबराओ मत। धीरे-धीरे दे देना। यदि और चाहिए तो रकम ले लेना। परन्तु अपनी पेढी का नाम मत गवा देना। यदि नाम चला गया तो फिर कमाना कठिन हो जायगा। उस समय दोनों के हृदयों में समाधि थी। और आज दोनों के ही असमाधि है। आज तो सभी के परस्पर में होड़ लगी हुई है कि मैं उससे आगे पहुंचू ? परन्तु जब भाग्य में योग नहीं है, तब तू जबरन आगे कैसे जायगा ? अरे भाई, पहिले तू अपनी शक्ति का विचार कर। शक्ति तो तेरे में पन्द्रह सेर वजन उठाने की है और पच्चीस सेर वजन उठाकर चलेगा, तो असमाधि ही होगी। जब तेरे में शक्ति पन्द्रह सेर बोझ उठाने की है, तब तुझे दस सेर का ही बोझा उठाना चाहिए। इससे तू सुखपूर्वक चला जायगा। पहिले जो ये सब बातें व्यावहारिक थीं, उन्हें तो आज हटा दिया। और जो हमारे पूर्वज कह कर गये थे, उन बातों की ओर भी लक्ष्य नहीं रखा है। अब अपने मन में जो काम करते हो तो उसमें असमाधि आयेगी ही !

पहिले कोई मनुष्य व्यापार करने में कुशल हो जाता और कमाने की सब कलाएं भी जान लेता, तो भी [illegible] निराली दुकान पर बैठ जाना [illegible] वह जीवन भर वहीं का वहीं बैठा रहना चाहता था। वह सोचता था कि [illegible] कमाता, मालिक के लिए ही कमाता। ऐसी बुद्धि रहती थी। [illegible] मानता था कि मैं जिस मालिक की गादी पर बैठा हूं, उसकी [illegible] चाहिए। यदि [illegible] बार भी बात [illegible] हो गई, तो [illegible] उसी ने अमुक का दिवाला निकलवा दिया [illegible] लोगों को शान्ति की [illegible] सदैव [illegible]।

[illegible]

हाथ मे नही है। जब कमाना अपने हाथ मे नही है, सब घर की पूजी तो चली गई। अब दूसरे से जो दस-पन्द्रह हजार कर्ज लाये थे, वह कहा से चुकाओगे? भाई, भूखे दिन निकालना तो आसान है, परन्तु दूसरे की देनदारी माथे रखकर दिन निकालना कठिन है। बस, ऐसा व्यापार-धन्धा करना ही असमाधि का कारण है। घर की पू जी का विनाश तो सहन हो सकता है। परन्तु पराई पूजी का चला जाना सहन नही हो सकता है। जब मागने वाला आकर अपनी रकम मागेगा, तब स्त्री के आभूषण और घर बार बेच कर उसका रुपया देना पडेगा। यदि देने मे कम बतलाओगे तो लोग कहेगे कि अजी, इसकी नीयत खराब है, इसने बेईमानी की है। माल दाबकर बैठ गया है और अब देने के नाम पर चार-आठ आना बताता है और हाथ ऊ चे करता है। इस प्रकार पराई पू जी लेकर व्यापार करने का परिणाम यह हुआ कि घर मे घाटा पडने पर भी दूसरो की दृष्टि मे आप बेईमान सिद्ध हो गये। भाई, यही असमाधि का काम किया और अपनी सहज शान्तिसमाधि को गवा दिया।

**असमाधि के कारण**

भाइयो, आज आप लोगो के कलेजे क्यो सूख रहे है? खाया-पिया अगे क्यो नही लग रहा है? आजकल कमाई तो बहुत है। पहिले साल भर मे दो सौ, चार सौ, हजार और बहुत हुआ तो पाच हजार रुपयों का बढाव होता था। इससे आगे क्या कभी आपने बढाव देखा? परन्तु आज साधारण से साधारण दुकानदार के हजारो का बढाव है। पर यह बढाव किस काम का है? पहिले का बढाव था तो वह लाभ का था। दो सौ का भी बढाव होता था तो वह घर मे रहता था। परन्तु आज तो व्यापारियो के पास दूसरे लोगो की पूजी है। आप पचास हजार रुपया माथे लाये है तो घर मे रखने के लिए नही लाये है। वे माल पर लगे हुए हैं। घर के भीतर तिजोरी मे नही है। यदि मागने वाला आ करके कहता है कि लाओ हमारे पचास हजार! तब आपको कहना पडता है कि साहब, अभी नही है। वह कहता है कि तुम्हारी नीयत खराब है, इस प्रकार के शब्द सुनने पडते है और अपमानित होना पड़ता है। भाई आज लखपति है, या पचास हजार की पूजी वाला है। परन्तु

और वेतन अधिक से अधिक चाहते है और सदा ही वेतन वृद्धि की माग करते रहते है। यही हाल आज सरकारी कर्मचारियो का है। वे पूरा काम भी दिन मे नही करते है और वेतन वृद्धि के लिए सरकार को सदा विवश करते रहते है। यदि उनकी मागे पूरी नही होती है तो हड़ताल की धमकी देते है और हड़ताल करने मे देर नही लगती है। फिर सारा सरकारी काम-काज ठप्प हो जाता है और बेचारी जनता को अनेक परेशानिया उठानी पड़ती है। इधर असरकारी दुकानो पर काम करने वाले मुनीमो से सेठो की कोई बात छिपी हुई नही रहती है। अत जब उनकी माग पूरी नही की जाती है तब वे भी कह देते है कि सेठजी, या तो हमारा वेतन बढाओ। अन्यथा आपकी सारी पोल खोल देंगे। भाई, यह तो माथे मे काल ठोककर अपनी माग मनवा लेना है। परन्तु मालिक का हृदय राजी रखकर लेने की बात नही है। इस प्रकार से मुनीम-गुमास्ते लोग या सरकारी लोग छह घंटे काम करेंगे। फिर बचे हुए समय को सिनेमा देखकर या ताश-शतरंज खेल करके नष्ट करेंगे। किन्तु सामायिक-पौषध आदि करके उसका सदुपयोग नही करेंगे।

पहिले जब यह गुमाश्ता-एक्ट नही बना था, तब ये ही मुनीम-गुमास्ते कहा करते थे कि देखो- सेठ लोगो से यहा कितना अन्याय होता है कि हम लोगो से चौबीसो घंटे ही काम लेते है। जबकि कही भी कोई चौबीसो घंटे काम नहीं करता था। यदि कभी किसी के कुछ अधिक काम आ भी जाता था, तो अवश्य रात-भर जग जाता था। परन्तु इसका अर्थ यह नही कि सदा चौबीसो घंटे ये इन लोगो को जागते ही रहते थे। इसके साथ यह भी था कि सेठ लोग भी इस बात का ख्याल रखते थे कि अबकी बार इस सीजन मे हमारे मुनीम-गुमास्ता ने अधिक काम किया है और हमें अधिक लाभ हुआ है तो वे लोग दिवाली पर [illegible] इनाम-इकराम भी देते रहते थे। परन्तु जब से इस [illegible] आशा [illegible] उनके [illegible] सरकार ने [illegible] कानून [illegible] लिया है, [illegible]

मे थी। वहा शिवराम जी जागडा मुनीम थे। उस समय उनके छह सौ रुपये वार्षिक वेतन मिलता था। आज तो हजारो रुपये पाने वाले मुनीम है। परन्तु पहिले पाच सौ रुपया सालाना पाने वाला भी वडा मुनीम कहलाता था। एक दिन किसी द्वेषी दुश्मन ने हुडिया अधिक खरीद ली। भाई, मालदारो के दुश्मन भी वहुत होते है। मुनीम जी को सूचना मिली कि आज अनेक लोग एक साथ हुडिया लेकर सिकराने को आने वाले है। अब रुपया तो पोते मे नही, और रकम इधर-उधर से भेली करे तो समय लगे। अव मुनीमजी को चिन्ता लग गई कि आज कैसे वात रखी जाय? वे जव सवेरे उठे तो एक दम कापने लगे और कहने लगे कि मुझे वहुत जोर की ठड लग रही है और बुखार बढता जा रहा है। व कम्बल ओढकर दुकान पर जा वैठे और धधकते कोयलो से भरी सिगडी मगाकर तापने लगे। इतने मे ही लोग आ गये और कहने लगे—ये हुडिया लीजिए। मुनीम साहव ने कहा—लाओ, देराओ। वे उन सारी हुडियो को लेकर पढने लगे। इधर सिगडी खूव धधक ही रही थी। उन्होने पढते-पढते ही कपते हुए हाथो से सारी हुडिया सिगडी मे छोड दी। यह देखते ही सव लोग कहने लगे—अरे, यह तो गजव हो गया। सारी हुडिया तो आग मे पड गई है? तव मुनीम जी वैसे ही कपते हुए स्वर मे वोले—क्या हुआ, यदि हुडिया जल गई? पैठ भुगता देगे। आप लोग पैठ मगवा लीजिए। भाई, मुनीमजी ने मन मे यह सोचा कि जव तक ये लोग पैठ मगायेगे, तव तक मैं रकम को भेली कर लूगा।

बन्धुओ, यह सव शिवरामजी ने किसलिये किया? उन्होने यह सब चतुर्भुज सेठजी के लिए की—उनकी पैठ रखने के लिए की। क्योकि वे नमक हराम नही थे, किन्तु नमक-हलाल थे। कृतघ्न नही थे, किन्तु कृतज्ञ और वफादार थे। जव उन लोगो मे ऐसा ऊचा भाव था, तभी वे लोग विश्वास-पात्र समझे जाते थे। पहिले के मुनीम अच्छे थे और मालिक भी अच्छे थे। वे सदा एक दूसरे के मान-अपमान और सुख-दुख का ध्यान रखते थे।

**काम कम : वेतन अधिक**

आज के मुनीम-गुमास्ते कैसे है कि काम तो कम से कम करना चाहते है

आचार्यो ने स्वामि-सेवक के जिस उपकारी भाव का उल्लेख किया है, वह दर्शनीय है। वे लिखते हैं—

**'स्वामि-भृत्यादिभावेन वृत्ति. परस्परोपग्रहः। स्वामी तावत् वित्त त्यागादिना भृत्यादिनामुपग्रहे वर्तते। भृत्याश्च हितप्रतिपादनेन अहितप्रतिषेधेन च स्वामिनमुपकुर्वते।'**

अर्थात्—स्वामी धनादि को देकर नौकर-चाकरो का उपकार करता है औ नौकर-चाकर हित की बात कहकर और अहित का प्रतिषेध कर स्वामी उपकार करते है।

भाइयो, पहिले स्वामी और सेवक मे कैसा उत्तम भाईचारे का व्य था। सेवक के सेवाभाव को भी स्वामी उसका उपकार मानता था औ भी स्वामी से मिलने वाले वेतनादि को उसका उपकार मानता था आज यह स्वामि-सेवक का मधुर सम्बन्ध समाप्त हो गया। अब तो दो दिन काम करने को नही आता है, तो मालिक उसका वेतन क भले ही वह अपनी बीमारी या कुटम्ब की बीमारी आदि के कारण

जिन-दीक्षा लेते ही ऐसा दृढ निश्चय कर लिया कि यदि मुझे मेरी लब्धि का आहार मिलेगा तो मैं करूंगा। अन्यथा नही करूंगा। यदि कोई भगवान नेमिनाथ का शिष्य जानकर आहार देगा तो नही लूंगा और यदि श्रीकृष्ण का पुत्र जानकर आहार देगा, तो भी नही लूंगा। परन्तु यदि मुझ मे साधुपना समझकर कोई आहार देगा, तो मुझे वह आहार लेना कल्पेगा, अन्यथा नही कल्पेगा। यह नियम करके वे साधना करते हुए विचरने लगे।

अपनी आत्म-साधना करते हुए जब वे आहार को जावे, तभी लोग कहे कि भगवान नेमिनाथ के सन्त आये है। ज्यो ही उनके कानो मे ये शब्द पडे, त्योही ढढण मुनि आहार को विना लिए ही वापिस चले जावे। इसी प्रकार कभी गोचरी को जाने पर लोग कहे—देखो, ये महाराज कृष्णचन्द्र के पुत्र आ रहे है। इन्होने राज-वैभव को छोडकर सयम धारण किया है। बस, इतना सुनते ही वे वापिस वन को लौट जाते थे। इस प्रकार लगातार गोचरी को जाने और विना आहार ग्रहण किये लौटते हुए छह मास बीत गये। उन्हे छह मास तक न आहार मिला और न पानी मिला।

आप लोग आश्चर्य करेगे कि छह मास तक विना अन्न और जल के वे कैसे रह गये? परन्तु भाई, उस समय के शरीर का सहनन भी ऐसा ही था कि आठ मास की तपस्या विना अन्न और पानी के कर सकते थे। भगवान् ऋषभदेव के समय मे बारह मास की उत्कृष्ट चतुर्विधाहार-त्याग की तपस्या था। श्री बाहुबली ने एक वर्ष का प्रतिमायोग धारण किया था और वे पूरे एक वर्ष अन्न-जल के विना रहे थे। भगवान् ऋषभदेवजी भी पूरे एक वर्ष तक अन्न-जल के विना रहे थे। भगवान् अजितनाथ से लेकर पार्श्वनाथ के समय मे आठ मास की उत्कृष्ट तपस्या थी। और भगवान महावीर के समय मे छह मास की उत्कृष्ट तपस्या थी। स्वय भगवान महावीर ने छहमासी अनशन किया है।

इस प्रकार निराहार रहते हुए ढढण मुनि के पूरे छह मास बीत गये, तब साथ मे रहने वाले मुनियो ने उनसे निवेदन किया—गोचरी के लिए आप हमारे साथ चला करे। ढढण मुनि उनके कथनानुसार गोचरी के लिए उनके साथ जाने लगे। परन्तु कर्मों की गति बडी विचित्र है। उनके साथ जाने पर भी

अन्न का कीडा है। जब तक अन्न मिलेगा—टिका रहेगा। अन्न के विना तो यह जर्जरित ही हो जाता है। कहा भी है—

**'काया कलकी कोटडी—अन्न जल समजो तेल।**
**विना अनजल के मिले, खतम होत सब खेल ॥१॥**

जब तक कारखाने की मशीन मे तेल डालते रहते हैं, तब तक वह ठीक चलती रहती है। जहा तेल देना बन्द किया कि वह भी ठप्प हो जाती है और उसमे जग लग जाती है। इसी प्रकार शरीर भी एक मशीन है। इसमे भी जब तक अन्न-जल रूपी तेल पडता रहता है, तब तक यह हरी-भरी और चलती हुई दिखती है। जहा इसको अन्न-जल मिलना बन्द हुआ, वहा यह भी जबाब देने लगती है। भाई, यह सब करामात अन्नराजजी की है। इसमे थोडी-सी भी कमी पडी नही कि सारे हाथ पैर ठडे पड जाते हैं। हा, तो वे ढढण मुनि शरीर से अत्यन्त दुर्वल हो गये। परन्तु आत्मवल सबसे प्रबल है। आत्मबल के सामने शरीर-वल नगण्य है। अत शरीर से अत्यन्त दुर्वल हो जाने पर भी ढढण मुनिराज प्रतिदिन गोचरी को जाते और प्रतिज्ञानुसार आहार न मिलने से वापिस लौट आते थे। वे सदा ही आहार के लाभ की अपेक्षा उसके अलाभ को ही श्रेयस्कर समझते और उसे कर्म-निर्जरा मानकर अन्तरग मे हर्ष ही मानते थे। इस प्रकार वे निराहार रहकर बराबर अपनी साधना को सम्पन्न कर रहे थे।

एक दिन श्रीकृष्णचन्द्र भगवान नेमिनाथ की वन्दना के लिए गये। उन्होने भगवान की वन्दना करके अन्य मुनिराजो की भी वन्दना की और मनुष्यो की सभा मे आकर वैठ गये। धर्मोपदेश सुनने के पश्चात् उन्होने भगवान से पूछा—भगवन्, आप की आज्ञा मे अठारह हजार मन्त है। इनमे कोई चारित्र-विपयक कमी दृष्टिगोचर नही होती है। परन्तु फिर भी इन सव मे उत्कृष्ट करनी करने वाला कौन है? भगवान ने उत्तर दिया—अहो कृष्ण, इस समय उत्कृष्ट करनी करने वाला ढढण मुनि है—जो तुम्हारे ससार-पक्ष का पुत्र है। भगवान के मुख मे अपने पुत्र की ऐसी प्रशसा सुनकर श्रीकृष्ण का हृदय-कमल आनन्द से खिल उठा। भाई, कौन ऐसा पुरुप है, जिसे अपने पुत्र की प्रशसा सुन

ही उन्होने सब सन्त-सतियो के दर्शन किये। उस समय दिल्ली वाले स्थानक मे सुगालचन्दजी स्वामी विराजते थे। वे अकेले ही रहते थे। पहिले उनके पास तीन सन्त रहते थे, पर वे छोडकर चले गये थे। उनका न कोई धनी धोरी था और न उन्हे किसी से कुछ लेना-देना ही था। वे अपनी मस्ती मे रहते थे। जब वाडीलाल भाई उनके पास दर्शनार्थ पहुचे, तो उनका रग-ढग देखकर कहने लगे कि ये साधु तो बडे मस्त है। जब उन्होने बम्बई वापिस पहुचकर अपनी यात्रा की रिपोर्ट लिखी तो उसमे यह भी लिखा कि मैंने जोधपुर मे एक ऐसे मस्त साधु के दर्शन किये, जिनके पास कोई साधन नही था। वे पढे-लिखे नहीं थे। परन्तु अन्तरग मे त्यागभाव था। भाई, त्यागी के लिए विज्ञापन करने की आवश्यकता नही होती है। और न उनको किसी भी प्रकार के बाह्य प्रदर्शन की ही इच्छा रहती है। उनके त्याग की छाप तो मनुष्य के हृदय पर सूर्य की किरणो के समान स्वयमेव पड जाया करती है। किसी को कहने की आवश्यकता नही पडती है।

हा, तो श्रीकृष्णचन्द्र ने उत्तम-उत्तम शब्दो से उनकी स्तुति की और वन्दना करके राजमहल को चले गये। इधर ढढण मुनि भी अपने स्थान की ओर चल दिये। वही पर एक श्रीपति नाम के सेठ का महल था। वह यह सब देख रहा था। उसने सोचा कि ये सन्त अवश्य ही कोई चमत्कारी मालूम पडते हैं। तभी तो तीनखड के धनी श्रीकृष्ण ने हाथी से उतरकर इनकी वन्दना-स्तुति की है। यदि हम भी इनकी भक्ति करेंगे और भगवान के समान गुण-गान करेंगे तो हमारी भी स्वार्थ-सिद्धि हो जायगी। ऐसा विचार करके वह सेठ ढढण मुनि के आगे आकर उनके चरणो मे पड गया और कहने लगा—हे दीनबन्धु, हे कृपालु, मुझे भी तारो! ढढण मुनि ने सोचा कि जब यह प्रार्थना कर रहा है, तो इसके यहा चलना चाहिए। सेठ उन्हे अपने यहा ले गया। उसके घर मे केशरिया मोदक बनाये हुए रखे थे। सेठ मोदक से भरा थाल उठा कर कहने लगा—महाराज, लिराओ। ढढण मुनि ने अपनी आवश्यकता के अनुसार मोदक ले लिये। उन्होंने सोचा कि आज अन्तराय टूटी है, इसलिए इतने दिनो के पश्चात् मेरे पात्र मे आहार पडा है। उन्होंने निर्दोष जल भी

जैसा होवे, तो हमारे वाधा नही है। परन्तु हमे बोध नही है कि यहा पाप लग रहा है। और एक-एक कदम पर असख्यात जीवो की हिंसा हो रही है। ये शहर क्या सन्तो के रहने योग्य है ? ऐसे शहरो मे चौमासा करना नही कल्पता है। परन्तु फिर भी हमारे साथी कहते हैं कि वहा भी हजारो श्रावक है। वहा नही जाने पर वे नाराज हो जावेंगे। किन्तु मैं अपने इन साथियो से पूछता हू कि आपकी आत्मा तो नाराज नही होगी ? परन्तु भाई, आपके मोह मे आकर यहा सयमरूपी रुपये के बारह आने और कही आठ आने ही रह जाते हैं। अब देखो न, कि साधु शहर की गलियो मे जा रहे है—कीचड मे पैर रखकर जाते है, तो सम्मूर्च्छिम जीवो के घात का दोष क्या नही लगता है ? अवश्य लगता है।

### तपोबल का चमत्कार

मेरे भाइयो, जो कहते है कि हम चौथे आरे के सत हैं—साधु है, तो क्या उनको जोधपुर की गलियो मे चलते हुए दोष नही लगता है ? क्या वे आकाश-गामिनी विद्या से चलते है ? मैं एक वात तो अवश्य कहूगा—यद्यपि आप लोग नाराज हो जायेंगे। परन्तु क्या करू ? वास्तविक बात कहने का स्वभाव पडा हुआ है। वह यह कि आप लोग जहा होशियारी और चतुराई करते हैं, वहा तो पानी मे से फवार भी निकाल लेते है। परन्तु जव बोगे वनते हो, तव फिर पूरे ही वनते हो। यह आरा तो है पाचवा, और वना दिया चौथा। अव वताओ—चौथे आरे के भाव कहा से आयेंगे ? जैसा सहनन है, जैसी शक्ति है और जैसी प्रवृत्ति है, वैसा ही काम चल रहा है। मैंने अपने वचपन मे वृद्ध सतो को देखा है। उनमे कितने ही पचास, साठ और सत्तर वर्ष के दीक्षित थे। परन्तु उनके द्वारा यह सुना कि हमे आज तक सू ठ का घासा भी लेने का काम नही पडा। आप लोगो मे से भी कितने ही पचास, साठ और सत्तर वर्ष के हो गये हैं। वताइये—आज से पहिले आपने कितने साधुओ के आपरेशन होते सुने है ? अरे जिन सन्तो के मल-मूत्र पसीना और पैरो की धूल के लगाने से वडे मे वडे रोग दूर हो जाते थे, वे आज कहा है ? परन्तु आज तो ऐसे सन्त दिखाई देते हैं कि विना आपरेशन के उनका रोग ही नही मिटता है ?

जैसा होवे, तो हमारे बाधा नही है। परन्तु हमे बोध नही है कि यहा पाप लग रहा है। और एक-एक कदम पर असख्यात जीवो की हिंसा हो रही है। ये शहर क्या सन्तो के रहने योग्य है ? ऐसे शहरो मे चौमासा करना नही कल्पता है। परन्तु फिर भी हमारे साथी कहते हैं कि वहा भी हजारो श्रावक है। वहा नही जाने पर वे नाराज हो जावेगे। किन्तु मैं अपने इन साथियो से पूछता हू कि आपकी आत्मा तो नाराज नही होगी ? परन्तु भाई, आपके मोह मे आकर यहा सयमरूपी रुपये के बारह आने और कही आठ आने ही रह जाते है। अब देखो न, कि साधु शहर की गलियो मे जा रहे है—कीचड मे पैर रखकर जाते है, तो सम्मूर्च्छिम जीवो के घात का दोप क्या नही लगता है ? अवश्य लगता है।

### तपोबल का चमत्कार

मेरे भाइयो, जो कहते है कि हम चौथे आरे के सत है—साधु है, तो क्या उनको जोधपुर की गलियो मे चलते हुए दोष नही लगता हैं ? क्या वे आकाश-गामिनी विद्या से चलते है ? मैं एक बात तो अवश्य कहूगा—यद्यपि आप लोग नाराज हो जायेंगे। परन्तु क्या करू ? वास्तविक बात कहने का स्वभाव पडा हुआ है। वह यह कि आप लोग जहा होशियारी और चतुराई करते हैं, वहा तो पानी मे से फवार भी निकाल लेते है। परन्तु जब बोगे बनते हो, तब फिर पूरे ही वनते हो। यह आरा तो है पाचवा, और बना दिया चौथा। अब वताओ—चौथे आरे के भाव कहा से आयेंगे ? जैसा सहनन है, जैसी शक्ति है और जैसी प्रवृत्ति है, वैसा ही काम चल रहा है। मैंने अपने वचपन मे वृद्ध सतो को देखा है। उनमे कितने ही पचास, साठ और सत्तर वर्ष के दीक्षित थे। परन्तु उनके द्वारा यह सुना कि हमे आज तक सू ठ का घासा भी लेने का काम नही पडा। आप लोगो मे से भी कितने ही पचास, साठ और सत्तर वर्ष के हो गये हैं। वताइये—आज से पहिले आपने कितने साधुओ के आपरेशन होते सुने है ? अरे जिन सन्तो के मल-मूत्र पसीना और पैरो की धूल के लगाने से वडे से वडे रोग दूर हो जाते थे, वे आज कहा है ? परन्तु आज तो ऐसे सन्त दिखाई देते हैं कि विना आपरेशन के उनका रोग ही नही मिटता है ?

और हम लोग अनेक प्रकार की दवाइया काम में ले रहे है। अव हमारे भीतर तप-सयम कितना है, यह तो चौडे मे ही दिख रहा है।

देखो, रगूजी सती को पाच हाथ के लम्वे काले साप ने काट खाया। लोगों ने कहा कि आपकी दवा करावें ? परन्तु उन्होने कह दिया कि हमारे तो तपस्या की दवा है। उसके प्रताप से उनको लहर ही नहीं आई, मरने की तो वात ही दूर रही। हमारे गुरु महाराज केलवाज मे विराज रहे थे। जीतमलजी वोहरा अठपोरिए पौषध मे थे। उस समय एक काला साप निकला और जीतमलजी वोहरा का अगूठा डस लिया। अगूठे के काटे का विप तुरन्त सारे शरीर मे फैलता है। अव दूसरे पौषध वालो ने गडवड की और उनके घर वाले भी आगये। उन्होने कहा—झाडा-झपाटा दिलायेंगे। तव गुरु महाराज ने कहा—इसका व्रत क्यो भग कराते हो ? यदि आयुष्य लम्वा है, तव तो कुछ भी नही बिगडने वाला है। और यदि आयुष्य समाप्त ही हो रहा है, तव फिर कोई वचाने वाला भी नही है। यह सुनकर उन लोगो ने कहा—महाराज, आप क्यों अटकाते हैं ? आप क्या इसे मरने देना चाहते हैं ? भाई, ऐसे समय मे वोलने का ढग नही रहता है। यह वात सुनते ही गुरु महाराज ने कहा—अरे, तुम लोगो को वोलने का भी सोधा नही है। जा, यदि रात मे मर जायगा, तो मैं दूगा। तुम लोग चले जाओ। जब गुरु महाराज ने तेज स्वर मे इतना कहा, तव फिर किसकी हिम्मत थी कि वहा ठहर जावे। फिर उन्होने वोहराजी को सम्वोधित करते हुए कहा—जीतमल, चारो ही खध उठा दे। वस, इतना कहते ही उन्होने चारो ही खध उठा दिये। दूसरे दिन प्रात काल जव सूर्योदय हुआ तो सवने आश्चर्य के साथ देखा कि उनके पैरो मे सूजन का भी नाम नही था। भाई, आस्था जमती है तो ऐसी जमती है कि कुछ पूछिए नही ? यह तपस्या का वल था। कहिये—क्या पहिले तपस्या नही थी ? वे तपस्या करते थे, परन्तु उन लोगो के हृदय निष्कपट थे और परिणाम शुद्ध थे। परन्तु आज कहना कुछ और है और करना कुछ और है। यद्यपि आज तप और सयम वही का वही है। परन्तु आज उसमे घुन लग गया है। तपस्या करने वालो मे जैसे गुण होना चाहिए, वैसे मिलना कठिन हैं। अन्यथा क्या कोई दुखी श्रावक दिखता ?

आजके श्रावक तो जरा से दु ख मे रोना रो देते हैं। परन्तु पहिले के नही रोते थे। वे सोचते थे कि ये तप-सयम मे है तो इन्हे मैला क्यो करें ? और जब कोई श्रावक अधिक ही रोग-ग्रस्त हो जाता था, तब कही वह साधु सन्तो के पैरो के हाथ लगाते थे। तब सन्त पूछते थे कि भाई, क्या बात है ? और उसका दु ख सुनकर सन्त कहते थे कि धर्म पर आस्था रखोगे तो सब शान्ति हो जायगी। जब सन्तो के ऐसे वचन निकल जाते, तब फिर किसी देवी-देवता के सामने जाने की आवश्यकता नही रहती थी। परन्तु अभी तो आप लोग गुरु महाराज के पास है और फिर यहा से उठकर पीर साहब, भेरु, भवानी और बाया साहब के पास भी माल लूटने को चले जाते हैं। इसलिए कुछ भी नही होता है। जब हृदय मे धर्म पर और गुरु पर दृढ श्रद्धा ही नही, तब क्या होगा ? फिर कहते है कि अरे, गुरु महाराज के पास तो कुछ नही है।

हा, तो उन ढढण मुनि के उन लड्डुओ को निर्दोष-रीति से परठा और वही प्रासुक भूमि पर कायोत्सर्ग करते हुए विचारने लगे—'अहो पूर्वोपार्जित-कर्मों का क्षय करना कितना कठिन है। यह प्राणी पहिले मोह मे पडकर दुष्कृत करते हुए यह नही सोचता है कि इन दुष्कर्मों का फल एक न एक दिन मुझे ही भोगना पडेगा इस प्रकार विचार करते हुए उन्होने कर्मों का क्षय करने वाली विशुद्ध परिणामो की क्षपकश्रेणी पर चढना प्रारम्भ किया। शुक्ल-ध्यान प्रकट हुआ और अन्तर्मुहूर्त के भीतर ही चारो घन-घाती कर्मों का क्षय करके अनन्त-ज्ञान और अनन्त-दर्शन के धारक केवली बन गये। तत्काल आकाश देव-दुन्दुभियो के शब्द से गू ज उठा।

भाई, जिन घनघाती कर्मों का क्षय बडी लम्बी तपस्या से भी नही होता, ढढण मुनि ने भूख-प्यास की वेदना को समभावो से सहकर अल्प समय मे ही उनका क्षय कर डाला। तपस्या तभी सफल होती है, जबकि उसे निश्छल और समभाव से किया जावे। जब साधक के हृदय मे यह दृढ विश्वास हो जाता है कि—

**निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो न कोऽपि कस्यापि ददाति किंचन।**
**विचारयन्नेवमनन्यमानसः परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम् ॥**

अपने पूर्व उपार्जित कर्मो के सिवाय कोई दूसरा किसी को कुछ भी सुख या दु ख नही देता है। यह ध्रुवसत्य है। इसको विचारते हुए हे भाई, 'दूसरा कोई सुख या दु ख को देता है, इस भ्रम-वुद्धि को छोड दे।

यदि आप लोगो ने इस अटल-सत्य को हृदय मे धारण कर लिया, तो सदा समाधि वनी रहेगी। ढढण मुनि ने इसी ध्रुवसत्य से समताभावपूर्वक भूख-प्यास की वेदना सही और परमपद को प्राप्त किया। उन्हे भगवान नेमिनाथ के उक्त उपदेश पर दृढ विश्वास था।

भाइयो, आप लोग भी अपने हृदय मे यह दृढ विश्वास धारण कर लेवें कि भगवान की जो अमृतमयी और सदा समाधि देने वाली देशना गुरुमहाराज कहते है, उसी से हमारा उद्धार होगा। जिनका ऐसा दृढ विश्वास होता है उनका वेडा भी जल्दी पार हो जाता है।

पहिले के महापुरुपो मे—साधु-सन्तो मे त्याग का भाव वहुत ऊचा था। वे आत्म-साधना भी करते थे और शरणागत का दु ख-निवारण भी करते थे। मडी के स्थानक मे विराजित-कविवर्य-पडित स्वामिजी महाराज श्रीरामचन्द्रजी महाराज के शरीर मे कोई रोग नही था। परन्तु रामचन्द्रजी स्वामी ने आठ सन्तो को वुलाया। सन्त आये और पूछा—कहिये क्या आज्ञा है ? उन्होने कहा कि मुझे आलोचना करना है। आठ सन्त वैठ गये और उन्होने आलोचना की। अन्त मे उन्होने कहा—आप आठो ही सन्त वहुत वडे हैं। जो भी दड (प्रायश्चित्त) देना चाहे, वह मुझे दे दीजिए। उन आठो ही सन्तो ने कहा—स्वामीजी, आप तो परम निर्मल हो गये। आपने हमारे सामने जैसी आलोचना की है, वैसी आज तक किसी ने नही की। स्वामीजी ने कहा—मैं तो नया साधु हू। तत्पश्चात् उन्होने सथारा कर लिया। उन्हे आठ दिन का सथारा आया। क्यो आया ? क्योकि उनके परिणाम शुद्ध थे।

रामनाथजी स्वामी कपडे के स्थानक मे अकेले रहते थे। वे जरा जीभ के लोलुपी थे। किसी सन्त को पास मे नही रखते थे। जव वाजार मे कपडो की गाँठें आती, तव लोग कहते कि महाराज, वोयनी तो आपके हाथ की करेंगे। वे दो चार हाथ कपड़ा ले आते थे। लोगो के कमाई भी खूब होती थी। ९५

भी लोगो के आग्रह पर लाने मे कसर नही रखते थे। पर उस जमाने मे कोई टटा नही था। फिर भी लोग उनको शिथिलाचारी मानते थे। लोगो की दृष्टि मे ढीले दिखते हुए भी उनके परिणाम बहुत सरल और शुद्ध थे। एक दिन उन्होने लालचन्दजी खीवसरा से कहा—आज तो जलेवी खाने की मनमे आ गई है। उन्होने कहा—पधारिये। कदोई की दुकान पास मे ही थी। ज्यो ही महाराज दुकान के सामने पहुँचे तो कदोई उठकर खडा हुआ। उसने श्रद्धा से जलेबी बहराई और स्वामीजी लेकर स्थान पर आ गये। वे पूरे तीन पाव जलेबी खा गये। और ऊपर से पानी पी लिया। फिर उन्होने कहा—लालचन्दजी, अब तो मुझे सथारा करा दो। तब उन्होने कहा—महाराज, पाव-दो पाव और ले आता हू। परन्तु अभी सथारे का नाम क्यो लेते है? उन्होने कहा—नही, मुझे तो सथारा करा दो। लालचन्दजी ने बहुत समझाया, परन्तु वे नही माने। वहा और भी सन्त विराजते थे, अत लालचन्दजी उन्हे लिवा लाये। स्वामीजी ने उन सन्तो से कहा—मुझे सथारा कराओ। उन्होने भी बहुत कुछ समझाया। परन्तु वे नही माने। अन्त मे सथारा पचखा दिया। उनके सेतीस दिन का सथारा आया। इस प्रकार उन्होने धन्य-धन्य होकर काल किया। उनमे मायाचारीपना नही था। वे किसी भी बात को छिपाते नही थे। परन्तु आज हम लोगो के लक्खन कैसे है कि दिखाते हैं—अच्छा माल और चेला-चेली वना रहे है। पुराने सत तपस्या के धनी थे और हृदय मे मैल नही रखते थे। परन्तु भाई, आज तुम्हारे प्रपचो मे फसकर यह दोष लगाना पडता है। आज छोटे गावो मे रहने पर सयम जितना ठीक पलता है, वैसा शहर मे रहने पर नही पलता है। दिसावर से लोग आते है और कहते हैं—महाराज, उधर पधारो। कितने ही तो रोने भी लगते है। परन्तु मैं कहता हू कि क्यो मारवाड छुडाते हो। यदि मारवाड छूटा तो सयम रूपी रुपये के बारह आने और आठ आने हो जायेगे। वस, यही अच्छा है कि तुम वहा रहो और मै यही रहू। मेरी तो इस मारवाड को छोडकर बाहिर कही जाने की इच्छा ही नही होती है। क्योकि यहा पर आहार-पानी शुद्ध मिलता है। इसलिए इतने वर्षों के बूढे हाडो को वहा जाकर डालू भी, तो भी हाथ मे आना-जाना कुछ भी नही है।

## ८ संयम-साधना

भगवान की वाणी मे अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम वचनरूपी मणि-रत्न भरे हुए है। यदि किसी को जीवन मे एक-आध मणि भी मिल जाय तो उस गृहस्थ का सारा कारोबार सफल हो जाता है। फिर जिसे अनेक मणिया मिल जाये, तब तो उसका कहना ही क्या है? मणि तो सासारिक कार्यो का साधक भौतिक या पौद्गलिक पदार्थ है। उससे प्रभु की वचनावलि को मणियो की उपमा दी जा रही है। परन्तु भाई, कहा तो ये जडमणि और कहा भगवान के वचनरूप चेतनमणि? दोनो मे कितना महान् अन्तर है? जितना कि जग प्रकाशक सूर्य और टिमटिमाते दीपक के प्रकाश मे है? जो पौद्गलिक-मणि है, वह तो इहलौकिक आवश्यकताओ की पूर्ति करता है, किन्तु प्रभु के वचन भव-भव की अनन्त तृष्णाओ को शान्त करते है।

### धर्म के लक्षण

भगवान ने धर्म के दस लक्षण कहे हैं। यथा—

**'खंती, (मुत्ती), अज्जवे, मद्दवे, (लाघवे), सच्चे, सउच्चे, संजमे, तवे, चाए, आंकिचणे, बभचेरे य।'**

क्षमा (मैत्री) आर्जव, (लाघव) मार्दव, सत्य, शौच, सयम, तप, त्याग, आकिचन्य और ब्रह्मचर्य। ये धर्म के दस अग है। बस, इसी को **'धम्म दहल-**

वखणिय' कहा गया है, अर्थात् धर्म दस लक्षणवाला है। यदि हम इन दस अगो को छोड दे, तो फिर धर्म नाम की कोई वस्तु नही रह जाती है। इन दस धर्मो के सिवाय फिर ससार से पार होने का कोई भी मार्ग नही है। इन दसो अगो मे धर्म का सर्वस्व निहित है। इनके भेद-प्रभेद आप लाखो कर सकते हैं, किन्तु मूल अग ये ही हैं।

जैसे लोग व्यापार करते है तो व्यापार को करने वाला व्यापारी तो सामान्य से एक ही है। परन्तु व्यापार भिन्न-भिन्न जाति के होते है—कोई कपडे का, कोई किराने का, कोई सोने-चादी का और कोई जवाहिरात का व्यापार करता है। इन सभी व्यापारो का उद्देश्य धन का उपार्जन करना एक ही है। इसी प्रकार धर्म के जो दस लक्षण वतलाये गये है, उन सवका उद्देश्य एक ही है कि कर्मो का नाश करके अपने शुद्ध आत्मस्वरूप शिवपद को प्राप्त करना है।

धर्म के उपर्युक्त दस अगो मे से अनेक अगो पर आपके सामने पहिले प्रकाश डाला जा चुका है। आज 'सयम' पर कुछ प्रकाश डाला जाता है। भगवान ने सयम का लक्षण इस प्रकार कहा है—

**वदसमिदि कसायाण दडाण सहिंदियाण पचण्ह।**
**धारण पालणणिग्गहचागजओ सजमो भणिओ॥**

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और परिग्रह इन पचव्रतो को धारण करना, ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षेपण और प्रतिष्ठापना इन पच समितियो का पालन करना, क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायो का निग्रह करना, मन, वचन और काय इन तीन दडयोगो का त्याग करना और पाचो इन्द्रियो का जीतना—इन सबको सयम कहा गया है।

### सयम का स्वरूप

सयम शब्द का अर्थ है मर्यादा, कानून, प्रतिज्ञा आदि के द्वारा आत्मा के विकारी भावो का नियत्रण करना। ऊपर जो सयम का लक्षण कहा गया है, उसके एक देश धारण करने को देश-सयम कहते हैं। इसके धारक श्रावक

अनुमोदना ही कर दी। अत इस स्थूल-हिसा का त्याग करते समय मनुष्य को अपनी सब आगे-पीछे को परिस्थिति का विचार करके ही व्रत स्वीकार करना चाहिए। मोटे रूप मे गृहस्थ सकल्पी त्रसहिसा का त्यागी होता है। किन्तु उद्योगी, विरोधी और आरम्भी त्रस-हिसा का त्यागी नही होता। व्यापार आदि मे होने वाली हिंसा को उद्योगी हिंसा कहते हैं। शत्रु आदि के आक्रमण करने पर अपनी रक्षा के लिए होने वाली हिसा को विरोधी हिसा कहते है। रसोई वनाने, मकान वनवाने आदि कार्यों मे होने वाली हिंमा को आरम्भी हिसा कहते हैं। इन तीनो ही प्रकार की हिंसाओ को विवश होकर करते हुए भी व्रती श्रावक अधिक से अविक सावधानी रखता है और यत्नाचार से कार्य करता है।

**श्रावक जीवन मे सयम की मर्यादा**

यह अहिसाणु व्रत यद्यपि श्रावक को जीवन भर के लिये ही धारण करना चाहिए। परन्तु जिनके परिस्थिति वश वैमा त्याग सभव न हो, उनको भी सामायिक आदि के काल मे मुहूर्त-दो मुहूर्त के लिए सर्व-मावद्ययोग के त्याग का विधान भगवान ने किया है। उस समय भी कृत, कारित और अनुमोदना अथवा केवल कृत और कारित इन दो ही भगो से त्याग कर अल्पकाल के लिए देश व्रत का पालन कर सकते हैं। सामायिक करते समय भी परिस्थिति-वश आरम्भ-समारम्भ का विकल्प आ जाने से हर्ष-विपाद रूप मे अनुमोदना का पाप लग ही जाता है। जैसे आप सामायिक का नियम लेकर वैठे। उस समय सूचना मिली कि आपके वगीचे को या हवेली को सरकार ने किसी कारण से जप्त कर ली है। अथवा कोई मुकद्दमा चल रहा था। उसकी सूचना मिली कि आपके हक मे फैसला हो गया है। अव वगीचा या हवेली के जाने से मन मे विपाद होता है या नही? अथवा मुकद्दमे का फैसला अपने हक मे होने से खुशी होती है या नही? दोनो ही होते हैं। क्योकि अभी आप वीतराग नही हुए हैं। इसी प्रकार वम्वई से तार आया कि दुकान मे पचास हजार का नफा हुआ है, यह जानकर खुशी होती है। यदि तार आया कि पचास हजार का नुकसान हो गया है, तो जानकर दु ख होता है। भाई, सामायिक मे वैठे रहने पर भी हर्ष-विपाद के ये भाव आये विना नही रहते है। इसी प्रकार

सामायिक के समय समाचार मिला कि आपका पोता मकान की ऊपर मंजिली से गिर पड़ा है और उसे संगीन चोट आई है, तो सुनकर दिल मे दर्द होता ही है। इन सब कारणो से भगवान ने व्रत नियम को लेते समय 'तिविहेण, दुविहेण' आदि कहकर श्रावक को खुला रखा कि जिसकी जैसी परिस्थिति हो, वह उसी प्रकार का नियम ग्रहण करे।

**सत्य की मर्यादा**

श्रावक को जिस प्रकार हिंसा पापके त्याग का उपदेश दिया गया है, उसी प्रकार झूठ पाप के लिए भी त्याग का विधान किया है। इस दूसरे व्रत के लिए भी कहा है कि—

**स्थूलमलीकं न वदति न परान् वादयति सत्यमपि विपदि ।**
**यत्तद्वदन्ति सन्तः स्थूलमृषावाद - वैरमणम् ॥**

जो स्थूल झूठ न तो स्वय बोलता है और न दूसरे से ही बुलवाता है, उसे स्थूल मृषावादविरमण कहते है। जिस बात को कहने से लोक व्यवहार मे मनुष्य झूठा कहलाता है और जिसके बोलने से बाजार मे मनुष्य की साख उड जाती है, ऐसी झूठ को बोलने का त्याग श्रावक को अवश्य करना चाहिए। यह मोटी झूठ अनेक प्रकार की होती है। यथा—

**'कन्नालिय गोवालिय भोमालियं थापणमोसो कूडसाख'।**

अर्थात् किसी की निर्दोष कन्या को दोष लगाकर अपने साथ विवाह करने का उपक्रम करना, किसी दूसरे की भूमि को, और गाय-भैंस आदि पशुओं के लिये, अपनी भूमि से संबद्ध होने से उसके कुछ भाग को अपनी बतलाना, दूसरे की धरोहर का निषेध करना, कूट साक्षी भरना, नकली दस्तावेज बना कर उन्हे सच्ची बतलाना आदि स्थूल झूठ कहलाते है। इनके बोलने से लोक मे प्रतिष्ठा गिरती है और राज्य-सरकार भी दंडित करती है। इसलिए ऐसी मोटी झूठ बोलने का त्याग करना स्थूल-मृषावादविरमण नाम का दूसरा अणुव्रत है। गृहस्थ के द्वारा देन-लेन मे या हंसी-मजाक मे जो कोई झूठ वचन निकल जाता है, उसका त्याग श्रावक के संभव नहीं है। हा, ऊंची दशा मे वह इस

प्रकार की झूठ को भी छोडने का उपक्रम करना है। परन्तु [illegible] का प्रारम्भिक दशा मे गृहस्थ ऐसी झूठ से नहीं बच सकता है।

यदि कोई आपसे अभी पूछले कि आपके इस वर्ष कितनी कमाई हुई है ? तो क्या आप दूसरे को सही रूप मे बतलाते हैं ? और [illegible] भी सही कमाई नहीं बतलाते हो, तब दूसरे को क्या बतलाओगे ? [illegible] पर उसे इधर-उधर टाल दोगे, परन्तु सच्ची बात [illegible]। [illegible] भगवान् ने गृहस्थ श्रावक की कमजोरी को देखकर [illegible] स्थूल झूठ बोलने का ही त्याग कराया है। [illegible] बात और भी बडे मार्के की कही है कि यदि तुम्हारे [illegible] किसी के प्राण बचते हो, उसकी बड़ी भारी [illegible] हो, तो [illegible] गृहस्थ को सर्वथा सत्य भी नहीं कहना चाहिए। अर्थात् दूसरे के [illegible] के लिए, छोटी सी झूठ बोली जा सकती है। जैसे आप कहीं जगल मे जा रहे है। [illegible] से एक हरिण भागता हुआ आपके सामने से निकल गया। उसका पीछा करता हुआ कोई शिकारी आया और उसने पूछा—क्या इधर से कोई हिरण निकला है ? अब यदि आप सत्य बोलते हैं, तो उस हरिण के प्राण जाते हैं। उस अवसर पर यदि आप ने कह दिया कि इधर से हिरन नहीं निकला। तो [illegible] सी झूठ बोलने से उसके प्राण बच गये। अत: ऐसे अवसर पर गृहस्थ झूठ बोल सकता है। हा, महाव्रती साधु ऐसे अवसर पर मौन रहेगा।

इसी प्रकार भगवान ने अप्रिय कटुक शब्द बोलने की भी मनाई की है। भगवान ने कहा है—

तहेव फरुसा भासा गुरुभूओवघाइणी।<br>
सच्चा वि सा न वत्तव्वा जओ पावस्स आगमो ॥<br>
तहेव काणं काणेत्ति पंडगं पंडगेत्ति वा।<br>
वाहियं वावि रोगि त्ति तेण चोरे त्ति नो वए ॥<br>
तहेव होले गोले त्ति साणे वा वसुले त्ति य।<br>
दमए दुहए वावि नेवं भासिज्ज पन्नवं ॥

जो वचन कर्कश हो, दूसरे के मर्म को भेदन करने वाले हो, जीवघात करने वाले हो ऐसे सत्य वचन भी नही बोलना चाहिए। क्योकि इससे प्रथम तो दूसरे को कष्ट पहुचता है और दूसरे वैसे कठोर वचन बोलते समय अपने परिणाम भी सक्लेश रूप होते हैं, इसलिए पाप का ही आश्रव होता है। भगवान तो कहते है कि काने पुरुष को काना भी मत कहो, नपु सक को नपुंसक भी मत कहो, व्याधियुक्त व्यक्ति को रोगी कहकर मत पुकारो, चोर को भी चोर कहकर सबोधित मत करो। इसी प्रकार किसी को होला, गोला, लुच्चा, व्यभिचारी आदि नाम से भी ज्ञानी पुरुष को नही बोलना चाहिए। अभिप्राय यही है कि हमे सदा हित, मित और प्रिय वचन बोलना चाहिए। कर्कश, मर्मच्छेदक और अप्रिय वचन भी नही कहना चाहिए। भले ही वे सत्य क्यो न हो।

### वाणी का संयम

यदि मनुष्य अपने वचनो पर सयम रख लेवे, जबान को कन्ट्रोल मे रखे और हित, मित, प्रिय वचन बोले तो वह सभी जीवो का प्रिय बन जाता है। मनुष्य की तो बात ही क्या है, पशु-पक्षियो और क्रूर हिंसक जानवरो पर भी मृदु एव सत्य भाषी मनुष्य के वचनो का प्रभाव पडता है।

जयपुर-नरेश महाराज रामसिह जी के समय वहा के दीवान अमर चन्द जी थे। वे कट्टर जैन थे। इस कारण अनेक अजैन अधिकारी भीतर ही भीतर उन से द्वेष भाव रखते थे। और उनको अपमानित करने और दीवानगिरी से हटाने के लिए सतत प्रयत्न करते रहते थे। एक बार उन्होने महाराज से कहा—दीवान अमरचन्द तो जैन है। वे चीटी तक को मारने मे पाप समझते हैं। यदि कही युद्ध का अवसर आजाय, तो वे क्या युद्ध मे शत्रुओ का सहार करेगे? नही करेगे। यदि आपको विश्वास न हो तो आप उन्हे अपने साथ शिकार मे लिवाले जाकर देख लीजिए। महाराज को बात जच गई और एक दिन उन्होने अमरचन्द जी से कहा—दीवानजी, कल तैयार होकरके हमारे साथ शिकार को चलना है। उन्होने कहा—अच्छा अन्नदाता चलेगे। दूसरे दिन महाराज के साथ वे भी शिकार के लिए जगल मे गये। जगल मे घुसने पर हिरणो का

एक झुड दौड़ता हुआ सामने से निकला। उनको देखते ही महाराज ने अपना घोडा उनके पीछे दौडाया। यह देखते ही अमरचन्दजी ने जोर से आवाज लगाई—हरिणो। कहा भागते हो !! खडे रहो !!! यह आवाज सुनते ही वे सबके सब हिरण खड़े हो गये। यह देखकर आश्चर्य-चकित होते हुए महाराज ने पूछा—दीवानजी, तुमने यह क्या जादू कर दिया है। दीवानजी ने कहा—महाराज, मैंने हिरणो से यह कहा है कि यदि कोई दूसरा मारे, तो वह अपनी रक्षा के लिए राजा की शरण मे जाता है। और जब राजा ही मारने के लिए उतारू हो जाय, तब किस की शरण मे जाया जावे ? इसलिए मैंने हिरणो से कहा है कि भागकर कहा जाते हो। जब महाराज तुम्हे मारने के लिए उतारू हैं, तब तुम्हारी जीवन-रक्षा असभव है, इसलिए क्यो व्यर्थ दौडते हो। खडे रहो। दीवानजी के ऐसे न्याय पूर्ण मधुर वचन सुनकर महाराज शिकार का सकल्प छोडकर वापिस लौट आये। भाई, जिनके सत्य व्रत का नियम होता है और जो मधुर भाषी होते हैं, उनके वचनो का ऐसा ही प्रभाव होता हैं।

कुछ दिनो के पश्चात् उनके शत्रुओ ने पुन आपस मे षड्यन्त्र के लिए मत्रणा की कि हरिण तो भोले भाले घास-भक्षक थे, अत वे दीवानजी के वचन सुनकर खडे रह गये और महाराज ने उनका प्रभाव जानकर शिकार करना छोड दिया। परन्तु शेर तो खू खार क्रूर प्राणी है और मास-भक्षी है। अत चिडियाघर मे जो शेर पिंजडे मे बन्द है, उसे खुराक देने का काम दीवान अमरचन्द को सौंपा जावे। तब पता चले कि वे कितने सत्यवादी एव प्रभावक जैन हैं। उन लोगो ने ऐसी मत्रणा करके महाराज के पुन कान भरना शुरु किये। भाई, आप लोग तो जानते ही हैं कि राजा लोग और ये बडे आदमी कानो के कच्चे होते हैं। अत एक दिन महाराज ने दीवानजी से कहा कि आज शेर को भोजन देने के लिए आपको जाना पडेगा ? उन्होने कहा—अच्छा अन्नदाता, जाऊ गा। अब वे अपने नित्य नियम से निवृत्त होकर एक बडे थाल मे उत्तमोत्तम मिठाइया और दाल, भात, रोटी आदि रखकर चिडियाघर पहुचे और शेर के पिंजडे का द्वार खुलवाकर उसे सबोधित करते हुए बोले—हे वनराज, मैं राजाओ के खाने योग्य उत्तमोत्तम भोजन-सामग्री आपके खाने

लिए आया हू, सो इसे स्वीकार करो। और यदि मास खाने की ही इच्छा हो तो मैं आपके सामने खडा हूं, सहर्ष मुझे स्वीकार करो। कहते है कि वह शेर पिंजडे मे से निकला, उसने थाल की भोजन-सामग्री को सू घा और दीवान साहब की ओर-जो उस समय कायोत्सर्ग मुद्रा मे प्रभु का नाम जपते हुए नासाग्र दृष्टि रखे खडे थे, देखता हुआ वापिस पिंजडे मे चला गया। इस समय यह तमासा देखने के लिए जो सैकडो लोग वहा खडे थे—उन्होने यह चमत्कार देखकर दीवान साहब के जय-जयकार से आकाश को गु जा दिया। भाइयो, सत्यव्रती और मृदुभाषी के मनुष्य के वचन-सिद्धि हो जाती है। वे जिससे जैसा भी कह देवे, वह कार्य वैसा ही हो जायगा। वचन सिद्धि वालो के अनेक उदाहरण शास्त्रो मे उपलब्ध है। ऋषियो को जो शाप और अनुग्रह की शक्ति प्राप्त होती है, वह भी वचन सिद्धि का ही प्रभाव है। इसलिए हमे सदा ही अपने वचनो पर सयम रखना चाहिए। यदि यह एक भी व्रत आपने शुद्ध हृदय मे पाल लिया तो ससार से बेडा पार होने मे देर नही लगेगी।

### अचौर्य-व्रत

श्रावक का तीसरा व्रत है अचौर्याणुव्रत। विना दिये किसी की वस्तु के लेने को चोरी कहते है। स्थूल चोरी के त्याग करने को अचौर्याणुव्रत कहते है। शास्त्रकारो ने कहा है—

निहितं वा पतित वा सुविस्मृत वा परस्वमविसृष्टम्।
न हरति यन्न च दत्ते तदकृश चौर्यादुपारमणम्॥

रखी हुई, गिरी हुई, भूली हुई और विना दी हुई वस्तु को जो न तो स्वय लेता है और न उठाकर दूसरे को देता है। उसे स्थूल चोरी का त्याग कहते हैं।

भाई, धन यह मनुष्यो का ग्यारहवा बाह्य प्राण है। जिसका धन चुराया जाता है, उसे कितना दुख होता है, यह वही जानता है। इसी कारण भगवान ने पराये धन को लेने मे पाप बताया है। जैसा कि कहा है—

अर्थानाम यदेते सन्ति प्राणा वहिश्चराः पुसाम्।
हरति स तस्य प्राणान् यो यस्य जनो हरत्यर्थान्॥

यह धन मनुष्यो का बाहिरी प्राण है। जो मनुष्य दूसरे के धन को हरता है, वह उसके प्राणो को ही हरता है।

चोरी का त्याग भी कृत कारित और अनुमोदना से करना आवश्यक है। कितने ही लोग स्वय तो चोरी नही करते हैं। परन्तु चोरी से लाये हुए माल को लेते हैं। परन्तु इसमे लेने वाले को कारित और अनुमोदना का दोष लगता है। इसलिए यदि शका भी हो जाय कि यह चोरी का माल है, तो उसे नही लेना चाहिए। भगवान ने तो यहा तक कहा है कि यदि अपनी भी वस्तु मे शका हो जाय कि यह अपनी है या नही ? तो उसे लेने मे भी चोरी का पाप लगता है। यथा—

**स्वमपि स्व ममस्याद्वा नवेति द्वापरास्पदम् ।**
**यदा तदाऽऽदीयमान व्रतभङ्गाय जायते ॥**

यदि कदाचित् अपनी वस्तु मे भी सन्देह हो जाय कि यह वस्तु मेरी है, अथवा अन्य की है ? ऐसी सशयापन्न दशा मे यदि वह पुरुष उसे ग्रहण करता है तो उसका अचौर्याणुव्रत भग हो जाता है।

भगवान ने हीन—अधिक नापने-तोलने को भी चोरी मे कहा है। इसी प्रकार बहुमूल्य वस्तु मे अल्प मूल्य की वस्तु को मिलाकर बेचना, सरकारी टैक्स की चोरी करना, राज्य के प्रतिबन्धी कानून को तोडकर माल को इधर से उधर ले जाना या ले आना आदि कार्य भी अचौर्याणुव्रती को नही करना चाहिए। अपने भाई आदि के हिस्से को नही देना, अथवा कम देना, गिरवी रखे हुए माल को हडप जाना, धर्मादा का पैसा धर्म-कार्य मे नही लगाना आदि कार्य भी चोरी के ही अन्तर्गत आते हैं। आज जो काला-बाजारी चल रही है, यह सब चोरी ही है। श्रावक को इन सब चोरी कार्यों से बचना चाहिए।

### ब्रह्मचर्य साधना

श्रावक का चौथा व्रत स्वदार-सन्तोष है। अपनी विवाहिता स्त्री के सिवाय अन्य सब स्त्रियो को माता-बहिन के समान समझ कर पर-स्त्री सेवन का त्याग करना और अपनी स्त्री मे सन्तुष्ट रहना ब्रह्मचर्याणुव्रत कहलाता है। इस व्रत का धारक पुरुष न व्यभिचारिणी स्त्रियो के पास जाता है और न वेश्या

ही करता है। यहा तक कि वह वेश्या का नृत्य भी नही देखता है। वह अप्राकृतिक मैथुन का भी त्यागी होता है। जो पुरुष पर-स्त्री का और स्त्री पर-पुरुष का मन वचन काम से त्याग करता है। उसका अद्भुत प्रभाव शास्त्रो मे वतलाया गया है। देखो—सुदर्शन सेठ के इसी व्रत के प्रभाव से शूली का सिंहासन हो गया और सीता के शील के प्रताप से अग्निकुण्ड सरोवर रूप से परिणत हो गया। अत गृहस्थ स्त्री और पुरुष दोनो को ही इस ब्रह्मचर्याणुव्रत को धारण करना चाहिए। जैसा कि कहा है—

**नतु परदारान् गच्छति, न परान् गमयति च पापभीतेर्यत् ।**
**सा परदारनिवृत्तिः स्वदार - सन्तोष नामापि ॥**

जो पर स्त्रियो के पास पाप के भयसे न स्वय जाता है और न दूसरो को भेजता है, उसे परदारनिवृत्ति या स्वदार-सन्तोष नामक अणुव्रत कहते है। इसी का नाम ब्रह्मचर्याणुव्रत है। स्त्रियो के इस व्रत का नाम स्वपति सन्तोष, पातिव्रत्य या शीलव्रत है। गृहस्थ स्त्री और पुरुप को इस व्रत का पालन करना देश सयम है।

### परिग्रह की मर्यादा

पाचवा परिग्रह परिमाण नाम का अणुव्रत है। इसका स्वरूप इस प्रकार से कहा गया है—

**धन-धान्यादि ग्रन्थ परिमाय ततोऽधिकेसु निःस्पृहता ।**
**परिमित परिग्रहः स्यादिच्छापरिमाण नामापि ॥**

धन, धान्य, क्षेत्र, वस्तु, सोना, चादी, दासी, दास, वस्त्र और वर्तन आदि जितना भी चेतन और अचेतन परिग्रह है, उनका अपनी आवश्यकता और परिस्थिति के अनुमार परिमाण करके उससे अधिक मे नि स्पृहभाव रखना परिग्रह परिमाण-नामका अणुव्रत है। इसी का दूसरा नाम इच्छा परिमाणव्रत है।

### इच्छाओ का संयम

आज मनुष्यो को शान्ति क्यो नही है ? इसका उत्तर यही है कि प्रत्येक मनुष्य की इच्छाए वहुत अधिक वढी हुई है। हर-एक मनुष्य चाहता है कि मैं

लखपति और करोड पति बन जाऊ ? यदि वह कदाचित् भाग्यवश बन भी जावे, तो भी उसकी इच्छाए शान्त नही होगी और वह अरबपति और खरब पति बनने के स्वप्न देखने लगेगा। भगवान ने कहा है—

'इच्छा हु आगाससमा अणतिया' अर्थात् मनुष्य की इच्छा आकाश के समान अनन्त होती हैं। जैसे आकाश का कही आदि और अन्त नही हैं, उसी प्रकार प्राणियो की इच्छाओ का—आशा-तृष्णा का कही भी कोई ओर-छोर नही है। इस आशा-तृष्णा के ही कारण मनुष्य सदा दुखी बना रहता है। यदि मनुष्य अपनी इन इच्छाओ को सीमित कर लेवे, तो तुरन्त ही सुख-शान्ति का अनुभव करने लग जावे। सर्व परिग्रह के त्यागी साधु को जो सुख प्राप्त होता है, वह नवनिधि के स्वामी चक्रवर्ती को भी नही प्राप्त होता है। जैसा कि कहा है—

**सव्वग्गथ विमुक्को सीदीभूदो पसण्णचित्तो य।**
**जं पावइ पीइसुखं ण चक्कवट्टी वि तं लहदि॥**

सर्व प्रकार के परिग्रह से मुक्त होने पर शान्त एव प्रसन्न चित्त साधु जिस निराकुलता-जनित अनुपम आनन्द को प्राप्त करता है, वह सुख अतुल वैभव के धारक चक्रवर्ती को नही मिल सकता है।

भाई सकल सयमी साधु तो ऐसे अनुपम आनन्द का उपभोग करता है। परन्तु तुम लोग भी यदि अपने परिग्रह का परिमाण कर लो, तो आकुलता-रहित परम सन्तोष रूप सुख को प्राप्त करोगे।

इस प्रकार जो पाच अणुव्रतो को धारण करते हैं, उन्हे देश-सयम का धारक अणुव्रती श्रावक कहा जाता है। जो गृहस्थ इम देश-सयम को भी धारण करता है, वह इस लोक मे भी सुख पाता है और परलोक मे भी स्वर्गादि के सुख को प्राप्त करता है।

जो हिंसादि पाचो पापो का यावज्जीवन के लिए मन, वचन और काय से, तथा कृत, कारित और अनुमोदना से त्याग करते हैं, उनके व्रतो को महा-व्रत कहते है। महाव्रतधारी साधु को सर्वव्रती, महाव्रती और सकलसयमी कहते है। भगवान ने सकल सयम के मूल मे दो भेद हैं—प्राणिसयम और इन्द्रिय-

सयम । पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय, इन छह काया के जीवो की रक्षा करना प्राणिसयम है और पाचो इन्द्रियो के विपयो का त्याग करना अर्थात् अपनी इन्द्रियो पर नियत्रण रखना इन्द्रिय सयय होता है । इन दोनो भेदो के विस्तार से शास्त्रो मे सत्रह प्रकार के सयम वतलाये गये है ।

**साधु-जीवन मे सयम का स्वरूप**

साधु पृथ्वीकाय का पूर्ण सयम पालता है । वह न कभी पृथ्वी को खोदता है, दूसरे से खुदवाता है और न खोदनेवाले की अनुमोदना ही करता है । इसी प्रकार जलकाय और अग्निकाय का भी वह किसी प्रकार का आरम्भ-समारम्भ ही करता है, न कराता है और न अनुमोदना ही करता है । वायुकाय की भी विराधना का त्यागी होता है, क्योकि उसने महाव्रतो को स्वीकारते समय उसके भी त्रियोग-त्रिकरण से विराधना का त्याग किया है ।

अभी एक भाई आये । वे कहने लगे कि हम एक गाव मे गये तो वहा देखा कि हर एक मुनिराज के अलग-अलग पखे लगे हुये है । तब मैंने कहा कि जो सयम पालता है, उसको तो पखे की कोई आवश्यकता नही है । हा, जो सयम को नही पालता है, वह एक नही, चार पखे लगा लेवे तो उसे कौन मना करता है । परन्तु पखे की हवा खानेवाले साधुओ से पूछो कि वायुकाय का सयम किसे कहते है ? वायुकाय के सयम का अर्थ है कि वायुकाय के जीवो की हिंसा नही करना । भाई, जव पखा चलेगा, तब वहा क्या वायुकाय के जीवो की विराधना नही होगी ? अवश्य होगी । परन्तु पखे की हवा खानेवाले अपने दोप को छिपाने के लिए कहते हैं कि गृहस्थ का मकान है और पखे को गृहस्थ चलाते है । भाई, उनसे पूछो कि जहा तुम रहते हो, वहा गृहस्थ का क्या काम है ? वहा तो सतो का काम है । इसी प्रकार आज कितने ही साधु लाउडस्पीकर पर वोलने लगे है । वे कहते है कि उमे तो गृहस्थ रख देते हैं, हम थोडे ही रखते है । अरे भाई, मैं पूछता हू कि यदि आप नही वोलेंगे तो फिर क्या वे लगायेंगे ? इस प्रकार जव वे ऐसी वातें कहते हैं, तव तो फिर किसी वात की मर्यादा नही रहेगी । वताओ—ये कुए-तालाव किसके लिए खोदे गये है ? गृहस्थो के लिए, या साधुओ के लिए ?

यदि आप कहे कि गृहस्थो के लिए हैं, हमारे लिए नही है। तब फिर तालाब मे से, नलो मे से पानी ले लो, क्या हानि है? चूल्हे और भट्टिया—जहा भोजन बनता है, वे किसलिए हैं? वे भी गृहस्थो के लिए हैं। फिर क्या है? चले जाओ कही भी और जलते हुए चूल्हे पर रोटी बनाकर ले आओ। यदि ऐसा हो जाय, तब फिर गृहस्थ ने जो वस्तु बनाई हैं, उसकी याचना करके लाने की साधु को क्या आवश्यकता रह जायगी? भगवान ने चौदह प्रकार के दान बतलाये हैं—अशन-पान, खादिम, स्वादिम आदि। भोजन आपके लिए बना है, हमारे लिए नही बना है। कोई साधु आपके घर पर आया, और दस-बीस रोटिया लेकर चला गया। गृहस्थ के यहाँ क्या कमी है? परन्तु दान किसे कहते हैं, यह तो विचारना चाहिए? जो दिया जाय, उसे दान कहते हैं। धोवन से माटा भरा है और रोटी-दाल से दूसरे भाजन भरे रखे हैं, तो क्या साधु बिना दिये ही उन्हे ले जायगा? नही लायगा? जब घर मालिक देगा, तभी लायगा। अन्यथा नही। दान नाम तो दिया हुआ लाने का है। इसलिए साधु को सब बातो का विचार करके ही प्रवृत्ति करनी चाहिए। आज पखा और लाउडस्पीकर के लिए गृहस्थ की आड लेकर उसका उपयोग करते हो, तो कल उन्ही की आड लेकर क्या और भी सयम की विराधना करने लग जाओगे? वनस्पतिकाय का भी सयम पालन करने के लिए ही साधु सर्व प्रकार की सचित्त वस्तु के त्यागी होते हैं।

### अजीव-सयम

भगवान ने सत्रह प्रकार के सयम मे एक अजीव-सयम को भी कहा है। अब आप पूछे कि अजीव तो जड वस्तु का नाम है? उसका सयम कैसा? परन्तु भाई, उसका भी सयम है। जैसे आपकी दुकान मे कपडो के थान आते हैं—धोती जोडे आते हैं और उनके ऊपर हाथी-घोडे, पशु-पक्षी और मनुष्यो की छापें लगी रहती है। श्रावक कपडे को फाडते हुए ध्यान रखता है कि कही वह छाप (तस्वीर) न फट जाय। आप ताश खेलते है। उनमे राजा, रानी, गुलाम, चिडिया आदि के पत्ते होते हैं। अब खेलते हुए अज्ञानी जीव कहते है कि राजा को मारो, चिड़िया मारो, आदि। बताओ—वहा किसको मारा?

क्या वहा पर राजा, गुलाम आदि है ? नही हैं। परन्तु मारो मारो कहने से मारने की क्रिया का पाप लगा, या नही ? लगा। यही अजीव का असयम है और ऐसे समय वैसे शब्द नही बोलना और चित्र आदि को नही फाडना ही अजीव सयम है। मार्ग मे चलते समय पत्थर आदि की ठोकर लग जाने पर उसे गाली आदि देना भी अजीव का असयम है। ऊपर से लकडी-पत्थर आदि गिरने से चोट लग जाने पर उसे फेकते है और गाली देते हैं, तो यह भी अजीव का असयम है। अजीव सयम का मतलब है कि अजीव पर भी गुस्सा नही करना, उसे गाली नही देना और उसकी किसी भी प्रकार की विराधना नही करना।

जो साधु सत्रह प्रकार के सयम मे अहर्निश सावधानी पूर्वक दृढ रहते है, उनको उस सयम की रक्षा के लिए पाच समितियो का भी पालन करना पडता है। पहिली ईर्या समिति है। इसका अर्थ है कि सूर्य का जब प्रकाश सर्वत्र भली भाति फैल गया हो, मार्ग लोगो के गमनागमन से अचित हो गया हो, तब साधु नासाग्र दृष्टि रखकर चार हाथ भूमि को नेत्रो से भली-भाति देखता-शोधता हुआ चले। यदि भूमि पर गोबर, भूसा का ढेर, घास आदि पडा हो, तो उसके ऊपर पैर रखता हुआ नही चले। क्योकि वहा पर पैर रखने से त्रस जीवो की हिंसा की सम्भावना रहती है। यह समिति प्रधान तथा अहिंसा व्रत की रक्षा के लिए ही कही गई है। रात्रि मे गमनागमन का निषेध भी इसीलिए किया गया है, कि अन्धकार मे जीव दिखाई नही देते है। साधु को रात्रि मे मल-मूत्रादि की बाधा के समय ही ओघे से भूमि को प्रमार्जन करते हुए अति सीमित स्थानक मे ही गमनागमन करना कल्पता है, अन्यथा नही।

### वाणी-विवेक

दूसरी भाषा समिति है। यह सत्य महाव्रत की रक्षा के लिए पालन की जाती है। यद्यपि साधु ने सत्य महाव्रत को स्वीकार करते हुए सर्व प्रकार के असत्य भाषण का परित्याग कर दिया है, तथापि उसे कर्कश, मर्मच्छेदक, पराभिप्राय-भेदक सत्य भी कहने की मनाई की गई है। साधु को अपने सत्य-महाव्रत की रक्षा करने के लिए कहा गया है कि—

'हित ब्रूयात्, मित ब्रूयात्, मा ब्रूयात्सत्यमप्रियम् ।'

अर्थात् साधु पर-हितकारी वचन भी परिमित ही बोले । किन्तु अप्रिय सत्य वचन भी नही बोले ।

कितने ही ऐसे प्रसग आते हैं, जहा पर सत्य बात का कहना भी साधु को नही कल्पता है, किन्तु मौन ही धारन करना पडता है। उस समय उसे वचन गुप्ति रखना ही श्रेयस्कर होता है। जैसे किसी साधु की मौजूदगी मे किसी चोर ने आकर उपाश्रय की किसी वन्द अलमारी का ताला तोडकर चोरी की । अब चोर पकडा गया । अदालत ने प्रत्यक्षदर्शी साक्षी मागी । चोर कहता है कि वहा पर अमुक सन्त विराजे थे। उनसे पूछलिया जाय कि मैंने चोरी की है, या नही ? अब बताओ—क्या साधु गवाही देगा ? यद्यपि बात सत्य है। झूठ नही है, तथापि साधु को गवाही देना नही कल्पता है। इस प्रकार यह भाषा समिति सत्य व्रत को और भी सीमा मे वाघ देती है और सत्य व्रत की रक्षा करती है। इसी प्रकार साधु कही वन मे विहार करते हुए जा रहे हो और वहा पर मोटे लम्बे हरे-भरे वृक्ष दिखाई देवें तो साधु को ऐसा नही कहना चाहिए कि इस वृक्ष के तने के पाटिये अच्छे वन सकते हैं। इसकी शाखाओ की कडिया या चौखटें अच्छी वन सकती हैं। क्योकि ऐसा वोलने पर प्रथम तो उस वृक्ष पर ही उसका वुरा प्रभाव पडता है, उसका जीव भी भयभीत होकर अति सक्लेश पाता है। दूसरे यदि अन्य पुरुषो को ज्ञात होगा कि इस वृक्ष के पाटिये आदि वन सकते हैं तो वे उसे काट डालेंगे। और इस प्रकार उसको अपने प्राणो के उच्छेद का, मरण का महाकष्ट भोगना पडेगा । इस प्रकार की यह सावद्य भापा भी साधु को वोलना नही कल्पती है ।

एक वार किसी गाव मे कोई सन्त गये। वहा गाव के एक मोहल्ले वालो ने पूछा—महाराज, हमारे मोहल्ले मे जनसख्या की वृद्धि क्यो नही हो रही हैं ? तव सन्त ने कहा—इस मोहल्ले के वीच मे यह वृक्ष खडा हुआ है, इसलिए जनवृद्धि नही हो रही है। अव इधर तो वे सन्त पधारे और उधर लोगो ने उस वृक्ष को काट डाला । भाई, साधु को ऐसी भाषा नही वोलनी चाहिए ।

इसी प्रकार साधु को भेदकारी भापा भी नही वोलनी चाहिए। साधु के

पास आकर पिता-पुत्र, सासु-बहू और शत्रु-मित्र सभी अपनी गुप्त बातें कहते हैं और अपने पापो का प्रायश्चित लेते है। यदि वह साधु पिता के भेद की बात पुत्र से कह दे, अथवा पुत्र के भेद की बात पिता से कह देवे, तो अनर्थ हो जाय, परस्पर मे कलह हो जाय। इसी प्रकार सासु-बहू की और शत्रु-मित्र की बातो को भी एक-दूसरे के प्रति प्रकट कर दे, तो शत्रुता और भी बढ जाने से महा अनर्थ हो सकते है। इसके अतिरिक्त फिर सभी का साधु पर से विश्वास भी उठ जायगा। फिर कोई भी आकर साधु से अपनी आलोचना नही करेगा। और इससे एक धर्म-परम्परा का ही उच्छेद हो जायगा। इसलिए भगवान ने साधु को भेदकारी भाषा बोलने की मनाई की है। हा, परस्पर-विरोधी बातो को सुनकर साधु सामान्य रूप से सबसे यह कह सकता है कि भाई, सघ मे—एकता मे—सर्वथा लाभ है। फूट मे कोई लाभ नही है।

साधु मर्मभेदी और कलहकारी भाषा भी नही बोलते है। क्योकि ऐसी भाषा बोलने से दूसरे के हृदय को पीडा पहुचने से साधु हिंसा के दोष का भागी होता है और कलह करने वाली भाषा बोलने से अपयश का भी भागी होता है। इसी प्रकार जिस बात के कहने से हिंसा आरम्भ आदि की वृद्धि हो, ऐसी सत्य भी सावद्य भाषा नही बोलनी चाहिए। साधु निश्चयकारी भाषा भी नही बोले। जैसे किसी के आग्रह करने पर यह निश्चित रूप से न कहे कि मैं कल आऊगा। क्योकि ऐसी बात कह देने पर यदि किसी कारण वश जाना न हो सके, तो साधु को झूठ बोलने का दोष लगता है। इस प्रकार यह भाषा समिति साधु को सर्व प्रकार के नियत्रण मे रखकर उसे सत्य महाव्रत की रक्षा के लिए सावधान करती रहती है।

**भिक्षा-विवेक**

तीसरी एषणा समिति है। एषणा शब्द का अर्थ खोज करना है। भगवान् ने गोचरी के लिए जाते हुए साधु को आदेश दिया है कि—

**सपत्ते भिक्खकालम्मि असभतो अमुच्छिओ।**
**इमेण कम्मजोगेण भत्त-पाण गवेसए॥**

से गामे वा नगरे वा गोयरग्गगंओ मुणी ।
चरे मदमणुव्विंग्गो अव्विक्खित्तेण चेयसा ॥
पुरओ जुगमायाए पेहमाणो महिं चरे ।
वज्जतो बीय हरियाइ पाणे य दगमट्टिय ॥

अर्थात् जब साधु का गोचरी काल प्राप्त हो, तब साधु मूर्च्छा-रहित होकर सावधानी पूर्वक भोजन और पानी की खोज के लिए निकले। वह जब ग्राम या नगर को जावे तब उद्वेग-रहित होकर अविक्षिप्त चित्त से सामने चार हाथ भूमि को देखता हुआ मन्द गति से बीज, हरित, सचित्त जल, मिट्टी आदि का वर्जन करता हुआ चले। आगे बतलाया है कि—

अणुन्नए नावणए अप्पहिट्ठे अणाउले ।
इदियाणि जहाभाग दमइत्ता मुणी चरे ॥
दवदवस्स न गच्छेज्जा भासमाणो य गोयरे ।
हसतो नाभिगच्छेज्जा कुल उच्चावय सया ॥
आलोय थिग्गलं दार सधि दगभवणाणि य ।
चरतो न विणिज्झाए सकट्ठाण विवज्जए ॥
रन्नो गिहवईण च रहस्सारक्खियाण य ।
सकिलेसकर ठाण दूरओ परिवज्जए ॥

अर्थात्—गोचरी को जाता हुआ साधु अति नीची, अति ऊची भूमि को छोडकर निराकुल मार्ग से इन्द्रियो का दमन करता हुआ विचरे। उतावला होकर न चले, बोलता और हसता हुआ भी न चले। गृहपति के द्वारा निषिद्ध या वर्जित भूमि मे जाये। जहाँ तक जाने मे गृहस्थ को अप्रीति न हो, जहा तक अन्य भिक्षाचारी जाते हो, वहाँ तक जावे। जिस मकान के द्वार पर पर्दा पडा हो, या किवाड बन्द हो, जो शका के स्थान हो, वहा पर न जावे। राजा के, बडे गृहपतियो के, नगर-रक्षक के घरो मे एव अन्य सक्लेश करने वाले स्थान को दूर से ही छोडे।

भिक्षा के लिए गया हुआ साधु न कही बैठे, न कही खडा रहे और न किसी से वातचीत करे। निपिद्ध कुलो मे गोचरी के लिए न जावे, तत्काल के

लीपे हुए आगन मे भोजन लेने को न जावे । बन्द-मकान के किवाड खोलकर भीतर भिक्षा के लिए न जावे । अन्धेरे कोठे आदि मे न जावे । दूसरे की प्रशसा करते हुए याचना न करे । यदि पानी बरस रहा हो, कुहरा गिर रहा हो, झझावायु चल रही हो और मार्ग सम्मूर्च्छिम जीवो से व्याप्त हो, तो भिक्षा लेने न जावे ।

साधु गोचरी मे कैसे आहार को लेवे ? जो आहार साधु के निमित्त न बना हो, किन्तु गृहस्थ ने अपने लिए ही बनाया हो, खरीदकर साधु के लिए न लाया गया, शय्यातर के घर का न हो, सामने न लाया गया हो । जो आहार सर्व दोषो से रहित हो, उसे ही लेवे । आहार-सम्बन्धी सर्वदोष १०६ बतलाये गये है, उनको टाल करके ही प्रासुक आहार-पान को ग्रहण करे । जिस साधु को इन सब दोषो का पूरा ज्ञान हो, उसे ही गोचरी के लिए जाना चाहिए । परन्तु आज तो सन्त लोगो ने आहार-पानी लाने के लिए चेलो के जिम्मे यह कार्य सौप रखा है, जिन्हे एषणा के दोषो का ज्ञान ही नही है । पहिले के सन्त जो सर्वबातो के भलीभाति जानकार होते थे, वे ही स्वय गोचरी लेने को जाते थे । जिस साधु को सर्वदोषो का ज्ञान नही है, वह यदि गृहस्थ के घर मे गोचरी के लेते समय स्नानघर, शौचघर आदि की ओर दृष्टिपात करेगा, तो वह अपमान का पात्र हो जायगा । इसलिए जैसे गाय जगल मे जब घास चरने को जाती है, तब इधर-उधर वन शोभा को नही देखती है किन्तु नीची दृष्टि किये घास चरती हुई चली जाती है । इसी प्रकार साधु को भी आहार-पान के लाने के समय इधर-उधर न देखकर अपने लिए कल्पे, ऐसे आहार-पान को लेने के ऊपर ही दृष्टि रखनी चाहिए । और भौरे के समान गृहस्थ को पीडा न हो—इस रीति से अनेक घरो से थोडी-थोडी भिक्षा लाना चाहिए । तभी साधु का सयम पल सकेगा ।

भगवान साधु को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का विचार करके आहार-पान के लेने का निर्देश दिया है । इसलिए जिस देश मे जिस काल मे, आहार-पान मिले, वहा उसी समय गोचरी के लिए जाना चाहिए । भगवान का एक-एक वाक्य बहुत रहस्य पूर्ण है । जब तक उस रहस्य की कू ची हाथ मे नही

लगेगी, तब तक उसका आनन्द प्राप्त नही हो सकता है। जैसे एक स्थान पर लिखा है—

**'अस्सी गयन्दो का माल, आना सागर पाल बीच।'**

अजमेर मे आना सागर नाम का सरोवर हैं, उसकी पाल के बीच मे अस्सी हाथियो का माल है। वहा क्या माल है, इसकी खोज अनेक पुरुपो ने की। परन्तु अभी तक वह माल किसी के हाथ नही लगा। क्योकि उक्त वाक्य के रहस्य को जानने की कूची किसी के हाथ नही लगी। इसी प्रकार एक और स्थान पर लिखा था कि **'सिर उडिया धन पाय।'** अर्थात् माथा उडे तो धन पावे। वहा कितनो के सिर उडाये गये, परन्तु धन नही मिला। कोई बुद्धिमान् आया, उसने भी वह वाक्य पढा। उसने उसका रहस्य जान लिया। अत बोला इस पुतली का सिर उडा दो, तो धन मिल जायगा। सुनने वाले ने जैसे ही उसका सिर उडाया कि भीतर भरा हुआ धन मिल गया। कहने का भाव यह है कि साधु को शास्त्र मे लिखे प्रत्येक वाक्य के रहस्य को समझने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस एषणा समिति से अहिंसाव्रत की भी रक्षा होती है, सत्य व्रत की भी रक्षा होती है और अचौर्यव्रत की भी रक्षा होती है। साथ ही कामोत्तेजक, नशीले, गरिष्ठ एव तामसिक, राजसिक भोजन नही करने से ब्रह्मचर्य महाव्रत की भी रक्षा होती है और गृहस्थो के यहा से अतिसीमित परिमाण मे लाने तथा उसमे मूर्च्छा, गृद्धि या आसक्ति नही रखने से अपरिग्रह या सन्तोष महाव्रत की भी रक्षा होती है।

चौथी आदान-निक्षेपण समिति है। साधु को अपने ज्ञान-सयम के उपकरणो को उठाते समय, रखते समय प्रतिलेखन करके ही उठाना-रखना चाहिए। सथारे की नियत समय पर पलेवणा करना चाहिए। यह समिति अहिंसा महाव्रत की रक्षा करती है।

पाचवी प्रतिष्ठापना समिति है। साधु अपने मल-मूत्र को निर्जन्तु, निश्छिद्र एव प्रासुक भूमि पर ही परिठवणा करता है। जहा हरी घास उग रही हो, भूमि मे चूहे आदि के बिल हो और कीडी आदि की अधिकता हो, जहा अधकार

चाहिए। जैनी के लिए तीन बातो का तो कम से कम त्याग होना ही चाहिए। पहली बात है—मद्य, मास और मधु का त्याग। दूसरी रात्रि भोजन का त्याग। और तीसरी अनछने जल को पीने से कार्यों मे त्रस जीवो की हिंसा होती है। और गृहस्थ के इसका त्याग करने पर ही देश सयम का पालन हो सकेगा। जैन कुलो मे अभी कुछ समय पूर्व तक उक्त तीनो बातो का त्याग चला आ रहा था। अब केवल मद्य-मास का त्याग बचा है। अधिकतर जैनी रात्रिको खाने लगे है और अनछना पानी पीने लगे है। भाइयो, जो रात्रि भोजन के त्यागी है और छान करके पानी पीते है, वे अनेक प्रकार के भयकर रोगो से बचे रहते है। तथा त्रस जीवो की रक्षा होने से सहज मे ही उनके सयम का पालन हो जाता है। आपको छानकर पानी पीते हुए देखकर, तथा दिन मे ही भोजन करते देखकर दूसरे लोगो पर आपकी बहुत अच्छी छाप पडती है और लोग आपको अहिंसा धर्म का परिपालक सहज मे ही समझ लेते है। इससे आपके कुल की महत्ता भी बढती है। अत कम से कम उक्त तीन बातो का नियम तो प्रत्येक जैनी को लेना ही चाहिए।

भाई, ऊच और नीच कुल के आचार-विचार मे यही तो अन्तर है, आर्य और म्लेच्छ मे यही अन्तर है कि अनार्य पुरुष मासभोजी, निशाभोजी मद्यपायी और अनछने जलको पीते है। किन्तु आर्य पुरुप शाक-अन्नभोजी, फलाहारी, दिवाभोजी और जल छान कर पीते हैं। हम जिस उच्चकुल मे उत्पन्न हुए हैं, उसमे उक्त तीनो बातो का त्याग परम्परा से चला आ रहा था। किन्तु आज विदेशी सभ्यता के प्रभाव से हमारे समाज मे जो उक्त तीनो कार्यो मे हीनता दृष्टि गोचर होने लगी है। उसे दूर कर पूर्व परम्परा का तो पालन करते ही रहना चाहिए गृहस्थ के इतना सयम तो होना ही चाहिए।

वि० स० २०२७ आसोज वदि ७

सिंहपोल, जोधपुर,

# ९ | जीवन का आदर्श

भाइयो, ससार की गति अबाध रूप से प्रवहमान है, इसमे आना और जाना निरन्तर चालू है। वह एक क्षण को भी रुकने वाला नही है। चाहे आप नरक गति की ओर देखो और चाहे तिर्यंच, मनुष्य या देवगति की ओर देखो, सर्वत्र गमनागमन का यह क्रम लगातार चल रहा है। यहा पर अभी तक कितने आये और कितने गये, इसकी गणना का कोई पार नही है। यदि आप बाजार मे बैठे हैं और सामने की सडक पर यह गिनती करने का प्रयत्न करें कि दिन भर मे इस पर से कितने लोग आये और कितने गये, तो इस छोटे से शहर मे आवागमन करने वालो की भी गिनती नही कर पायेंगे। तब यह जो चतुर्गति रूप विशाल ससार है, जिसके ओर-छोर का पता भी हमे नही है, उसमे कितने आ रहे हैं और कितने जा रहे हैं, इसका अनुमान तो आप कैसे लगा सकते हैं? परन्तु इस ससार मे आप अपना आना और जाना ये दोनो सार्थक करना चाहो तो अपने जीवन को ऐसा उन्नत बनाओ और ऐसे कार्य करो कि जिससे ससार को भी पता लग जाय कि यहा अमुक व्यक्ति आया और चला गया। एक महान् पुरुष जब किसी स्थान पर जाता है, तब वहा पर हल-चल-सी मच जाती है और उसे देखने के लिए जनता दौड पडती है। वह भी हम आप जैसा ही मनुष्य है। परन्तु उसने जो त्याग-तप किया है,

का कार्य किया है जनता की भलाई की है, उसी के कारण लोग उसके दर्शन करने और भाषण सुनने के लिए दौडे हुए जाते है। वह महापुरुष चाहे परिचित स्थान पर जावे अथवा अपरिचित स्थान पर जावे, उसका सर्वत्र सम्मान होता है और सब उसकी ओर स्नेहमयी दृष्टि से देखते है। ऐसे व्यक्ति का ही आना और जाना सार्थक है। अन्यथा रेलो और मोटरो से कितने लोग आते और चले जाते हैं, उनका क्या आपको पता है ? अरे, ऐसे आने-जाने वालो का पता तो उनके सगे सम्बन्धियो को भी नही चल पाता है। तब सारे ससार की जानकारी कौन रख सकता है ? परन्तु एक बात निश्चित है कि जिसके आने और जाने की याद दुनिया रखती है तो आपको भी मानना पडेगा कि उस व्यक्ति ने कुछ महान् कार्य किया है। भाई, ससार मे आकर दो प्रकार की करनी करने वालो के नाम अमर रहते है—एक तो भली करनी करने वालो के और दूसरी बुरी करनी करने वालो के। और इन दोनो जाति के लोगो की याद दुनिया के लोग रखते हैं। कहा भी है—

**सब काहू की कहत है, भली बुरी संसार।**
**दुर्योधन की दुष्टता, विक्रम को उपकार॥**

### दोनो को ही याद किया जाता है

भाई, इस दुनिया से कुछ छिपा नही है। उसे सबके भले-बुरे का ज्ञान है। भले-बुरे व्यक्तियो के भले-बुरे कामो को उनके समय के लोग तो जानते ही थे। परन्तु हजारो वर्ष बीत जाने के बाद आज भी लोग उनको भूले नही हैं। देखो —जैन सिद्धान्त के हिसाब से दुर्योधन को पैदा हुए साढे छियासी हजार वर्ष बीत गये। परन्तु आज यदि किसी के कोई कपूत पैदा होता है, तो लोग कहते है कि दुर्योधन जन्मा है। दूसरी ओर विक्रमादित्य राजा को मरे हुए दो हजार सत्ताईस वर्ष हो गये है, परन्तु उसको भी दुनिया जानती है। वह न दुर्योधन को भूली है और न विक्रम को भूली है। और न वह कृष्ण-कस एव राम-रावण को ही भूली है। परन्तु राम, कृष्ण और विक्रम की याद उनके द्वारा किये गये भले कार्यों के कारण है। तथा रावण, कस और दुर्योधन की याद उसके बुरे कार्यों के कारण है।

समझ लीजिए कि आप कही जा रहे हैं और चलते हुए—पैर मे पत्थर की जोर से ठोकर लगी और अगूठे का नाखून उतर गया, तो उस स्थान को आप भूलेंगे नही। इसी प्रकार कही जाते हुए हीरे की अगूठी मिल गई, तो उस स्थान को भी आप भूलेंगे नही। दोनो ही बातो को आप जीवन भर याद रखेंगे। इसी प्रकार किसी प्रयोजन से आप किसी के घर गये, आपके पहुंचते ही उसने आपका आदर सत्कार किया। मनुहार करके आपको रोका और प्रेम पूर्वक उत्तम भोजन कराया। अब आप उसके इस आतिथ्य सत्कार की सदा याद रखेंगे। और दूसरी किसी जगह गये, वहा पर उसने आपका अपमान किया और गालिया देकर और धक्के मारकर घर से निकाल दिया, तो इस बात को भी कभी नही भूलेंगे।

**बुराई आसान : भलाई कठिन**

हा, तो मैं कह रहा था कि दुनिया भले काम करने वालो की भी याद रखती है और बुरे काम करने वालो की भी याद रखती है। बुरे काम को करने के लिए किसी को प्रेरणा देने की या पाठ पढाने की आवश्यकका नही होती है। बुरे कार्य को करने की ओर मनुष्य की बुद्धि अनादि कालीन कुसस्कारो के उदय से स्वयमेव होती है। इसलिए हमे भलाई करने के लिए प्रेरणा देने की आवश्यकता है। भलाई के लिए ही उदाहरण बताने की आवश्यकता है कि राम ने, कृष्ण ने और विक्रम ने भलाई के ऐसे-ऐसे काम किये हैं कि जिससे वे ससार मे यश के पात्र बने। बुद्ध और महावीर ने ससार के उद्धार का कार्य किया, उन्होने अपने जीवन को त्याग और तपस्या की अग्नि मे तपाकर कुन्दन के समान रखा और शुद्ध बना लिया था। आप लोग भी उनके समान अपने जीवन को उज्ज्वल बना लो और अपने कार्यों से ससार के ऊपर अपनी सुन्दर छाप अकित कर दो कि वह आपको भी उक्त महापुरुषो के समान सदा स्मरण करती रहे।

भाइयो, आप लोगो ने सोचा होगा कि हम एक आलीशान मकान बनवालें, जिसे देखकर दुनिया हमे सदा याद करती रहेगी। परन्तु आज आपको क्या यह पता है कि अमुक मकान अमुक व्यक्ति ने बनवाया है? फिर सौ—पचास

वर्षों के बाद कौन जानेगा कि यह मकान उन्होने वनवाया था। भाई, मकान से हमारा नाम अमर नही होता है। इसी प्रकार बडे ठाठ-वाट से शादी आदि करने पर भी नाम अमर नही होता है। ऐसे लोगो की याद दुनिया मे अधिक से अधिक उनके जीवित रहने तक रहती है। कुछ लोग समझते हैं कि वढिया वस्त्राभूषण पहिनने और चटक-मटक से रहने पर दुनिया हमारी याद करेगी ? पर क्या दुनिया मे ऐसे लोगो की स्मृति कायम रहती है ? नही रहती। हा जिन लोगो ने दूसरो लोगो का भरपूर उपकार किया है, उन्हे हर प्रकार से सुख और शान्ति पहुचाई है और उन्हे सुख का मार्ग वताया है तो ऐसे लोगो को ससार सदा याद रखता आया है और आगे भी रखेगा। तथा कहेगा कि अमुक समय मे हमारे यहा अमुक व्यक्ति ऐसा हो गया है जिसने अपने देश, जाति और धर्म के लिए अमुक महान् कार्य किया है। इसलिए आप लोग ऐसे ही उत्तम कार्य करे जिससे आप भी आगे सदा लोगो से याद किये जावे।

ससार मे प्रशसा कैसे कार्य करने से होती है, वे कार्य आप लोगो से छिपे हुए नही हैं। तथा बदनामी भी कैसे काम करने से होती है, यह भी सब जानते हैं। परन्तु भाई, आप लोग जानते हुए भी अनजान बने हुए हैं। सोते हुए मनुष्य को जगाया जा सकता है। किन्तु जो जागते हुए भी सोने का बहानाकर आख बन्द करके पडे हैं, उन्हे कौन जगा सकता है ? ऐसे लोगो के हित के लिए जो भी बात कही जायगी, उसे वे मजाक बनाकर उडा देंगे। बल्कि उसे उलटे रूप मे रखकर आपको समझाने का प्रयत्न करेंगे।

**बुद्धि को सन्मार्ग की ओर मोड़ो !**

अभी तीन-चार वर्ष पहिले की बात है, जब पचवर्षीय चुनाव होने वाला था, उसके एक मास पूर्व गोरक्षण का आन्दोलन चेत गया था। उस समय एक गाव का सरपच और वहा का विकास-अधिकारी दोनो मेरे पास बैठे हुए थे। मैंने उनसे कहा—भाई, गायो के प्रति बडा अन्याय हो रहा है। अत जो लोग गोरक्षण का आन्दोलन कर रहे हैं, उसमे आप लोगो को कुछ सहायक बनना चाहिए। मेरी बात सुनते ही सरपच बोला—महाराज साहब, यह आप क्या कह रहे है ? यदि ये सारी की सारी गायें रह जाये तो देश दिवालिया हो

जायगा, क्योकि एक गाय के चरने के लिए कितनी भूमि चाहिए ? जव गायो की सख्या करोडो मे है, तब उन सब के लिए कितनी भूमि चाहिए ? यदि इतनी अधिक भूमि जानवरो को चरने के लिए छोड दी जाय तो फिर ये कल-कारखाने कहा खोले जावेंगे और मनुष्य कहा रहेगे ? तथा मनुष्यो के खाने के लिए धान कहा पैदा होगा ? जबकि जन-सख्या निरन्तर बढती जा रही है। इसलिए इस बात पर तो आप ध्यान ही मत दीजिए और पशुओ की दया की वात छोडकर मनुष्यो की दया कीजिए। इस प्रकार उसने मेरे सामने अनेक बाते कही और अनेक मिसालें सामने रखी। मेरे ऊपर तो उनकी वातो का क्या असर होने वाला था। परन्तु यदि मेरे सिवाय यदि अन्य व्यक्ति होता, तो कह देता कि हा साहब, आपका कहना सत्य है। परन्तु यहा तो चिकने घडे पर क्या छाटे लग सकते थे। उनकी सब बातें सुनने के पश्चात् मैंने उनसे कहा—सरपच साहब, आपकी बुद्धि तो ऐसी है कि ये मा-बाप अब बूढे हो गये है, किसी काम को करने के योग्य नही रहे हैं। अत इन्हे गोली मार दी जाय। क्योकि वे किसी की सेवा नही करते हैं और बैठे-बैठे खाते हैं। बेकार मे दो आदमी उनकी सेवा मे समय लगाते हैं। अव तो आप लोगो को यह कानून भी बनाना पडेगा। जब आप वेकार मा-बाप को गोली मारने के लिए तैयार हो रहे हैं, तब यदि वेकार जानवरो को मारने की बात कहे तो इसमे क्या आश्चर्य की बात है। भाई, ये अपने को बुद्धिमान् समझने वाले लोग जनता के सामने ऐसे-ऐसे कुतर्क रखकर जानवरो को मारने के लिए जनता को गुमराह कर देते हैं।

भगवान ने कहा है कि ससार मे अनन्त सुहेतु और अनन्त कुहेतु होते है। जितने भी कुहेतु होते हैं, वे मनुष्य के दिमाग मे जल्दी वैठते है और सुहेतु नही वैठते हैं। यह सब समय का ही प्रभाव है। पानी के सामने पानी डालो तो वह नीचे की ओर ही बढेगा, ऊपर की ओर नही चढेगा। यदि ऊपर चढेगा तो वह मनुष्य की तरकीब से चढेगा। अन्यथा जल का स्वभाव तो नीचे की ओर जाने का ही है। इसी प्रकार मनुष्य का जैसा स्वभाव है, वह वैसा ही रहेगा। यदि वह अच्छा होगा तो सत्प्रयत्नो से ही होगा। भाई, धर्म का स्वभाव तो

ऊपर जाने का ही है। परन्तु जब मनुष्य के हृदय मे धर्म के प्रति आस्था ही उत्पन्न न हो तो वह कैसे ऊचे की ओर चढेगा। आज तो ऐसे कुतर्को को सुन कर धर्म के प्रति लोगो की भावना ही ढीली पडती जा रही है।

**धर्म के बिना सुख नहीं**

भाइयो, मैं आपसे पूछता हू कि क्या आप लोग धर्म की भावना से नीचे गिरकर सुख की नीद सो सकेंगे ? कभी नही। फिर तो दुख की नीद मे ही गिरना पडेगा। क्योकि काल तो सिर पर ही घूम रहा है। सूत्रकृताग सूत्र मे कहा गया है—

**गब्भ मुज्झति बूया बूयाणा, नरा परा पंच सिया कुमारा।**
**जोवणग्गा मज्झिमा थेर गायं, चूयंति आयुखय पलाण ॥१॥**

भगवान ने कहा है—हे प्राणियो, सोचो तो सही, जरा विचार तो करो— तुम्हारे साथ मे यह काल किस प्रकार से लगा हुआ है ? कई जीव तो गर्भ मे आकरके ही मर जाते है। नौ लाख सज्ञी जीव एक साथ गर्भ मे आते है, तो क्या सब जीते है ? एक, दो तीन, और बहुत हुआ तो चार जीते है। शेष सब तो मर ही जाते है। कितने ही तो बुद्बुद के रूप मे ही समाप्त हो जाते है। कितने ही गर्भ स्राव से मर जाते है, कितने ही गर्भ से निकलते हुए मर जाते हैं। कितने ही बालपन मे, कितने ही कुमारपन मे और कितने ही जवानी मे मर जाते है। पूरी आयु तक तो बहुत कम लोग जीते है। जब यह जीव गर्भ मे आया है और जब तक भी जीवित रहता है, तब तक यह काल तो तेरे पीछे ही घूम रहा है। इसलिए मानव को सबोधन करते हुए ज्ञानी जन कहते हैं कि—

**मानव है तो मान जा, मत कर इतनी मरोड़।**
**लारे हंतक अश्वकी—लाग रही घुड-दौड ॥१॥**

यदि तू मानव है, समझदार है तो भाई, मरोड करना छोड दे कि मेरी बडी शक्ति है, मेरा परिवार बडा है और मेरे बडे-बडे श्रीमन्त साथी है। मेरा कौन मुकाबिला कर सकता है ? इस मरोड़ को छोड़ दे। यह मानव-तन

तो जल का बुद्बुदा है। इसके क्षय होने मे आश्चर्य नही है। हा, यदि यह स्थिर रहता है, तव अवश्य आश्चर्य की बात है। कहा है—

**'जल बुद्-बुद नित्यत्वे चित्रीया, न हि तत्क्षये।'**

अर्थात् जल के बबूलो के नित्य बने रहने मे आश्चर्य की बात है, उनके क्षय होने मे क्या आश्चर्य की वात है ? क्योकि बबूलो का स्वभाव ही क्षण-भगुर है।

**काल का घोड़ा**

अरे मानव, तेरे पीछे काल की घुड दौड है। तू तो दो पैरो से दौडता है, पर वह काल का घोडा चार पैरो से दौडता चौकडी भरता हुआ चला आ रहा है। तेरी चाल धीमी है और उसकी चाल तेज है। ज्यो ही वह तेरे समीप आयगा, त्यो ही तुझे एक क्षण मे झपट जायगा। जैसे चिडिया पर बाजपक्षी झपटता है और जैसे चूहे पर बिल्ली झपटती है। फिर काल के आक्रमण करने पर वचने की क्या आशा है ? यह यमराज अचानक आकर जव दावेगा, तव तू क्या कर सकेगा। इसलिए सन्त जन सम्वोधन करते हुए कहते हैं—

**जम आन अचानक दावेगा, जम आन० ॥ टेर ॥**
**छिन-छिन कटत-घटत थिति, ज्यो जल अजुलि को झर जावेगा ॥ जम० १ ॥**
**जन्म ताल तरुतै पर जिय फल, कौं लग बीच रहावेगा ?**
**क्यों न विचार करे नर आखिर, मरन मही मे आवेगा ॥ जम० २ ॥**
**सोवत मृत लागत जोवत ही, श्वासा जो थिर थावेगा।**
**जैसै कोऊ छिपै सदा सौं, कवहूं अवश्य पलावैगा ॥ जम० ३ ॥**
**कहू कवहू कैसे हू कोऊ, अन्तकसे न बचावैगा।**
**सम्यक्ज्ञान पियूष पिये सो "दौल" अमरपद पावेगा ॥ जम० ४ ॥**

हे भाई, यह यमराज अचानक ही आकर तेरे को धर दवावेगा ? तू क्यो अचेत हो रहा है। सावधान हो और देख कि तेरी आयु प्रतिक्षण घट रही है, जैसेकि अजली मे भरा हुआ जल प्रतिक्षण झर रहा है। और जैसे ताडवृक्ष से गिरा हुआ फल अधर मे कितनी देर रह सकता है ? वैसे ही तू जन्मरूपी ताड-वृक्ष से गिर चुका है, अव वीच मे कितनी देर रह सकेगा। आखिर मरण-रूपी

भूमि मे आना ही पडेगा । इसका हे मनुष्य, तू क्यो नही विचार करता है ? और भी देख--जब मनुष्य सोता है, तब मरे हुए के समान लगता है और यह श्वास जो प्रति समय बाहिर आती और जाती है, इसका क्या भरोसा है कि यह सदा स्थिर बनी रहेगी । जैसे कोई छिपा हुआ जीव अवसर पाते ही अवश्य भागेगा । ऐसे ही यह श्वासा भी एक दिन सदा के लिए भाग जायगी । अरे, जरा तो विचार कर कि आज तक कही कोई कभी यम से बच सका है ? हा, एक वही पुरुष बचेगा जो सम्यक् ज्ञानरूपी अमृत पीकर अमरपद पालेगा । इसलिए दौलतराम भव्य जीवो को सम्बोधन करके कहते है कि भाईयो, आप इस सम्यग्ज्ञानरूप अमृत का पान करो । पता नही, यह मय आ करके अपने को दबा लेवे । इसलिए आत्महित का शीघ्र प्रयत्न कर ।

मनुष्य सोचता है कि अभी जीवन बहुत शेप है, इसलिए आगे धर्म-साधन कर लेगे । उनको सम्बोधन करते हुए सन्त कहते है—

**कई चाल्या, कई चालसी; केता चालण हारोरे,**
**न गिणे वार कुवारो रे-चाल्यो-जाय संसारो-रे अबतो ज्ञान विचारोरे ।**
**कोण थारो परिवारोरे, मेलो विखरनवारोरे, अपनि आख उघारोरे,**
**सारो झूठो ससारोरे— सहजा नंदी रे आत्तमा ।। १ ।।**

अरे भाई, कितने तो चले गये है और कितने ही जाने वाले है । आप जब कही वाहिर जाने को तैयार होते है, तब शुभ मुहूर्त देखते है, उत्तम नक्षत्र, तिथि और वार देखते हैं और देखते है कि कालवासा तो सामने नही है । भद्रा और व्यतिपात योग तो नही है, क्षयतिथि तो नही है । पचक तो नही है । इतनी बातो का विचार करके आगे पैर रखते हो । परन्तु जब मौत आती है, तब उसका भी कोई मुहूर्त है क्या ? क्या कभी किसी ने देखा हैं कि मैं इस मुहूर्त मे मरूगा । मौत आने का कोई मुहूर्त नही है । दुनिया कहती है कि मरण तो रात का भला है और जन्म सवेरे का भला है । पर क्या अपने अधीन बात है । काल तो जब चाहे तभी चला आता है, उसको रोकने वाला कोई भी नही है । भाई, इस जन्म-मरण का नाम ही ससार है । **'ससरतीति ससारः',**

जो चलता-फिरता रहे, उसे ही ससार कहते है। ऐसा प्रत्यक्ष मे तुम्हे ज्ञान मिल रहा है और तुम्हारे सामने अनेको आये और जा रहे हैं। परन्तु अभी तक भी अपने नेत्र बन्द किये सो रहे हो। अरे, चेतने का फिर अवसर कब है ? अभी आपको यह ऐसा सुवर्णावसर मिला है, इस समय सचेत होना ठीक है।

**मर जाने से पिंड नहीं छूटेगा !**

कितने ही भोले भाई, शारीरिक, मानसिक या पारिवारिक दु खो से घबडाकर कहने लगते हैं कि अब तो हम मर जावें, तो ठीक है । ऐसे लोगो से मैं पूछता हू कि यहा से मर जाने पर क्या दु ख से छूट जाओगे ?

एक उर्दू के शायर ने कहा है—

**अब तो घबरा के कहते हैं कि मर जायेंगे।**
**मर के भी चैन न पाया तो किधर जायेंगे ?**

मरने के बाद अगले जन्म मे सुखी होने की कौनसी गारटी आपने ले ली है ?

क्या आगे के लिए कही स्वर्ग या उत्तम मनुष्यभव की सीट रिजर्व करा ली है ? यदि स्वर्ग मे भी जाओगे तो वहा भी इन्द्र की पराधीनता का दु ख भोगना पडेगा। मनुष्यभव भी पाओगे, तो पुन इस भव के समान ही दु ख भोगना पडेंगे। और यदि नरक-पशु-योनियो मे चले गये तो वहा तो फिर दु खो का पार ही नही है। ससार मे जहा भी लोगे, वहा ही दु ख भोगना पडेगा। इसलिए यह कहना कि यहा से मर जाऊ तो सुखी हो जाऊगा, यह तेरी कल्पना सर्वथा मिथ्या है। कवि कहता है—

**मरनो-मरनो सब कहें, मरनो न जाने कोय।**
**सही मरणो जे जाणीयो, ताको कहा दुख होय ॥ १ ॥**

भाई, मरना बडी बात है, छोटी बात नही है। मरना है, मरना है, ऐसा तो सभी लोग कहते हैं। पर यह कोई नही कहता है कि जीना है। जो यथार्थ मे मरण को नही जानते है, वे लोग ही मुख से मरना-मरना चिल्लाते हैं। किन्तु जिसने मृत्यु को जान लिया, उससे बडा ससार मे कोई नही है। मरना तो महापुरुषो ने जाना है और उसे जानते ही उन्होंने तुरन्त भोगो से मुख फेर

लिया और त्याग मे केसरिया अग कर लिया। जिन्होने ऐसा किया है, वास्तव मे उन्ही ने मरण को समझा है।

कवि ने कहा है—

**जव तुम जन्मे जगत मे जग हंसा, तुम रोये।**
**ऐसा काम कुछ कर चलो, तुम हस मुख, जग रोये।**

तुम जव जन्मे थे तो दुनिया तो खुशिया मना रही थी, घर वाले वधाई बाँट रहे थे, लेकिन तुम (वच्चे) रो रहे थे। किन्तु अब मरते समय कुछ ऐसा भला काम करो कि तुम तो हसते-हसते जाओ, मगर दुनिया तुम्हारे लिए रोती रहे कि एक नर रत्न चला गया, उसने ससार की भलाई का काम किया था।

जिस मनुष्य की यह भावना है कि जब मैं इस दुनिया मे आया हू, तो कोई ऐसा काम कर जाऊ और भलाई का कोई ऐसा पौधा लगा जाऊ, जिसकी शीतल छाया मे अनेक प्राणी सुख-शान्ति प्राप्त कर सके, तो ऐसी भावना वाले व्यक्ति ने मरने को जाना है। जिसने ऐसा नही किया है, वह तो भोगो का कीडा है। ऐसे विपयान्ध जीव तो अधेरी गलियो मे ठोकरे खाने के लिए ही है। जिमने जीवन के इस रहस्य को जान लिया, वह पुरुप तो एक क्षण का भी प्रमाद नही करेगा। कहा है कि –

**समय मात्र प्रमाद नित्त-धर्म साधना माही।**
**अथिर रूप ससार लख, रे नर करिये नाही ॥१॥**

जो व्यक्ति समयमात्र का भी प्रमाद नही करता है और जिसने आयुष्य को अजुली के जल के समान ममझ लिया है, वह मृत्यु के लिए सदा तैयार रहता है और मामारिक सकल्पो-विकल्पो से अपने को वचाता हुआ सदा आत्म-कल्याण करने मे मावधान रहता है। खुले मैदान मे तो कपडो को काजल से वचाया जा मकता है। किन्तु काजल की कोठरी मे प्रवेश करने के वाद काजल के दाग मे वचे रहना वहुत कठिन काम है। काजल की कोठरी के समान यह ससार भी पाप की कोठरी है। इसमे मर्व ओर पाप ही पाप भरा हुआ है। इसमे रहते हुए भी अपने को पापो मे वचाये रखना महापुरुपो का ही कार्य है। वे पुरुप धन्य है, जिन्होंने पापो के वीच मे जन्म लिया और पापो के मध्य मे

जिनका पालन-पोषण हुआ। परन्तु होश सभालते ही पापो को सदा के लिए धक्का दे दिया और स्वय निर्मल, निष्पाप एव पवित्र पद को प्राप्त कर लिया।

**विवेकी को उपदेश की अपेक्षा नहीं!**

जो पुरुष विवेक से काम लेते हैं, उन्हे दूसरे के उपदेश की अधिक आवश्यकता नही रहती है। भगवान ने कहा है—**उद्देसो पासगस्स णत्थि**—जो स्वय द्रष्टा, विवेकवान है उसके लिए उपदेश की कोई जरूरत नही है। वे एक दो भगवद्-वचनो को सुनते ही प्रबोध को प्राप्त हो जाते है। फिर वे वाहिरी धन-ऐश्वर्य की, अथवा शरीर, कुटुम्ब आदि की परवाह नही करते हैं। वे तो केवल अपनी जीवन-ज्योति को जगाने की परवाह करते हैं। भाई, यह जीवन ज्योति जगाने की वात भगवान की वाणी मे है। भगवान की वाणी मे वतलाया गया है कि '**समय गोयम मा पमायए**' अर्थात् हे गौतम, समय मात्र का भी प्रमाद मत करो। यदि तू प्रमाद करेगा, तो तेरे पास जो ये अनमोल रत्न है, वे सव तेरे पास से चले जावेगे। वीता हुआ समय फिर लौटकर हाथ मे आने वाला नही है। यदि यह अवसर चूक गया तो फिर सभलना कठिन हो जायगा।

**अवसर चूक गये तो?**

एक कछुआ गहरे पानी का रहने वाला था। वहा उसके अनेक कुटुम्बीजन भी रहत थे। एक दिन वह पानी के ऊपर की काई को फाडकर वाहिर निकला तो उसे आकाश मे प्रकाश मान पूर्णचन्द्र दिखा। उसे देखकर वह बहुत प्रसन्न हुआ और मन मे विचारने लगा—ओह, ऐसी सुन्दर वस्तु तो मैंने अपने जीवन मे पहिली वार ही देखी है। इसे मैं अपने साथी परिवार वालों को लाकर दिखाऊगा। यह सोचकर वह पानी मे घुसा और नीचे गहराई मे चला गया, जहाँ उसके साथी थे। इधर कर्मादिलो (काई) वापिस फैल गई। कछुए ने अपने साथियों से कहा—भाइयो, आज मैंने एक अपूर्व वस्तु देखी है, वह गोलाकार और प्रकाश वाली है। साथियों ने कहा—तेरा कहना विलकुल झूठ है। ससार मे ऐसी कोई अद्भुत वस्तु हो ही नहीं सकती है। उसने कहा—भाइयो, मैं अपनी आखो से प्रत्यक्ष देखकर आ रहा हू। यदि तुम मेरे [illegible] तो तुम्हे भी दिखा सकता हू। वह सब साथियों को लेकर ऊपर [illegible]

उसके आने के पूर्व सारे पानी के ऊपर काई फैल चुकी थी। कछुआ बोला—अरे, अभी तो रास्ता था, परन्तु अब तो वह मिल नही रहा है। उसकी यह बात सुनकर सब परिवार वाले कहने लगे—तू झूठा है, कही रास्ता है ही नही। उस कछुए ने कहा—भाई, प्रयत्न करो तो चन्द्र के दर्शन हो जायेंगे। इसी प्रकार हम लोग भी मानवता के केन्द्र पर आ गये है। हमारे सामने भी अनेक अद्भुत नवीन वस्तुए आई और हमने उनको देखा। हम अब उस स्थान से गलियो मे चले गये और वहा पर लोगो से कहा कि आज हमने अनेक अद्भुत वस्तुए देखी है। उन्होने कहा—भाई, हमे भी दिखाओ। अब सब उन गलियो में भूल गये और वापिस मार्ग न मिले तो हमे झूठा पडना पडेगा। किन्तु जिसने उन वस्तुओ को पूर्ण रूप से हृदयगम किया है, वह बता सकता है कि मैंने इस-इस प्रकार की वस्तुए देखी है। और वह उनका सजीव सचित्र प्रदर्शन भी कर सकता है।

मिथिला नगरी के राजा कुम्भ थे। उनके महाराजकुमार ने एक नवीन महल बनवाया। जब वह बनकर के तैयार हो गया, तब चित्रकार को बुलाकर कहा हमारे शयनागार मे छहो ऋतुओ के सुन्दर चित्र बनाओ। वह चित्रकार चित्रकला मे प्रवीण था, अत उसने यथा स्थान सुन्दर नयनाभिराम और चित्ताकर्षक चित्र आलेखित कर दिये।

जब वह चित्रकार चित्रो के चित्रण करने मे व्यस्त था, तब मल्लीकुवरी (भगवान मल्लिनाथ) घूमती हुई वहा पधारी। चित्रकार ने उन्हे देखा और एक सुन्दर स्थान पर बिलकुल उनके जैसा ही चित्र आलेखित कर दिया। जब चित्रकारी का काम सम्पन्न हो गया, तब उसने जाकर महाराजकुमार से निवेदन किया कि मैंने आपके आदेशानुसार सर्व चित्र आलेखित कर दिये हैं। आप पधार कर देख लीजिए।

महाराजकुमार शयनागार मे गये और एक-एक चित्र को उन्होने गहराई से देखा। वे उन्हे देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होने चित्रकार की बहुत प्रशसा की। इतने मे ही उनकी दृष्टि अपनी बहिन मल्लीकुवरी के चित्र पर पडी। उसे देखते ही उनका पारा एकदम चढ गया और बोले—अरे नीच, तूने मेरे

इस शयनागार मे—भोग-महल मे मेरी बहिन का चित्र क्यो बनाया ? तूने उनको कहा देखा ? इस प्रकार अतिरुष्ट होकर उन्होने धक्के देकर महल से बाहिर निकलवा दिया और सेवको को आज्ञा दे दी कि इसे मेरे देश से निकाल दो।

चित्रकार विचार ने लगा—अहो, मैंने पूरे बारह मास तक परिश्रम करके ये चित्र बनाये उसका मुझे पारितोषिक तो नही दिया ! प्रत्युत देश से निकाल दिया। मैं भी कोई भाड भूजने वाला नही हू, किन्तु चित्रकार हू। यदि मैं इसका बदला न लू, तो मेरा नाम चित्रकार नही। भाई, चित्रकार, रसोईदार, कवि और विद्वान् इन लोगो से वैर करना अच्छा नही होता। ये लोग बदला लिए बिना नही रहते। अत उस चित्रकार ने देश से बाहिर जाकर बदला लेने की गाठ बाध ली। उसने मल्लीकुमारी के छह चित्र हू-बहू रूप-सौन्दर्य-सम्पन्न बनाये। अब वह उन चित्रो को राजा कुम्भ के राज्य के सर्व ओर सीमा से लगने वाले राज्यो के अधिपति छह राजाओ के दरबार मे गया और सबको एक-एक चित्र भेंटकर दिया।

उस मन मोहक चित्र को देखकर वे छहो राजा मल्लीकुमारी पर मोहित हो गये। उन्होने अपने-अपने दूतो को पत्र देकर राजा कुम्भ के पास भेजा। सभी ने अपने पत्रो मे एक ही बात लिखी कि महाराज, या तो आप अपनी राजकुमारी की शादी हमारे साथ करो, अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाओ। परन्तु ध्यान रखना कि हम आपके समस्त राज्य का नामो-निशान मिटा देंगे।

छहो राजाओ के वे दूत एक साथ ही राजा कुम्भ के दरबार मे पहुंचे और यथोचित विनय करके अपने अपने स्वामियो के पत्र राजाकुम्भ को दे दिये। राजा ने एक-एक करके सब पत्रो को पढा। सब मे एक ही समाचार लिखा हुआ था। वे बडे विचार मे पड गये कि राजकुमारी तो एक है और शादी के प्रस्ताव छह राजा कर रहे हैं। अब मैं किसका प्रस्ताव स्वीकार करू और किसे इनकार करू ? फिर राजकुमारी असाधारण पुण्यशालिनी है। उसके गर्भ मे आते ही उसकी मा ने चौदह अपूर्व महा स्वप्न देखे हैं। वह शादी करेगी, या नही ? इसका भी कुछ पता नही है। यदि वह विवाह-बन्धन मे न बधना चाहे,

तो उनके लिए आग्रह भी कैसा किया जा सकता है ? क्योकि नीतिकारो ने कहा है कि—

**सीर सगाई चाकरी राजीपा रो काम ।**

इस नीतिकि के अनुसार राजकुमारी की रजामन्दी के बिना सगाई करना भी तो भले राजा की बात नही है । अत उन्होने दूतो को यह कह कर विदा कर दिया कि हम पीछे जवाब भेज देंगे । इधर तो राजा कुम्भ सोच-विचार मे पड रहे थे कि उन राजाओ को क्या जवाब दिया जाय । उधर उन राजाओ ने कुछ दिन तक तो अपने पत्र के उत्तर की प्रतीक्षा की । किन्तु जब अनेक दिन और जाने पर भी उन्हे राजा कुम्भ का कोई उत्तर नही मिला, तब वे छहो राजा साथ अपनी-अपनी सेनाओ को लेकर राज्य पर चढ आये । राजा कुम्भ इससे बहुत चिन्तित हुए कि अब मै क्या करू ? क्योकि छह राजाओ का मुकाबिला करना मेरे लिए सम्भव नही है । जब मल्ली कुमारी के पास यह समाचार पहुचा, तब उन्होने राजा के पास जाकर कहा पिताजी, आप किसी प्रकार की चिन्ता मत कीजिए । मै सबका उपाय कर लूगी । आप सबको कहला दीजिए कि वे लोग स्वय आकर राजकुमारी को पसन्द कर लेवे । यह सुनकर राजा का चित्त शान्त हुआ और उसने उक्त सन्देश सर्व राजाओ को भेज दिया । वे राजा तो यह चाहते ही थे, अत अपनी मनोकामना पूर्ण होती देखकर बहुत प्रसन्न हुए । राजा कुम्भ ने भी नगरी के बाहिर ही उन लोगो के ठहरने की समुचित व्यवस्था कर दी ।

मल्लिकुमारी ज्ञान की सागर थी । उन्होने उन छहो राजाओ को प्रबोध [illegible] का विचार किया । उन्होने एक सुन्दर महल बनवाना प्रारम्भ किया । [illegible] और छह दरवाजे बनवाए । प्रत्येक द्वार वाला कमरा स्वतन्त्र था । [illegible] कि एक कमरे के भीतर बैठे हुए व्यक्ति को नही देख सकता [illegible] कमरो के भीतरी और एक गोलाकार विशाल हाल के भीतर [illegible] सुवर्णमयी पुतली बनवाई । [illegible] सुन्दर उस पुतली को बनवाया, जिसमे

किसी भी दिशा मे वैठा हुआ राजा यह समझे कि राजकुमारी मेरी ही ओर देख रही है।

जब वह महल पूर्ण रूप से तैयार हो गया और सब कमरे पूर्ण साज-सज्जा के साथ सजा दिये गये तब राजकुमारी ने अपने भोजन मे से एक ग्रास उस पुतली के मस्तकवाले छेद से उसमे डालना प्रारम्भ किया। और भोजन के पश्चात् कुल्ला का पानी उसी मे थूक कर उसका ढक्कन वन्द करने लगी। यहा यह ज्ञातव्य है कि मनुष्य की पूर्ण खुराक वत्तीस ग्रास की, स्त्री की अट्ठाईस ग्रास की और नपुसक की चौवीस ग्रास की होती है। तदनुसार मल्ली कुमारी अपने भोजन के थाल मे से सत्ताईस ग्रास स्वय खाती और एक-एक ग्रास उस पुतली के भीतर डालती रही। इस प्रकार अट्ठाईस दिन पूर्ण होने पर राजकुमारी ने उन छहो राजाओ को अपने मोहनागार मे बुलवाया। वे लोग आये और अपने-अपने लिए सुरक्षित कमरो मे वैठ गये।

जब उन्होने अपने-अपने सिहसनो पर वैठकर भीतर की ओर देखा तो उस प्रतिकृति को देखकर मोहित हो गये और यह निश्चय नहीं कर सके कि यह असली राजकुमारी है, अथवा उसकी प्रतिकृति है? वे सब लोग एक टक टकी दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए मन्त्र-मुग्ध से रह गये। इतने में ही राजकुमारी के इशारा पाते ही उस पुतली के शिर पर का ढक्कन खोल दिया गया।

ढक्कन के खुलते ही उसमे से महादुर्गन्ध चारों ओर फैल गई। वे राजा लोग उसे सहन नही कर सके और अपनी-अपनी नाकों को रूमाल से दबाये हुए ज्यो ही वाहिर निकलें, त्यो ही मल्लीकुमारीजी ने उन सबको सम्बोधित करते हुए कहा—राजाओ, यह हलचल क्यों मच गई है? और आप लोग सिहासनो से उठकर वाहिर क्यों भाग रहे हैं? तब वे कहने लगे—राजकुमारि! यहा तो असह्य दुर्गन्ध आ रही है। यहां एक क्षण भी ठहरना हमारे लिए असभव है।

उस समय अवसर देखकर मल्ली कुमारी ने राजाओं को सम्बोधित करते हुए कहा—हे भूपतियो, आप लोग किस पर मोहित हो रहे हैं? [illegible]

मे डाला गया एक-एक ग्रास भी कुछ दिनो मे सडकर आप सबको असह्य पीडा कारक बन रहा है, तब मनुष्य के मल-मूत्रमय इस शरीर मे कैसा भडार भरा होगा और वह कितना दुर्गन्धित और दु खदायी होगा ? इसका तो जरा विचार करो। यह शरीर कितना घृणित और नि सार है। इस पुतली मे मैंने प्रतिदिन एक-एक ग्रास भोजन डाला है और ऊपर से कुल्ला का पानी डाला है। जब इस नकली पुतली की दुर्गन्ध आप लोग सहन नही कर सकते है, तब इस असली शरीर की जिसमे कि प्रतिदिन सत्ताईस-सत्ताईस ग्रास और भर-पूर पानी पहुचता है, उसकी दुर्गन्ध को क्या सहन कर सकेंगे ? मल्ली भगवती के इतना कहते ही सब राजाओ की आखे खुल गई। फिर—

**पुतली देख छउ नृप मोह्या, अवसर विचारी—**
**ढक्कन काढ लियो पुतली को, भभक्यो अनवारी ॥१॥**
**मल्ली जिन बाल ब्रह्मचारी ॥ टेर ॥**
**दुस्सह दुर्गंधि सही न जावे—उठ्या नृप हारी—**
**तब उपदेश दियो श्रीमुख से, मोह दशा टारी ॥२॥**
**महा-असार उदारिक देही, पुतली अति प्यारी—**
**सगकियां पट के भवभव मे, नारी नरक क्यारी ॥३॥**

मल्ली भगवती ने कहा—आप लोग इस शरीर के उपादान कारणो पर तो विचार करे कि यह माता-पिता के अशुचि-रज और वीर्य के सयोग से उत्पन्न हुआ है, रक्त, मज्जा आदि अपवित्र वस्तुओ से भरा हुआ है, इसके नवो द्वारो से अति घिनावनी वस्तुए सदा बहती रहती है। आश्चर्य है कि आप लोग ऐसे घृणित शरीर पर मोहित हो रहे है। यदि शरीर के भीतर की ये वस्तुए बाहिर निकल आवे तो आप लोग देखना भी पसन्द नही करेगे। ज्ञानी पुरुष शरीर के इस ऊपरी चर्म पर न लुभाकर इसके अन्तस्थ आत्माराम से प्रीति करते हैं। उससे प्रीति ही सच्ची कल्याणकारिणी है। आप लोगो को मेरे प्रति इतना अधिक आकर्षण क्यो है ? क्या इसका भी विचार किया है ?

हम लोग इससे पूर्व के तीसरे भव मे परस्पर मित्र थे। आप सबने मेरे साथ दीक्षा ली थी। हम सबकी साधना भी एक साथ हुई थी। तत्पश्चात् हम

आप सब देव पर्याय को प्राप्त हुए। मैंने पूर्व भव की साधना के समय कपट पूर्वक तपस्या की थी, अत यह स्त्री शरीर धारण करना पडा। अच्छा हो कि इस वार हम सव लोग अपनी प्रवल साधना के द्वारा रही सही कमी को दूर करके साध्यभूत शिवपद को प्राप्त कर लेवें, जिससे कि आगे अनन्त काल तक हम सवका अखण्ड साथ वना रहेगा।

मल्ली भगवती के इन उद्वोधक वचनो से राजाओ को जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया और उन्होने अपने अपने पूर्व भव जान लिये। इससे उन सबको मल्ली भगवती के वचनो पर परम श्रद्धा उत्पन्न हुई और वे विनयावनत होकर वोले—भगवति, आपने हम सवके नेत्र खोल दिये हैं। अव आज्ञा दीजिए कि हम सब अपने अनादि कालीन वन्धनो को काटने मे अग्रेसर हो सकें।

भाइयो, देखो जो राजा लोग कुछ समय पूर्व रागी वन रहे थे वे ही अव वैरागी वन गये। उन्होंने, तथा अन्य तीनसौ राजाओ ने मल्ली भगवती के साथ दीक्षाली और अन्त मे उन राजाओ ने उनके ही साथ मोक्ष प्राप्त किया। मैं कह रहा था कि ससार मे दो वातें याद की जाती है—भली और वुरी। मल्ली भगवती के भले कार्य को लोग आज भी याद करते हैं। आप लोगो को भी ऐसे ही आदर्श कर्म करना चाहिए, जिससे कि दुनिया आपको सदा याद करती रहे।

वि० स० २०२७, आसोज वदि-८

सिंहपोल, जोधपुर

●●

# १० | ऊर्ध्वमुखी चिन्तन

सज्जनो, आज मैं आप लोगो के सम्मुख 'चिन्तन' के विषय पर कुछ प्रकाश डालू गा। आशा है कि आप इसमे से अभीष्ट सार ग्रहण कर अपने जीवन को उन्नत बनाने का प्रयत्न करेंगे।

**मननशील : मानव**

मानव मननशील प्राणी है, अत उसका प्रधान धर्म चिन्तन या मनन करना है ? वह किसी भी वस्तु को देखकर उस पर विचार करता है यह क्या वस्तु है ? यह वस्तु जड है, या चेतन ? यदि यह जड वस्तु है तो इसका क्या उपयोग है ? और यदि यह चेतन है, तो इसका क्या उपयोग है ?

यह चिन्तन किस प्रकार करना चाहिए ? जैसे कोई किसान खेत की भूमि को देखकर सर्व प्रथम यह विचार करता है कि यह भूमि उपजाऊ है, या नही ? जब यह निश्चय हो जाता है कि उपजाऊ है, तब वह विचारता है कि यह स्यालू फसल के योग्य है, अथवा उन्हालू फसल के योग्य है। यदि यह स्यालू फसल के योग्य है तो बाजरा, मक्की या जुवार पैदा होगी, अथवा मिर्ची, टमाटर आदि। इस प्रकार उत्तरोत्तर चिन्तन करते हुए वह इस निर्णय पर पहुचता है कि इस भूमि मे अमुक वस्तु की पैदावार अच्छी होगी।

इसी प्रकार एक वैज्ञानिक दो पदार्थो के पृथक्-पृथक् गुण-धर्मो का निश्चय

करके पुन उन दोनो का सम्मिश्रण करके देखता है कि दोनो के सयोग से उत्पन्न वस्तु किस गुण या धर्म वाली है। क्योकि विभिन्न जातीय दो वस्तुओ के सयोग से एक तृतीय जाति की वस्तु उत्पन्न होती है। जैसे सज्जीखार तो काला है और हल्दी पीली है। जब हल्दी और सज्जी को एक साथ घोटा जाता है, तब लाल रग हो जाता है। अत वैज्ञानिक निश्चय कर लेता है कि इन दोनो के मिश्रण से लाल रग उत्पन्न होता है। इसी प्रकार वैज्ञानिक लोग अनेक वस्तुओ का सम्मिश्रण करके नवीन शोध करते रहते है। उनकी ये नवीन शोधे उनके चिन्तन-मनन पर ही आधारित होती हैं। आज हम जो अनेक प्रकार के रासायनिक द्रव्य एव अनेक प्रकार के यत्र देख रहे हैं, वे सब इस चिन्तन-मनन के ही सुफल हैं, जिनको देखकर आज सारा ससार चकित हो रहा है।

आज हम जितना भी विकास देख रहे है वह सब जड का जडके साथ सम्मिश्रण या सयोग का परिणाम है। घडी को देखिये—उसके सब काटे अपने-अपने नियम के अनुसार चलते हैं। सेकिण्ड का काटा सेकिण्ड के हिसाब से, मिनिट का मिनिट के नियम से, घण्टे का घण्टे के हिसाब से और तारीख का तारीख के नियम से चल रहा है। अब तो इसके विषय मे यहाँ तक उन्नति की है कि घडी मे चाबी की भी आवश्यकता नही रही। हाथ मे बाधने पर वह ओटोमेटिक रूप से स्वय चलने लगती है और बराबर ठीक समय बताती है। मनुष्य तो कदाचित् अपनी ड्यूटी देने मे गलती कर सकता है। परन्तु मशीन गलती नही करती है। भाई, ऐसी अद्भुत-विस्मय कारक वस्तुओ का निर्माण भी चिन्तन के द्वारा ही हुआ है। जो लोहा पहिले एक साधारण पदार्थ समझा जाता था, आज उसी से कैसी-कैसी आश्चर्यकारी वस्तुएँ बन रही हैं। वैज्ञानिको ने अपने सतत चिन्तन से ये सब नवीन आविष्कार किये हैं। इन आविष्कारो से समय, श्रम और धन की बचत हुई है। आज लोहे के एक छोटे से पुर्जे के लिए सोने के कितने ही सिक्के देने पडते हैं, तब कही वह प्राप्त होता है। इस प्रकार लोहे का मूल्य भी इस चिन्तन ने ही बढ़ाया है।

### अन्तर्मुखी चेतना

अभी मैंने जडके ऊपर किये गये चिन्तन की बात कही। अब जरा चेतन के विषय मे भी हमे चिन्तन करना चाहिए। आज हम और आपको ऐसा प्रतीत होता है कि क्या कभी हमारा भी उद्धार होगा ? क्योकि प्रति समय हमारे भीतर राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ और छल-छिद्र के भाव आते रहते हैं। नाना प्रकार की कुवृत्तियाँ हमारे भीतर भरी हुई हैं। फिर भी भगवान कहते हैं कि अपने क्षयोपशम को बढाओ, और आत्म-शक्ति को प्रकट करो, तुम्हे अवश्य मोक्ष प्राप्त हो जायगा। जो लोग यह सोचते हैं कि हमारा कल्याण होना सभव नही है,उनका यह विचार अज्ञान-मूलक है। ऐसे विचारो को त्याग कर साहस और धैर्य के साथ यह विश्वास दृढ करना चाहिए कि भगवान ने जो प्रत्येक आत्मा का स्वरूप सिद्धो के समान कहा है, वह सत्य है और हम भगवान के कहे हुए मार्ग पर चल कर अवश्य ही उस शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सकते हैं। भगवान ने कहा है—

**अव्रती व्रतमादाय व्रती ज्ञानपरायणः।**
**परात्मज्ञानसम्पन्नः स्वयमेव परो भवेत्।**

हिंसादि पापो से कलुपित पुरुष पहिले उन पापो को छोड कर व्रत को ग्रहण करे। पुन वह निरन्तर ज्ञान का अभ्यास करे अर्थात् आत्म-स्वरूप का चिन्तन-मनन करे। शुद्ध परमात्म-स्वरूप का चिन्तन-मनन करने वाला आत्मा स्वय ही परमात्मा बन जाता है।

### ध्यान मार्ग

भाइयो, आत्म-चिन्तन करते समय सर्वप्रथम हमे अपनी खामियो और त्रुटियो को देखना चाहिए। पुन जो-जो खामिया नजर आवे, वे किस प्रकार से दूर की जा सकती है, इस बात का विचार करना चाहिए। पुन उन उपायो का आश्रय लेकर उन खामियो या अशुद्धियो को दूर करना चाहिए। तथा जिन उपायो से आत्म-विकास होता है, उन उपायो का आलम्वन करके आत्मविकास करना चाहिए। इसके लिए भगवान ने 'आभीक्ष्ण्य ज्ञानोपयोग' वतलाया है। अर्थात् निरन्तर आत्मस्वरूप का मनन-

चिन्तन करते रहना चाहिए। आचार्यों ने इसी स्थिर मनन-चिन्तन को ध्यान कहा है—

**थिरमज्झवसाण त झाण ज चलतय चित्त।**
**त होज्ज भावणा वा अणुपेहा वा अहव चिता॥**

इस चचल चित्त की जो स्थिर परिणति है,उमका किसी एक वस्तु मे एकाग्र हो जाना, उसे ही ध्यान कहते हैं। उसी को भावना, अनुप्रेक्षा अथवा चिन्तन कहते है। अर्थात् अन्य सब ओर से अपने मन को हटाकर एक मात्र आत्मस्वरूप के चिन्तन मे लगना ध्यान है।

आप पूछेगे कि ज्ञान और ध्यान मे क्या अन्तर है? भाई, वस्तु को जानने का नाम ज्ञान है और उसमे तन्मय हो जाने का नाम ध्यान है। जब मनुष्य किसी एक वस्तु के चिन्तन मे तन्मय हो जाता है, तब उसे दूसरी अन्य वस्तुओ का कुछ भी भान नही रहता है। जैसे चूहे को पकडने के लिए बिल्ली जब अपना लक्ष्य बाधकर बैठती है, उस समय आप के पैरो की आहट या लकडी की आवाज को भी वह नही सुनती है और जहाँ बैठी है, वहा से इधर-उधर को नही सरकती है, क्योकि उमका ध्यान शिकार मे लगा हुआ है। यद्यपि उमका यह आर्त्तध्यान है, अशुभ है, तथापि उसकी एकाग्रता मे यहा प्रयोजन है। ध्यान के चार भेद कहे गये हैं। उनमे आर्त्त और रौद्र ये दो ध्यान अशुभ है और ससार भ्रमण का कारण है। धर्म और शुक्ल ये दो उत्तम ध्यान हैं और मुक्ति के कारण है। जब जीव आर्त्त-रौद्र परिणामो को छोडकर के धर्म और शुक्ल ध्यान को ध्याता है, तब सहज मे ही वह अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। सद्-ध्यान वाले व्यक्ति पर समार की कोई भी वस्तु अपना प्रभाव नही डाल सकती है। इन सद्-ध्यान की लवलीनता का नाम ही समाधि है।

देखो—जिस समय श्री रामचन्द्र जी अपने लघुभ्राता लक्ष्मण के देहावसान के पश्चात् सब राजपाट को छोडकर योगी बन गये, तब वन मे विचरने लगे। उन्हे खाने-पीने की भी सुधि नही रही। उस समय उनके सामने एक ही लक्ष्य था कि मुझे तो परमधाम-शिव पद-को प्राप्त करना है। एक समय वे एक निर्जन वन मे निर्मल शिला पर बैठकर ध्यानस्थ हो गये। उस समय सीता

का जीव जो सयम पालन कर आयुष्य का अन्त करके अच्युत स्वर्ग का इन्द्र बना था। उसने अवधिज्ञान से देखा कि इस समय श्री राम अमुक स्थान पर ध्यानस्थ विराजमान है। उनका अडोल अकप रूप देखकर उसने विचारा कि ये तो ध्यान मे इतने मस्त हो रहे हैं कि कर्मों का क्षय करके शीघ्र ही मोक्ष को चले जावेंगे। इसलिए इनको ध्यान से चलायमान करना चाहिए, जिससे कि ये मोक्ष मे न जाकर यहाँ स्वर्ग मे उत्पन्न हो। फिर हम दोनो मनुष्य पर्याय पाकर के साथ-साथ दीक्षा लेगे और सयम की आराधना करके साथ-साथ ही मोक्ष को जावेंगे। इस प्रकार विचार करके वह स्वर्ग से चला और जहा पर श्री राम ध्यानस्थ थे, वहाँ आया।

भाइयो, एक साधारण देवकी भी विक्रियाशक्ति बहुत भारी होती है, तब यह तो चतुर्निकाय देवो के चौंसठ इन्द्रो मे सर्वोपरि अच्युतकल्प का इन्द्र था, उसकी शक्ति का क्या पार ? उसने श्री राम के समीप आकर सारे वन को छहो ऋतुओ की श्री शोभा से सम्पन्न कर दिया। साथ ही जिस ऋतु मे जिस प्रकार की भोग-उपभोग की उत्तम सामग्री होती है, वह सब उनके सम्मुख उपस्थित कर दी। परन्तु श्री राम ने आख खोलकर भी नही देखा। सीता का जीव वह इन्द्र विचारने लगा—इस प्रकार से मेरा अभीष्ट प्रयोजन सिद्धि नही होगा। तब उसने विक्रिया से साक्षात् सीता का रूप वनाया और सोलह शृगार करके पूर्ण नव यौवना बनकर श्री राम के आगे आकर अपने हाव-भाव दिखाती हुई बोली—स्वामिन् ! उस अग्नि-परीक्षा के पश्चात् मैंने बडी भूल की जो आपके मना करते हुए भी मैंने सयम ले लिया। परन्तु अब तो मुझसे आपका वियोग सहा नही जाता है, आपकी याद मुझे सतत सताती रहती है, चित्त मे एक क्षण को भी शान्ति नही मिल रही है। अत अब मैं आपसे अलग नही रहना चाहती हू। मेरे अपराध को आप क्षमा करे और अपने चरणो मे मुझे शरण प्रदान करें। इस प्रकार उसने श्री राम को डिगाने का भर सक प्रयत्न किया। परन्तु वे अपने ध्यान से रच-मात्र भी विचलित नही हुए।

अब वह सीता का जीव सोचने लगा कि इस प्रकार से तो ये ध्यान से

चल-विचल नही हो रहे हैं। अत उसने उनके सामने बत्तीस प्रकार के नाटको का अभिनय करना प्रारम्भ किया। सगीत और वाद्यो की मधुर ध्वनि से सारे वन को गु जित कर दिया। वन के सारे पशु-पक्षी मत्र मुग्ध से स्तम्भित रह गये और स्वर्ग के देवता भी आश्चर्य-चकित हो उस अभिनय पर मोहित हो गये। पर श्री राम को धन्य है कि उनके हृदय मे किंचित्मात्र भी विकार भाव तो क्या, विचार तक नही आया कि यह सब मेरे सामने क्या हो रहा है ? यह कौन है और क्या कर रहा है। अन्त मे हताश होकर इन्द्र भक्ति-भाव से अवनत होता हुआ बोला—

**देहवन्त की यह दशा, वर्ते देहातीत।**
**इस ध्यानी के चरण मे, है वन्दन अगणीत ॥**

हे भगवन्, आप देह धारी है और सर्व इन्द्रियां है, फिर भी आपकी यह अडोल अकप्य मुद्रा देहातीत के समान दृष्टि-गोचर हो रही है। आपको न शरीर का भान है और न इन्द्रियो के किसी भी विषय मे ममता ही है। आप मेरे इन अगणित प्रलोभनो से भी प्रलोभित नही हुए। आपको धन्य है, आपकी निर्विकारता को धन्य है। इस प्रकार वह सीता का जीव श्री राम की अनेक प्रकार से स्तुति और वन्दना करने लगा।

उधर श्री राम का ध्यान शुद्ध से शुद्धतर होने लगा। शुक्ल ध्यान प्रकट हो गया। उन्होंने क्षपक श्रेणी पर आरोहण प्रारम्भ किया। मोह कर्म की प्रवृत्तियां क्षय होने लगी और उत्तरोत्तर गुणस्थानो को प्राप्त होते गये। उन्होंने सर्व प्रथम मोहकर्म का नाश किया। क्योकि यह कर्म सब कर्मो का राजा है, इस प्रकार सर्वप्राणियो पर इस प्रकार का पर्दा पडा हुआ है कि किसी को भी अपना भान नही है। उसके प्रभाव मे सारे जगवासी प्राणी इस चतुर्गति रूप ससार मे परिभ्रमण कर रहे हैं और कर्म रूपी चोर आत्मा के सर्वस्व को लूट रहे हैं, फिर भी किसी को अपनी कुछ भी सुध-बुध नही है। ज्ञानियो ने ठीक ही कहा है कि—

**मोहनीय के जोर, जगवासी घूमे सदा।**
**कर्म चोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं ॥**

भाइयो, इस मोहनीय कर्म का घेरा बडा भयकर है। इसने आत्मा को सर्व ओर मे खूब जकड रखा है। इसके प्रभाव से जगत के जीव इस प्रकार घूम रहे है, जिस प्रकार कि सपेरे के पुगी बजाने पर साप घूमता है। ससारी जीव मोह निद्रा मे बेहोश सो रहे है और कर्म रूपी चोर आत्मा के ज्ञान, दर्शनादि धन को लूट रहे है। किन्तु जब—

**सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमै।**
**तब कछु बनै उपाय, कर्म-चोर आवत रुकै॥**

सद्‌गुरुदेव मोह निद्रा मे अचेत पडे हुए प्राणी को अपने मधुर वचनो से जगाते है और जब इसकी मोह नीद कुछ उपशान्त होती है, तभी आत्म-कल्याण का कोई उपाय बन पाता है और तभी ये आत्मा के भीतर आने वाले कर्म चोर आने से रुकते है।

**मोह का नशा उतारो!**

जब मोह का नशा उतरता है, तभी कोई उपाय लागू होता है। तब यह आत्मा प्रबुद्ध होकर अनन्तानुवन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कपायो को और दर्शन मोह की मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यकत्वप्रकृति इन सातो का क्षय करके पहिले क्षायिक सम्यग्दृष्टि बनता है। पुन श्री राम समाधि मे लीन होकर क्षयक श्रेणी पर चढकर प्रथम शुक्लध्यान से अन्तमुहूर्त मे चारित्र मोहनीय की शेष रही हुई इक्कीस प्रकृतियो का क्रम से क्षय करके दशवें गुण स्थान मे शेष रहे एकमात्र सज्वलन सूक्ष्म लोभ का क्षय कर पूरे मोह कर्म का अन्त करके वीतराग—वीतमोह बन करके वारहवे गुणस्थान मे पहुचे, और वहा पर द्वितीय शुक्लध्यान के द्वारा अन्तमुहूर्त मे ही ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय इन शेप तीनो घातिकर्मो का क्षय करके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य रूप अनन्त चतुष्टय को प्राप्त कर सर्वज्ञ, सर्वदर्शी वनकर सयोग केवली वन गये। इसी समय शक्रेन्द्र का आसन कम्पित हुआ और श्री राम को केवलज्ञान उत्पन्न हुआ जानकर वह सभी स्वर्गों के देव-परिवार के साथ उनके ज्ञान कल्याणक का महोत्सव करने के लिए आया। यह देखकर सीता का जीव वह अच्युतेन्द्र विचारने लगा—अरे!

मैंने क्या सोचा था और यह क्या हो गया ? उसने तुरन्त अपना रूप-परिवर्तन किया और सर्वदेव—इन्द्रो के साथ श्री राम की स्तुति करने लगा। अन्त मे सबके साथ केवल ज्ञान महोत्सव करके वह भी सर्वदेवो के साथ अपने स्थान को चला गया।

भाइयो, श्री राम के समान चिन्तक होना चाहिए। ऐसे ही दृढ एव अविचल चिन्तन से चमत्कार प्राप्त होता है। विना दृढ आत्म-चिन्तन के चमत्कार आज तक न किसी को प्राप्त हुआ है और आगे प्राप्त होगा ही। इस चमत्कार के चक्कर मे यह सारी दुनिया पागल हो रही है और सोचती है कि यहा पर चमत्कार होगा, वहाँ पर होगा, इस भ्रम से सर्वत्र भटकती फिर रही है। परन्तु—

> फरामात कलियुग मे थोडी, भोले खाते गोता है,
> निज पुरुषारथ को तज करके जन-जन आगल रोता है।
> हिमिये किमिये फिरे भटकते वधी पैठ डुवोता है,
> इतना क्यो नहीं सोचो मनमे, नागा कहा निचोता है ॥

भाई, लेकिन कहावत है कि 'नगा क्या नहावे, क्या निचोडे' क्योकि जो नगा नहायगा, तो किस वस्त्र को निचोडेगा ? इसी प्रकार जो करामात से स्वयं [illegible] है—रहित है—वे दूसरो को क्या करामात दिखावेंगे ? दूसरे से करामात पाने की आशा करना निरी अज्ञानता है ? वह [illegible] की [illegible] में [illegible] ही प्राप्त है। परन्तु उस शक्ति के ऊपर कर्मो का जो [illegible] पडा हुआ है, उसे दूर करने की आवश्यकता है। उसके दूर होते ही अनेक ऋद्धि-सिद्धियों की करामाते भीतर से एकदम प्रकट हो जावेंगी।

कर्मो का वह मलवा [illegible] से, [illegible] न दूसरों से दूर नहीं है—वह तो आत्म-चिन्तन से ही दूर होगा। जो आत्म-चिन्तक पुरुष है, उनके लिए वह सिद्धियों का भडार [illegible] खुला रहता है। कहा जाता है कि [illegible] 'उप्पज्जेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा' इन तीन पदों का चिन्तन [illegible] अन्तर्मुहूर्त में चौदह पूर्वो का [illegible] प्राप्त हो गया। [illegible]

गये और सात बुद्धि, ऋद्धिया उन्हे प्राप्त हो गई। यह सब चिन्तन का प्रभाव है।

परन्तु हमारी परिणति तो उस व्यापारी के समान है, जिसने माल को खरीदा और भडार मे डाल कर ताला बन्द कर दिया। वर्षों तक उसकी सार-सभाल नही की। जब कभी होश आया और उसे खोल करके देखता है, तब माल को सडा-गला, और दीमक आदि से खाया हुआ पाता है। अब वह जैसे उसके किसी काम का नही रहा और सारी पूजी साफ हो गई। इसी प्रकार का हमारा हाल है। हमने आतम-धन को खरीद करके उसे अजान के कोठे मे डाल दिया और उसके बाद कभी उसकी सार-सभाल नही की। तब आतमाराम का माल तो कर्म-रूपी चोर साफ कर गये। अब जो कचरा बचा है, उस पर हम राजी हो रहे है। यही हमारी भारी भूल है। हमे उन माल खानेवाले कर्म लुटेरो को कान पकड कर घर से बाहिर निकालना चाहिए और जो माल बचा है, उसकी सार-सभाल करना चाहिए। जब आप इस प्रकार सावधान होगे, तभी अपने आतम धन को बचा सकेगे।

### मूल को सींचो

भाइयो, हमारी दशा उस माली के समान हो रही है जो वृक्षो के मूल मे पानी नही सीचकर उसके पत्तो और डालियो पर सीचता है। परन्तु क्या ऐसा करने से वे वृक्ष हरे-भरे रह सकेंगे ? कभी नही ? भाई, पानी तो जब जड मे जायगा, तभी वे हरे-भरे रह सकेंगे। इसी प्रकार आज हम ऊपर से क्रियाए कर रहे है, त्याग कर रहे है। फिर भी अहकार कितना ? कि मैंने यह किया है ? अरे, तूने क्या किया है ? अनन्त-अनन्त महापुरुषो ने इससे बडे-बडे महान् त्याग किये है ? तू कहता है कि मैं ऐसे विवेक से चलता हू, मैं ऐसी तपस्या करता हू और मैं अपने शरीर को इस प्रकार अपने अधीन रखता हू ? अरे, तू करता है तो क्या दूसरे के लिए करता है ? जो इस प्रकार अभिमान दिखाता है ? और यथार्थ मे तो तू अपने लिए भी नही कर रहा है। क्योकि अहकारियो की क्रियाए तो पाप-बन्ध की ही कारण होती है। उनमे आत्मा का कोई भी हित साधन नही होता है। तू तो भोग-साधन के लिए ही यह सब कर रहा है। अतः

तेरी यह सब करणी व्यर्थ है। भले ही तू शरीर को सुखाकर काटा कर देवे, परन्तु विवेक विना सब करणी दुखकारी है।

जब तक आत्मा मे विवेक प्रकट नही होगा, तव तक सम्यक्त्व रूपी सूर्य का उदय नही होगा। और जब तक सम्यक्त्व प्रकट नही होगा, तब तक आत्म-चिन्तन नही होगा। और जब तक आत्म-चिन्तन नही होगा, तब तक बाहिरी जितनी भी क्रियाए की जायेंगी, वे सब दुखकारी ही होगी। ज्ञानियो ने कहा है—

**तीन लोक तिहु काल माहि नहि, समकित सो सुखकारी।**
**सकल धर्म को मूल यहीं इस विन करणी दुखकारी॥**

भाई, तीनो लोको मे और तीनो कालो मे सम्यक्त्व के समान कोई अन्य वस्तु सुखकारी नही है। सर्व धर्म का मूल यही है। इसके विना सभी क्रियाए केवल दुखो को ही देने वाली है। अत पहिले हेय-उपादेय का विचार कर, चिन्तन कर-कि मैं जो क्रियाएँ कर रहा हू, वे वास्तव मे मेरे आत्मा का कल्याण करने वाली हैं, या नही हैं? जब तक आत्मा मे विषय-कषाय की तरगे उठ रही हैं, तब तक कोई करणी तेरे को सच्ची शान्ति देने वाली नही है। यदि तुझे सच्ची शान्ति पाना है तो तू इस विषय-कषाय की प्रवृत्ति को छोड दे, अहकार को छोड दे और आत्म-चिन्तन कर। चिन्तन करने से ही आत्मा अपने आप सुमार्ग पर आ जायगा और भला-बुरा अपने ऊपर तुझे दिखने लगेगा। जब तक तू आत्म-चिन्तन नही करेगा, तब तक अभीष्ट सिद्धि नही होगी। हा, जैसा जो कुछ चल रहा है, सो ठीक है। मैं उसे बुरा तो क्यो कहू? न कुछ से कुछ करना अच्छा ही हैं। मारवाडी मे कहावत है कि 'गूगो बेटो मूडा से बोलियो'। भले ही उसने दो-चार गालिया ही मुख से निकाली हो? परन्तु बाप को तो उसके मुख की बोली सुनकर हर्ष ही होता है कि चलो आज यह बोला तो है? इसी प्रकार आरम्भ और विषय-कषाय की प्रवृत्ति मे पड़े हुए आप लोग जो कुछ थोडी बहुत आध्यात्मिक करनी कर रहे हैं, तो वह भी अच्छा ही है। हम उसे खोटा तो क्यो कहे? परन्तु मजा इसमे नही है। मजा तो इसमे है कि हमारा आत्म-चिन्तन बढ़े। यदि चिन्तन की यह धारा अन्तरग

मे प्रवाहित होने लगे, तब खान-पान आदि क्रियाओ के करते हुए भी उस पर कोई असर नही होगा ।

### धारा बदल गई

गृहस्थावस्था मे जिस समय स्थूलभद्र वेश्या के यहा बारह वर्ष तक रहे, उस समय उनका चिन्तन आर्त्तध्यान रूप था । वे उसके रूप-लावण्य, वचन-माधुर्य और नृत्य-सगीत आदि पर विचार करते हुए उनमे अत्यन्त आसक्त रहे । उनका उस पर अगाध मोह था । अत उनका सारा चिन्तन तदनुरूप ही चलता रहा । वे उस काम-चिन्तन मे यहा तक बेभान हो गये कि अपने मा-बाप तक भूल गये । जाति, समाज और कुल के गौरव को भी भूल गये । और पूरे वेश्या-सेवी होकर बारह वर्ष तक उसके यहा रहे । किन्तु जब उनके ज्ञान-नेत्र खुले और आत्म-चिन्तन प्रकट हुआ, तो सारा नक्शा ही बदल गया । उनके जीवन की धारा ही बदल गई । आत्म-चिन्तन का आनन्द प्राप्त होते ही विषयो से उन्हे घृणा हो गई और वेश्या के रूप मे जो आसक्ति थी, वह एकदम चली गई । वे सोचने लगे—अरे स्थूलभद्र, तू कितनी स्थूलबुद्धि का हो गया, कि इस क्षण-भगुर शरीर के रूप-लावण्य पर इतने वर्षो से पागल हो रहा है ? यह शरीर तो दुर्गन्धमय अति अशुचि पदार्थो से भरा हुआ है । इसके स्वरूप का तू जरा विचार तो कर कि यह कैसा है ? कहा है—

> **पल-रुधिर-राध-मल थैली, कीकस वसादि तै मैली ।**
> **नव द्वार बहै घिनकारी, अस देह करै क्यो यारी ।**

अरे, यह देह तो मास, रक्त, राध, मल, मूत्र, हड्डी चर्बी आदि से भरी हुई है । इसके नवो ही द्वार सदा ही घृणा-कारक मल को बहाते रहते है । तू इस देह मे क्यो यारी (प्रीति) कर रहा है ?

> **दिपै चाम चादर मढी, हाड़ पीजरा देह ।**
> **भीतर या सम जगत मे और नही घिन गेह ।।**

अरे, यह मल-मूत्र का और सभी घिनावनी वस्तुओ का घर है और हाडो का पीजरा है । ऊपर से जो यह चर्म रूपी चादर मढी हुई है, सो

तुझे अच्छी लग रही है। परन्तु इसके समान तो जगत मे और कोई घृणित वस्तु नही है। इसलिए अब तू इससे अपनी प्रीति को छोड। ऐसा चिन्तन करते-करते उन्हे वेश्या से नफरत हो गई और उन्होंने उसका त्याग कर दिया।

भाई, भीतर के भावो को सहज मे पता नही चलता है। ऊपर से मिष्ट-भाषी देखकर आपने किसी व्यक्ति से मित्रता कर ली। जब घनिष्ट सम्पर्क बढा और ज्ञात हुआ कि यह तो मेरा माल हडपना चाहता है, अत यह मेरे काम का नही है। जैसे ही यह पता चलता है, वैसे ही आप लोग उस मित्र से तुरन्त अपना नाता तोड लेते है। इसी प्रकार स्थूलभद्र को जब वेश्या के यथार्थ स्वरूप का बोध हो गया तो उन्होंने तत्काल उसका परित्याग कर दिया। यद्यपि वेश्या वही की वही है और नृत्य-गान भी पूर्व के समान ही है। तथा स्थूलभद्र भी वही के वही है। किन्तु अन्तरग मे जो आत्म-चिन्तन की धारा प्रवाहित होने लगी, उससे वे सब हाव-भाव और विभ्रम-विलास उन्हे नीरस प्रतिभासित होने लगे।

जब वे ही स्थूलभद्र वेश्या से विरक्त एव ससार, देह और भोगो से उदास होकर साधु बन गये और अपने ब्रह्मचर्य की परीक्षा के लिए उसी वेश्या के यहा चौमासा कर रहे, तब उसने उन्हे रिझाने के सहस्रो प्रयत्न किये। अन्त मे वह थक गई, पर उन्हे न लुभा सकी—उन्हे चलायमान न कर सकी। तब कहने लगी—भगवन्,मैं हार गई और आप जीत गये। हे भगवन्,मेरा भी उद्धार करो। उसकी यह प्रार्थना सुनकर स्थूलभद्र ने अपनी वैराग्य-रस से परिपूर्ण वाणी मे कहा—तू इन विषय-भोग की दल-दल मे पडकर क्यो अपना यह अनमोल नर भव व्यर्थ खो रही है। यह शरीर अनित्य है, गलना, सडना और विनष्ट होना ही इसका स्वभाव है। इसके ऊपर तो यह चर्म-चादर लिपट रही है, जिससे यह ऊपर से सुन्दर सा दिखता है। परन्तु इसके अन्तर के स्वरूप को तो देख। यदि इसके भीतर भरी हुई सब वस्तुए बाहिर आ जाय, तो देखना दूभर हो जायगा।

दैवादन्त स्वरूप चेद् बहिर्देहस्य किं परं।
आस्तामनुभवेच्छेद्य-मात्मन् को नाम पश्यति ॥

हे सुभगे, यदि दैव से इस देह का अन्त स्वरूप बाहिर आजाय, तो हे आत्मन्, अनुभव करने की इच्छा तो दूर है, कोई इसे देखना भी नही चाहेगा ?

एव पिशित - पिण्डस्य क्षयिणोऽक्षयशंकृतः ।
गात्रस्यात्मन् ! क्षयात्पूर्वं तत्फलं प्राप्य तत्यज ॥

यह शरीर मास का पिण्ड है, क्षय होने वाला है और सर्व प्रकार से घृणा का घर है। परन्तु इसमे एक गुण अवश्य है कि यदि कोई साधना करे, तो इससे अक्षय सुख प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए हे आत्मन्, इस शरीर के क्षय होने से पूर्व ही उस उत्तम फल को प्राप्त करके फिर इसका त्याग कर दे।

इस प्रकार स्थूलभद्र के वैराग्य वर्धक उपदेश से उस वेश्या ने श्रावक-व्रतो को अगीकार किया और वह श्राविका बन गई। और पाच अणुव्रतो का पालन करने लगी।

आज तो दुनिया मे अणुव्रत आन्दोलन का ढिढोरा पीटा जा रहा है। परन्तु अणुव्रतो का उपदेश तो सभी तीर्थंकर भगवन्तो ने दिया है। आज यह कोई नई वात नही है। परन्तु आज इसका कोरा दिखावा किया जा रहा है। जैसे होली के वादशाह का किया जाता है। वह कितना ठाठ दिखाता है ? परन्तु किसी को देने के लिए उसके पास कुछ भी नही है। इसी प्रकार अणुव्रत का ढिढोरा पीटना है।

हा, अणुव्रतो को स्वीकार करते समय उस वेश्या ने व्रह्मचर्याणुव्रत के नियम लेते हुए कहा भगवन्, मं कुशील का सर्वथा त्याग करती हू। केवल एक आगार रखती हू कि नगर के राजा या राज्याधिकारी के आने पर छूट है। यद्यपि मैं शक्ति भर उन्हे समझाने का और अपना शीलव्रत पूर्ण रूप से पालन करने का प्रयत्न करूगी।

**चिन्तन वदला : गणिका श्राविका वनगई**

इस प्रकार स्थूलभद्र मुनि उस वेश्या को भी श्राविका वनाकर और अपना चौमासा पूर्ण करके विहार कर गये। तदनन्तर राज्य के किसी अधिकारी ने

राज्य का कोई उत्तम कार्य करके राजा से प्रसन्नता-पूर्वक वर प्राप्त किया। राजा ने पूछा—तू क्या इनाम चाहता है? उसने कहा—महाराज, मैं एक रात के लिए उस स्थूलभद्र वाली वेश्या के यहाँ जाना चाहता हू। राजा ने आज्ञाप्रदान कर दी। राजा की ओर से यह सूचना उस वेश्या को कर दी गई। जिसे उसने शिरोधार्य किया। रात्रि मे यथासमय वह अधिकारी वेश्या के यहाँ पहुचा। उसने वेश्या को उदासीन देखकर कहा—क्या तूने स्थूलभद्र को ही अपना सर्वस्व समर्पित कर रखा है? देख, वह तो दीवान का पुत्र है। किन्तु मैं सेनापति हू। मेरी जब तक कृपा है, तब तक ही तेरा सब कुछ ठीक है। अन्यथा तेरा पासा पलटने मे देर नही लगेगी। मेरे आने पर भी तू उदासीनता क्यो धारण किये हुए है?

वेश्या ने कहा—सेनापति साहब, स्थूलभद्र की तुलना आप नही कर सकते है? वह तो एक महान् कलाकार है। उसने पूछा—उसमे कौन-सी कलाकारिता है? मैं एक बाण से सौ बाण निकालता हू और एक क्षण मे सौ को मार सकता हू। क्या स्थूलभद्र के पास यह कला है? वेश्या बोली—आप ठीक कहते हैं। उनकी बात रहने दीजिए। किन्तु मेरे पास जो कला है, वह भी आपके पास नही है। तब फिर आप स्थूलभद्र की कला का क्या माप कर सकते है? तब सेनापति बोला—देखू तो सही? तेरी वह कला कैसी है? तब वेश्या ने सोने के एक थाल को सरसो से भरा। पुन उसके बीच मे एक सूई गाड दी उसके ऊपर बत्तीस पखुडियो का एक कमल लगाया। पुन एक-एक पखुडी के ऊपर क, ख, ग, आदि बत्तीस अक्षर लिखे। फिर उसने क्रम से सब पखुडियो पर नृत्य करके दिखाया। मगर थाल मे से एक भी सरसो का दाना बाहिर नही गिरा। इस प्रकार पूरे एक घण्टे तक उस कमल के ऊपर उसने नृत्य किया। उसका यह अपूर्व नृत्य कौशल देखकर वह सेनापति चित्र-लिखित-सा रह गया। जब वेश्या ने नृत्य बन्द किया तो उसने उसके नृत्य की भर-पूर प्रशसा की। तब वेश्या बोली—साहब, स्थूलभद्र की कला के सामने मेरी कला तो उसका लाखवाँ अश भी नही है यदि स्थूलभद्र से कोई बडा कलाकार आवे

तो मेरा हृदय उसकी ओर आकर्षित हो सकता है, अन्यथा नही । यह सुनकर वह लज्जित होकर वापिस चला गया ।

भाई, यह वेश्या के अध्यात्म-चिन्तन का प्रभाव है कि एक राज्य का सेनापति इस प्रकार नत मस्तक होकर चला गया ।

स्थूलभद्र जी की उस महान् साधना का ही यह परिणाम है कि आज लोग भ० महावीर और गौतम स्वामी के पश्चात् अनेक महान् आचार्यों के हो जाने पर भी उनका नाम स्मरण किया जाता है । यथा—

**मगल भगवान् वीरो मंगल गौतमो गणी ।**
**मगल स्थूलभद्राद्या जैन धर्मोऽस्तु मंगलम् ॥**

अर्थात् भ० महावीर हमारा मगल करे, गौतम गणधर मगल करे, स्थूलभद्रादिक आचार्य मगल करे और जैनधर्म हमारा मगल करे ।

भाइयो, आप लोग जिस उपदेश को सुन रहे है, यदि उस पर ही अपना चिन्तन चला देवे तो फिर आपका ममत्व न धन पर रहेगा और न शरीर पर ही रहेगा । अपने आप सर्व वस्तुओ पर से आपका ममत्व कम हो जायगा । आप लोगो के पास यह आत्म-चिन्तन तो है नही । किन्तु धनी पुरुष मानता है कि मनुष्य तो मै ही हूं । मेरे मुनीम या नौकर-चाकर मनुष्य नही है, वे तो मेरी सेवा करने के लिए ही है । इस प्रकार धनी पुरुष ने अपना सारा चिन्तन इन बाहिरी बातो पर ही लगा रखा है । तब उसे आध्यात्मिक उपलब्धि कहां से हो सकती है । इसी प्रकार विद्वानो को अपनी विद्वत्ता का, बलवानो को अपनी बलवत्ता का और रूपवन्तो को अपनी रूपवत्ता का भी गर्व नही करना चाहिए । किन्तु यह सोचना चाहिए कि कामदेव के सामने मेरा क्या रूप है ? बाहुबली के सामने मेरा क्या बल है और केवलीभत केवलियों के सामने मेरी सत्ता कितना है ? जब तक मनुष्य अपने से अधिक शक्तिशाली और [illegible] नही देखता है, तब तक ही उसे गर्व रहता है । पर भाई, पहाड़ के पास जाने पर तो [illegible] भी दूर हो जाता है ।

भाइयो, आचार्य ने चित्त का ध्यान की एकाग्रता के लिए कहा है—

मा मुज्झह मा रज्जह मा दुस्सह इट्ठणिट्ठ अत्थेसु ।
थिरमिच्छह जइ चित्तं विचित्तझाणप्पसिद्धीए ॥

हे भव्य जीवो, यदि तुम विविध ध्यानो से आत्मसिद्धि के लिए चित्त को स्थिर करना चाहते हो तो मोह और राग मत करो, तथा अनिष्ट पदार्थों मे द्वेष मत करो।

अत प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह जो कुछ सुने, उस पर चिन्तन करे। हेय को छोडे और उपादेय को ग्रहण करें। ऐसा करने से वह सासारिक सफलताओ के साथ आध्यात्मिक सफलता प्राप्त कर लेगा।

वि० स० २०२७ आसोजवदि–६

सिंहपोल, जोधपुर

●●

# ११ | संघ-व्यवस्था में आचार्य का महत्व

आयरिया मज्झ मंगलं आयरिया मज्झ देवया ।
आयरिए कित्तइत्ताण वोसिरामित्ति पावगं ।।

श्रीमद् दशवैकालिकसूत्र के नव मे अध्ययन मे बताया गया है कि साधु-सघ का सचालक आचार्य कैसा होना चाहिए ? सघ की व्यवस्था, सघ का सुचारु रूपेण सचालन, समृद्धिपना और सघ की सुदृढता ये सारी बाते किसके ऊपर आधारित है ? किस पर निर्भर है ? उत्तर मे कहा जायगा कि सघ-सचालक पर निर्भर हैं अर्थात् आचार्य पर ।

### आचार्य के गुण

यदि सघ का सचालक कुशल, लोक व्यवहारज्ञ, दूरदर्शी और निपुण है, तो उसके सघ की व्यवस्था मे कभी गडवडी उत्पन्न नही हो सकती है। यह सघ का आचार्य कैसा होना चाहिए ? इस विपय मे आगम मे कहा गया है—

पवयण-जलहि-जलोयर-ण्हायामल-वुद्धि-सुद्ध छावासो ।
मेरुव्व णिप्पकंपो सुरो पचाणणो वज्जो ।।
देस-कुल-जाइसुद्धो सोमगो संग-भग-उम्मुक्को ।
गयणव्व णिरुवलेवो आयरियो एरिसो होइ ।।

सगह-णिग्गह कुसलो सुत्तत्थ विसारओ पहियकित्ती ।
सारण-वारण-साहण-किरियुज्जुत्तो हु आयरियो ॥

प्रवचनरूपी समुद्र के जल के मध्य मे स्नान करने से अर्थात् परमागम के पूर्ण अभ्यास और अनुभव से जिसकी बुद्धि निर्मल हो गई है, जो निर्दोष रीति से छह आवश्यको का पालन करते हैं, जो मेरु के समान निष्कम्प हैं, जो शूर-वीर है, सिह के समान निर्भय हैं, श्रेष्ठ है, देश, कुल और जाति से शुद्ध हैं, सौम्यमूर्त्ति है, अन्तरग और बहिरग दोनो प्रकार के परिग्रह सग से उन्मुक्त है और आकाश के सामान निर्लेप हैं, ऐसा महापुरुप आचार्य होता है। जो सघ के सग्रह अर्थात् दीक्षा देने मे, और निग्रह अर्थात् प्रायश्चित दड देने मे कुशल हो, सूत्र और अर्थ की विचारणा मे विशारद हो, जिनकी कीर्त्ति सर्वत्र फैल रही हो और जो सारण (आचरण) वारण (निषेध) एव साधन (व्रतो का सरक्षण) रूप क्रियाओ मे निरन्तर उद्यु क्त हो, ऐसा व्यक्ति ही आचार्य होने के योग्य है।

## आचार्य की गरिमा

इस प्रकार के आचार्य किस प्रकार से सघ मे शोभा को प्राप्त होते हैं इस विषय मे कहा गया है—

जहा निसते तवणच्चिमाली, पभासई केवल भारह तु ।
एयायरिओ सुयसील - बुद्धिए, विरायई सुरमज्झे व इंदो ॥

जैसे रात्रि के अन्धकार का नाशक तपन-किरण वाला सूर्य दिन मे सारे भरत क्षेत्र को अकेला ही प्रकाशमान करता है। इसी प्रकार आचार्य भी सारे सघ को अपने तेजस्वी प्रताप रूप प्रकाश से सदा प्रकाशमान करता है और जो अपने श्रुत, शील और बुद्धि से सघ मे इस प्रकार विराजमान है जैसे कि इन्द्र देवो के मध्य मे विराजता है। आचार्य के विषय मे और भी कहा गया है—

जहा ससी कोमुइजोग जुत्तो नक्खत्त तारागणपरिवुडप्पा ।
खे सोहइ विमले अब्भमुक्के एव गणी सोहइ भिक्खुमज्झे ॥

जिस प्रकार शरद् पूर्णिमा का चन्द्रमा अट्ठाईस नक्षत्र, अट्ठासी ग्रह और छियासठ हजार नौ सौ पचहत्तर (६६,६७५) छोटा-मोटी तारो के परिवार मे

घिरा हुआ निर्मल मेघ-रहित आकाश मे शोभायमान होता है, उसी प्रकार गणका स्वामी—सघपति भी अपने सघ के साधुओ के मध्य मे शोभायमान होता है।

शरद्-पूर्णिमा के चन्द्रमा के लिए कहा जाता है, वह अमृत वरसाता है, इसीलिए उसका नाम भी सुधारोचिस् या अमृतवर्षी रखा गया है। सिद्धान्त की दृष्टि से चन्द्र इन्द्र तो आसौज शुक्ला पूर्णिमा को चन्द्र विम्व पर आता है। शेष दिनो मे तो उसके प्रतिविम्व ही आते है। उक्त दोनो पूर्णिमाओ मे चन्द्रमा से बरसती हुई अमृतमयी किरणो के सम्पर्क से जगलो मे उत्पन्न होने वाली अनेक औषधिया अमृत से परिपूर्ण होकर महान् गुणवाली हो जाती है। आज भी अनेक अनुभवी और पुराने वैद्यलोग उक्त पूर्णिमाओ के रात्रि भर चन्द्र प्रकाश मे औपधिया रखते है कि जिससे उनमे भी अमृत का प्रभाव पड सके और वे अति लाभकारी वन जावें। इसी कारण चन्द्रमा को औपधीश्वर भी कहते है। इस प्रकार का अमृतवर्षी चन्द्रमा जैसे अपने पूरे परिवार के साथ गगन मण्डल मे शोभा पाता है, इसी प्रकार से उपर्युक्त सर्व गुण-सम्पन्न आचार्य भी अपने मुनि मण्डल मे शोभा पाता है।

भाइयो, जब चन्द्रमा में शीतलता है, अमृतवर्षीपना है, प्रमोद उत्पादकता है और प्रकाशमान ज्योति है, तभी तो वह जगदानन्द-दायक कहा जाता है। और सारा संसार उसे देखकर अपनी तपन को बुझाकर शान्ति का अनुभव करता है। इसी प्रकार श्रावक-श्राविका और साधु-साध्वीरूप चतुर्विध संघ का स्वामी आचार्य को कहा गया है। अथवा जैसे अपने ऐश्वर्य, तेज और प्रभाव से इन्द्र अपने देव-परिवार के मध्य शोभा पाता है, उसी प्रकार आचार्य को भी कहा गया है। पर ये सब उपमाए आचार्य मे कब संभव है? जब कि उसमें उपर्युक्त गुण हो? संघ की उन्नति या अवनति का सारा भार और उत्तरदायित्व आचार्य के ऊपर रहता है। यदि आचार्य सर्वप्रकार से योग्य नहीं है, तो संघ भी योग्य नहीं होगा। शास्त्रकारो ने आचार्य के छत्तीस विशेष गुण बतलाये है। उसे साधु के साधारण गुणों से विशिष्ट छत्तीस गुणो का धारक होना चाहिए। जैसा कि कहा है—

छत्तीस गुण समग्गो णिच्चं आयरइ पंच आयारं।
सिस्साणुग्गहकुसलो भणिओ सो सूर परमेट्ठी॥

जो छत्तीस गुणो से सयुक्त हो, पाच आचारो का नित्य आचरण करें और शिष्यो के अनुग्रह करने मे कुशल हो, वह आचार्य परमेष्ठी कहा गया है।

### आचार्य के छत्तीस गुण

आचार्य के छत्तीस गुण इस प्रकार कहे गये हैं—

अष्टावाचारवत्त्वाद्यास्तपांसि द्वादश - स्थिते'।
कल्पादशाऽऽवश्यकानि षट् षट्त्रिंशद् गुणा गणे.॥

आचारवत्त्व आदि आठ गुण, अनशनादि बारह तप, आचेलक्यादि दशकल्प और सामायिकादि छह आवश्यक, ये छत्तीस गुण आचार्य के कहे गये हैं। इनमे आचारवत्त्वादि आठ गुण इस प्रकार कहे गये है—

आयारव च आधारव च ववहारव पकुव्वो य।
आयायाय विदसी तहेव उप्पीलगो चेव॥
अपरिस्साई णिव्वायओ य णिज्जावओ पहिद कित्ती।
णिज्जवण गुणोवेदो ए रिसओ होदि आयरिओ॥

आचारवान् हो, अर्थात् दर्शनाचार, ज्ञानाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार इन पच आचारो का स्वय पालन करे और अपने शिष्यो को करावे। जैसा कि कहा—

दसण-णाण पहाणे वीरिय-चारित्त-वर तवायारे।
अप्प परं च जुजइ सो आयरिओ गणी झेजो॥

यही चतुर्विध सघ का नायक गणी आचार्य ध्यान करने के योग्य है जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, वीर्य और उत्कृष्ट तप इन पाच आचारो मे अपने को भी नियुक्त करता है और अन्य शिष्यादि को भी नियुक्त करता है।

आचार्य का दूसरा गुण आधारवान् है। उसे शास्त्रो का भली-भाति से ज्ञाता होना चाहिए। क्योकि श्रुतज्ञान के आधार बिना वह अपने आपको एव शिष्यो को रत्नत्रय मे स्थिर नही रख सकता है। तीसरा गुण व्यवहारवान् है,

उसे प्रायश्चित्त शास्त्र का ज्ञाता होना चाहिए, तथा देश-काल और पात्र की स्थिति के अनुसार प्रायश्चित्त देना चाहिए। चौथा गुण प्रकर्तृत्व है। आचार्य मे इतनी कर्तृत्वशक्ति होना चाहिए कि सकट का समय उपस्थित होने पर वह सर्व सघ की रक्षा एव वैयावृत्य कर सके। पाचवा अपायोपायदर्शी गुण है—जो साधु आलोचना करने मे कुटिलता करे तो उसे उसके ठीक नही कहने के दोष और ठीक कहने के गुण बताने वाला होना चाहिए। छठा अवपीडक गुण है—यदि शिष्य अपने दोषो को न कहे तो उसे डाट-फटकार दिखा करके उससे दोष कहला सकने का सामर्थ्य होना चाहिए। सतवा अपरिभावी गुण है—किसी भी शिष्य के द्वारा कहे गये दोषो को बाहिर प्रकट नही करना चाहिए। आठवा निर्यापक गुण है—सथारा स्वीकार करने वाले साधु को क्षुधा-तृषादि परीषहो से पीडित होने पर उसकी बाधाओ को दूर करते हुए उसका सम्यक् प्रकार समाधि मरण कराने मे कुशल हो। इन आठ गुणों से युक्त साधु ही आचार्यपद के योग्य माना गया है।

आचार्य स्वय अनशन आदि बारह प्रकार के तपो का पालक हो और अचेलकत्व आदि दशकल्प का धारक हो। वे दशकल्प इस प्रकार हैं—

**आचेलक्कुद्देसिय सेज्जाहर रायपिंडपरियम्मे।**
**वदजेट्ठ पडिक्कमणे मासं पज्जोसवणकप्पो॥**

आचेलक्य, अनौद्देशिक, शय्यातर-अशन त्याग, राजपिंड त्याग, कृतिकर्म करने मे उद्यम, व्रतारोपणत्व, सर्वज्येष्ठत्व, प्रतिक्रमण पाडित्य, मासकल्प और पर्युषणाकल्प। इन दशकल्पो का धारक एव अपने शिष्यो से परिपालन कराने वाला आचार्य को होना आवश्यक है। इसी प्रकार उसे सामायिकादि आवश्यको का भी भली-भाति से पालन करना चाहिए।

आगम मे कहा गया है कि आचार्य इन छत्तीस गुणो का पालन नही करता है, वह स्वय तो धर्म से भ्रष्ट होता ही है, साथ ही औरो को भी धर्म से परिभ्रष्ट कर देता है, एव धर्म-मार्ग का नाश करता है। यथा—

**भट्टायारो सूरी भट्टायाराणुविक्खओ सूरी।**
**उम्मग्गठिओ सूरी तिण्णिवि मग्गं पणासंति॥**

उम्मग्ग नासए जो उ सेवए सूरी णियमेणं ।
सो गोयम अप्पाणं अप्पं पाडेइ संसारे ॥

जो स्वय भ्रष्टाचारी है, भ्रष्टाचार वालो की उपेक्षा करता है और उत्सूत्र रूप मार्ग का प्रस्थापक है, ये तीनो ही प्रकार के आचार्य सन्मार्ग का विनाश करते हैं। भगवान् गौतम से कहते हैं कि हे गौतम ! जो ऐसे उन्मार्ग-आश्रित आचार्यों की सेवा करता है, वह अपने आपको ससार-समुद्र मे गिराता है। इस लिए ऐसे भ्रष्ट आचार्य से दूर ही रहना चाहिए।

**अपूर्ण औरों को परिपूर्ण कैसे बनायेगा ?**

जिस आचार्य मे जितने गुणो की कमी है, वह उतना ही अपूर्ण है। जो स्वय अपूर्ण है, वह सघ को परिपूर्ण कैसे बना सकेगा ? जो स्वय परिपूर्ण होगा, वही दूसरो को परिपूर्ण बना सकेगा। आचार्य के कुछ और भी गुण कहे हैं—

पचिंदिय-सवरणो तह नवविहबंभचेरगुत्तिधरो ।
चउव्विहकसायमुक्को इह अट्ठारस गुणेहिं संजुत्तो ॥

पाचो इन्द्रियो का सवरण करने वाला हो। आचार्य को सर्वप्रथम अपनी सर्वइन्द्रियो का दमन करने वाला होना चाहिए। स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन पाचो ही इन्द्रियो को अपने वश मे रखे, उनके विषयो मे अपनी प्रवृत्ति न होने देवे। पाचो इन्द्रियो मे तेईस विषय हैं और दो सौ चालीस विकार हैं। ये विषय और विकार जिनसे सर्वथा दूर हो गये है, वे जिन्हे दबा नही सकते हैं, या जिन पर हावी नहीं हो सकते, वे ही महापुरुष आचार्य कहलाने के योग्य हैं। किन्तु आचार्य होकर के भी जिसके कान, आख, नाक और जबान अपने वश मे नहीं हैं, वह पुरुष आचार्यपद पाने के योग्य नहीं हैं। आचार्य के प्रति सघ की क्या प्रवृत्ति है और आचार्य की सघ के प्रति क्या प्रवृत्ति है ? यह भी जानना आवश्यक है। क्योंकि सारे सघ का उत्तरदायित्व आचार्य के ऊपर है। तथा आचार्य की जिम्मेदारी सारे सघ के ऊपर है। इस विषय पर मुझे एक पुरानी सत्य घटना याद आ रही है, उसे प्रसगवशात् कहना अनुचित नहीं होगा।

**एक प्रेरक घटना**

पूज्य रघुनाथजी महाराज, उनके पाट पर टोडरमलजी महाराज, दीपचन्द जी महाराज, मेरुदासजी महाराज उसके पाट पूज्य जैतसीहजी महाराज हुए हैं। यह घटना जैतसिहजी महाराज से सम्बन्ध रखती है। वे बहुत ही सुन्दर भापण देते थे। उनके व्याख्यान को सुनकर लोग मत्र-मुग्ध से हो जाते थे। उन्हे कुछ कविता करने का शौक था। वे एक समय पाली पधारे। चैत्र का मास था। वे रुई के कटलेवाले स्थानक मे विराज रहे थे। चैत्र मे गनगौरियो का मेला लगता है, भाई मेला और खेला तो पाली के ही है। पाली का तो एक लटका न्यारा ही है। जोधपुर वाले तो मरोड मे ही रहते है। परन्तु मजा तो पाली वाले ही लेते है। वे खर्च करने मे भी कोई कमी नही रखते। उनके खाने-पीने का ढग ही निराला है।

हा, तो मेला जोरो से भरा हुआ था। भाई, जो कविता करते है, उन्हे सगीत सुनने का भी शौक रहता है। उस स्थानक की पोल मे एक छोटी सी वारी थी। वहा पर पाटिया लगाकर पूज्य महाराज विराज गये और बैठे-बैठे मेले मे गाये जाने-वाले दो-चार राग धारण कर लिये। उसी स्थानक मे भोपत रामजी तपस्वी भी विराजते थे। उनकी बहुत भारी धाक वहा पर थी। उन्होने जो पूज्य जी को वारी मे बैठा देखा तो सोचा कि यह तो बहुत अनुचित है कि सघ का एक आचार्य मेला को देखे ? यद्यपि पूज्यजी केवल राग हृदयगम करने के लिए ही बैठे थे, मेला देखने के लिए नही। परन्तु तपस्वीजी ने सोचा कि यदि लोगो को पता चलेगा कि पूज्य महाराज मेला देखने को वारी मे बैठे है तो वे क्या सोचेंगे कि जब ये स्वय ऐसे है, तब शिष्यो को क्या रोक सकते हैं ? यह वात तपस्वीजी को बहुत अखरी। परन्तु कुछ कह नही सकते थे, क्योकि वे पूज्यजी भी ऐसे ही रौब वाले थे। भाई, रियासत के धनी राजा के सामने, तथा सघ के स्वामी आचार्य के सामने बोलने मे रोमाच हो जाता है। हा, तो पूज्यजी राग अवधारण करके कुछ देर पश्चात् वहा से उठकर अपने स्थान पर आगये। उन्हे मेला देखने से तो कोई प्रयोजन था ही नही। परन्तु तपस्वीजी को भ्रम हो जाने से उनका वहा बैठना बहुत खटका और बुरा लगा।

जब दूसरे दिन सवेरा हुआ, तब बडे सवेरे ही सिरेमलजी मूथा साधु-वन्दन के लिए आते थे । वे सात सौ थोकडो के ज्ञाता थे और श्रावक-सघ के भी मुखिया थे । उनके आते ही तपस्वीजी ने कहा—मूथाजी, जरा भीतर दया पालो । जब वे भीतर गये तो उन्होंने रात्रि की सारी घटना उन्हे सुना दी और कहा कि आप एकान्त मे पूज्य महाराज साहब से निवेदन कर देना । मूथाजी ने कहा—हा महाराज, कह दूगा । व्याख्यान का समय होने पर पूज्य महाराज आकर पाट पर विराज गये और व्याख्यान देना प्रारम्भ कर दिया । परन्तु उस दिन मूथाजी तपस्वीजी की बात सुनकर घर चले गये और व्याख्यान प्रारम्भ होने के बाद कुछ देर से स्थानक मे पहुचे । उन्होंने पहुँचते ही बडे जोर से कहा—तपस्वीराज, वह कौन भेषधारी था, जिसने रात को मेला देखा है ?

मूथा सिरेमलजी के ये शब्द सुनते ही आचार्य महाराज ने बडी लज्जा का अनुभव किया, व्याख्यान देना बन्द कर दिया और शास्त्र के पन्ने पुट्ठे मे रखकर तुरन्त भीतर कमरे मे चले गये । यह देखकर मूथाजी का हृदय दहल गया और तपस्वीजी सोचने लगे—यह क्या गजब हो गया । मैंने तो मूथाजी से एकान्त मे कहने को कहा था । परन्तु इन्होंने तो भरी हुई सभा मे ही कह दिया । अब मूथाजी और तपस्वीजी दोनो भीतर गये । पूज्य महाराज ने कहा—मूथाजी, पर दूसरा साधु और कोई नही था, मैं ही बारी मे बैठा हुआ था । मेरी इच्छा मेला को देखने की नही थी । परन्तु दो-चार बातो को ध्यान करने के भाव से वहा बैठा था । फिर भी मैं मानता हू कि मेरा वहा पर बैठना उचित नही था । व्यावहारिकता की दृष्टि से यह अनुचित कार्य था । परन्तु आपको भी तो इस प्रकार भरी सभा मे कहने का क्या अधिकार है ? मूथाजी ने कहा—महाराज साहब, मुझसे भूल हो गई आप मुझे क्षमा करें । मुझे इस प्रकार भरी सभा मे नही कहना चाहिए था । अब आप जो दंड दें मुझे लेने को तैयार हूँ । [illegible] अधिक दुख है । [illegible] कहा कि भूल हो गई [illegible] पड़ती दी है, [illegible]

प्रकार अपमानित करना आप लोगो को शोभता है ? बोलो—क्या तुम्हे ज्ञात नही था ? या तपस्वीजी को पता नही था ? यदि पूछना ही था, तो व्याख्यान के बाद पूछ लेते ! यदि एकान्त मे तुम मुझे दो थप्पड भी मार देते तो मैं सहन कर लेता। परन्तु भरी सभा मे इस प्रकार कहना यह मेरा नही, बल्कि इस गादी का अपमान करना है। मैंने भूल की है, अत मैं ही पहिले दण्ड लेता हू। क्योकि जब मैं ही ऐसे काम करूगा तो दूसरो को कैसे रोक सकूगा। यह कहकर उन्होने तेला का प्रत्याख्यान कर लिया। तब मूथाजी और तपस्वीजी ने कहा—पूज्य महाराज, हमको भी दड दे दीजिए। उन्होंने उत्तर दिया—जो दड तुम्हारी आत्मा कहे, वह तुम ले लो। इसके पश्चात् पूज्य महाराज व्याख्यान देने को गये तो उन दोनो की आखो से आसू झर रहे थे। उन्होने पूज्य महाराज साहब और सारी सभा के बीच मे कहा— भाइयो, आज हमसे भ्रमवश बुद्धि-विपर्यास से इस गादी की भारी आशातना हुई है अत हम गादी के प्रति अपराधी हैं और उसके प्रायश्चित्त स्वरूप हम दोनो एक-एक अठाई का दड लेते हैं यह कह कर उन्होने उसी समय सबके सामने आठ उपवास का प्रत्याख्यान कर लिया।

भाइयो, इस घटना को कहने का अभिप्राय यह है कि आचार्य ने जो भूल की, उसका दड उन्हे लेना पडा और मूथाजी वा तपस्वीजी ने जो भूल की, उसका दड उन्हे लेना पडा। प्रत्येक कार्य अपनी मर्यादा से होना चाहिए। जिस आचार्य की इन्द्रिया अपने अधीन नही है, वह क्या हमारा आचार्य बन सकता है ? और उसका दूसरो पर क्या प्रभाव पड सकता है ? पूर्व काल मे आचार्य और सघ दोनो ही अपने-अपने कर्त्तव्य पालन करने मे दृढ और कठोर थे। पहिले सघ को आचार्य की और आचार्य को सघ की शका रहती थी। यदि उस समय आचार्य अपना कर्तव्य न निवाहते, तो जगत मे दोनो का ही अपवाद फैलता। परन्तु दोनो ने अपनी-अपनी भूल स्वीकार करके तत्काल उसका परिमार्जन कर दिया। इससे दोनो की ही शोभा रह गई।

पाच इन्द्रियो के सवरण के पश्चात् आचार्य के गुणो मे बतलाया गया है **'तह नवविह बंभचेरं च'**। अर्थात् आचार्य नव बाड़ सहित ब्रह्मचर्य का पालन

करे। तथा आचार्यको क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायो से मुक्त होना चाहिए। इस प्रकार पाच इन्द्रियो को जीतना, नववाडयुक्त ब्रह्मचर्य को पालना और चार कषायो का दमन करना ये सब अठारह गुण हो गये। इनमे पाच महाव्रतो के मिलाने से तेईस गुण हो जाते हैं। फिर इन मे पूर्वोक्त पाच आचार और आधारवान् आदि आठ सपदा को मिलाने से छत्तीस गुण हो जाते हैं। जिसमे ये छत्तीस गुण हो, वही आचार्य हो सकता है।

परन्तु आज हम लोगो को यह भूख लग रही है कि सघ हमे आचार्य कब बनावे? आज आचार्य पदवी के बिना हम से साधना ही नही होती है। साधु के कर्तव्य पालन मे हमारा चित्त ही नही लगता है। भाई आचार्य बनाओ! कौन मना करता है। केवल आचार्य बन जाने मे ही शोभा नही है, परन्तु उसमे इतने गुण होना चाहिए। आचार्य को अनुशासन के समय वज्र से भी अधिक कठोर होना चाहिए और अनुग्रह के समय फूल से भी अधिक कोमल चाहिए। आचार्य के दोनो नेत्र सावन और भादवें के समान सजल और शुष्क रहना चाहिए। आचार्य मे एक ओर जोश और दूसरी ओर होश होना आवश्य है। उसमे क्रान्ति और शान्ति भी होनी चाहिए और जहा जिसका उपयोग आवश्यक समझे, वहा पर उसका उपयोग करना चाहिए जिससे कि सघ मे किसी भी प्रकार कुप्रवृत्ति प्रवेश न कर सके। इस प्रकार से ही सघ सुरक्षित रहता हुआ उत्तरोत्तर उन्नति कर सकता है।

जैसे जैन सम्प्रदाय मे आचार्य की व्यवस्था है, उसी प्रकार अन्य सम्प्रदायो मे भी आचार्य होते हैं, उन्हे महन्त या मठाधीश कहते हैं। आपके भीतर पहिले श्री पूज्य होते थे। वे भी जाति के आचार्य ही थे। जाति मे कोई भी ऊचा-नीचा कार्य होता तो उसे श्री पूज्य ही सभालते थे। और अन्यायी या हीनाचार करने वाले को दड देते थे। वे ब्रह्मचर्य से रहते थे, गर्म जल पीते थे, एकासन करते थे, तभी उनमे करामाते भी थी।

**श्री पूज्यजी की सवारी आने**

खरतर गच्छ के आचार्य जिनचारित्र सूरिजी जोधपुर पधारे। उनके ऊपर छत्र तना हुआ था और चवर ढोले जा रहे थे। वे पालकी मे विराजमान थे

और उनका जुलूस जा रहा था। जब वह गाछो के बाजार मे आया तभी सामने से जोधपुर महाराज की भी सवारी पधारी। अब आमने-सामने दोनो सवारिया रुक गई। तब श्रीपूज्यजी की ओर से कहलाया गया कि महाराज अपनी सवारी निकाल लेवे। किन्तु दरबार की ओर से समाचार आया कि तुम पीछे लौट जाओ। श्री पूज्यजी ने कहलाया कि तुम लौट जाओ, क्योकि हमारी सवारी नही लौट सकती है। इस प्रकार दोनो ओर से तनातनी बढ गई। सारी जैन समाज भी लडखडाने लगी कि अब क्या होगा ? साथ मे अनेक यति भी थे। उन्होने भी आपस मे परामर्श किया कि अब क्या करना चाहिए ? क्योकि यदि श्री पूज्यजी की सवारी वापिस लौटाते है तो सारे समाज की बात जाती है। उन्होने श्री पूज्यजी से कहा —"जैसे वायरा बाजे, वैसी ओट ले लेना चाहिए।' श्री पूज्य जी ने कहा—यदि मैं इस प्रकार ओट ले लूगा तो फिर श्री पूज्य कैसे कहलाऊगा ? अब क्या था, सबके देखते-देखते वह पालकी उडी और राजा साहब के ऊपर से निकल गई। जैसे ही पालकी राजा साहब के ऊपर से निकली कि उनका सारा गर्व पानी हो गया। तुरन्त हाथी से उतरकर श्रीपूज्यजी के पास जाकर कहने लगे—महाराज, मुझे माफ करो। आपमे तो बडी करामात है। उसी समय उन्होने महाराज से ऐसा पट्टा लिखा लिया कि श्रीपूज्यजी की सवारी जब बाजार से निकल रही हो, उस ससय दरबार मे सूचना भिजवा दी जावे कि महाराज की सवारी इस समय न निकले। भाई, राजा की सवारी थी, तो सारा मामला सुधर गया। अन्यथा जिद्द बढती तो मामला और उलझ जाता। श्रीपूज्यजी मे करामात थी तो सारे समाज का गौरव रह गया और महाराजा को भी चमत्कार देखकर नमस्कार करना पडा। जो तत्त्व के मर्मज्ञ हैं, स्व-पर के विवेकी हैं और जिनके हृदय मे सर्व के कल्याण करने की भावना विद्यमान है, वे ही महापुरुष किसी भी प्रकार का सकट उपस्थित होने पर उसे दूर करने की क्षमता रखते हैं और तभी उनका ससार पर प्रभाव पडता है। जो केवल पदवी धारण करके समाज की रोटिया बिगाडते हैं, उनका दूसरो पर क्या प्रभाव पडेगा ? भाई, दुनिया मे चमत्कार को ही नमस्कार होता है।

### यह भगवान की गादी है

सज्जनो, आचार्य तो संघ में एक मुकुट के मणि के समान शोभायमान रहते हैं और गादी तो भगवान की ही है, जिसके ऊपर वे बैठते हैं। यद्यपि वे भगवान् नहीं है, तथापि भगवान के समान कुछ गुण तो दिखना ही चाहिए। दुनिया को यह ज्ञात होना चाहिए कि इनके भीतर जैसी शान्ति, क्षान्ति, त्याग और वैराग्य है, तथा कार्य करने एवं संघ-व्यवस्था की क्षमता है, वैसी दूसरे में नहीं है। यदि ऐसा न होता तो फिर आचार्य को नाना प्रकार से परीक्षण करके क्यों बनाया जाता? जो इस पद पर विराजमान होता है, सारे संघ को उनकी आज्ञा का पालन करना पड़ता है, कोई भी व्यक्ति उनकी आज्ञा के बाहिर कोई भी कार्य नहीं कर सकता है। परन्तु किया क्या जाय, जब चाँद के मुख से ही लार टपके, तो जानिया काई करे? जब सेना का सेनापति ही रणक्षेत्र से भागने की कहे, तब सेना क्या करे? यदि मांझी जोरदार है तो मझाण भी जोरदार होता है।

शास्त्रकारों ने कहा है कि संघ में जो आचार्य के गुण-ग्राम से संयुक्त है, उनकी वन्दना-स्तवना करने से मनुष्य कोटि-भव-संचित कर्मों को खपाता है और यदि आचार्य में भक्ति उत्कृष्ट होवे तो मनुष्य तीर्थंकर नाम गोत्र को प्राप्त करता है। आचार्य तो भवसागर में डूबने वाले प्राणियों को हस्तावलम्बन देकर उनके उद्धारक और पतितों के पावनकर्त्ता होते हैं। इसीलिए अनादि निधन मंत्र में अरहन्त और सिद्ध के पश्चात् आचार्य को नमस्कार किया गया है।

### उपाध्याय पद का गौरव

संघ में आचार्य के पश्चात् दूसरा प्रमुख स्थान उपाध्याय का है। इनका कार्य संघस्थ साधुओं को पढ़ाने का है। अनादि-मूलमंत्र में उपाध्याय का स्थान चौथा है और पांचवां स्थान साधु का है। मैं आप लोगों से पूछता हूं कि इनमें बड़ा पद कौन सा है? जवाब होगा कि साधु का पद सबसे बड़ा है। कहा है—'णमो लोए सव्वसाहूणं।' यह सबसे बड़ा पद है। क्योंकि उपाध्याय जिनसे बनते हैं और आचार्य जिनसे बनते हैं? साधुओं में से ही तो बनते हैं? और अरहन्त और सिद्ध भी किनसे बने? साधु पद से ही तो अरिहन्त और सिद्ध

बनते हैं। अत. साधु के ऊपर ही शेष चारो पदो की शोभा हो रही है। यदि एक साधुता चली गई तो न आचार्य है, न उपाध्याय है और न अरिहन्त सिद्ध ही हैं। इतने बडे पद पर रहते हुए भी साधुजन आचार्य की आज्ञा पालते हैं और उपाध्याय की भी आज्ञा पालते है। भाई, जिसमे बडप्पन होता है, वही बडा बनता है और उसी का मूल्य अधिक होता है।

अजमेर मे जब साधु सम्मेलन हुआ और आचार्य की पदवी दी गई, तब मैंने एक छोटा सा सुझाव रखा कि आप लोग आचार्य बना रहे हो ? परन्तु आचार्य की शोभा का लक्ष्य भी है, या नही ? उत्तर दिया गया कि—हा लक्ष्य हैं, तभी बना रहे हैं। उस समय मैंने कहा था कि यदि आचार्य की शोभा बढाने का लक्ष्य है तो एक प्रभावक व्याख्याता विद्वान् आचार्य की सेवा मे रखो और चार-चार मास की ड्यूटी लगा दो। वे साधु कैसे रहे कि आचार्य तो नही, किन्तु आचार्य की जोड मे आवे, ऐसे रहे। यदि आचार्य के कार्य मे कोई कमी प्रतीत हो तो वे उसे पूरा कर ले। अत ऐसा ओजस्वी वक्ता विद्वान् आचार्य के पास मे रहना आवश्यक है। इससे आचार्य के कार्य मे साहाय्य मिलेगा और सघ के कार्य मे वेग प्राप्त होगा और किसी काम मे कोई रुकावट भी नही आयेगी। आज जहा पाच-सात साधु हैं और आचार्य के समकक्ष नही है। यदि आचार्य बीमार पड़ जावे, तब बतलाओ—व्याख्यान कौन सुनायेगा ? चर्चा—प्रश्नो का उत्तर कौन देगा ? अत. उनके कार्य को सम्भालने वाला भी होना चाहिए। आचार्य के पश्चात् उपाध्याय का स्थान है। अत. सघ मे एक उपाध्याय अवश्य होना चाहिए। कहा है—

**भूच हुए भरतार नार किम रहै सुरगी,**
**आप नवै असवार, तेज किम रहै तुरगी।**
**जो गुरु होवे भ्रष्ट, चेलो फिरिया किम चालै,**
**मूरख नें मूरख मिले, तो गुण सगला ही पाले ॥**
**जोगी जोग न राचवे तपसी तप निद्रा सुवे,**
**सकताप श्याम कासूं करे,जो प्रधान पोचे हुवे ॥**

भाई, जिस धनी मे धनीपना ही नही और उसकी मरोड कोई स्त्री खावे, तो कैसे चल सकती है? उसकी मरोड तो पति के पीछे ही है। और जिसने सवारी तो गधे की भी नही की और वह दस हजार के घोडे पर बैठ गया, तब या तो घोडे को मारेगा, या किसी और को मारेगा। इसी प्रकार जिसका गुरु ही भ्रष्ट है और आचार से गया-गुजरा है, तो उसके शिष्य क्या क्रिया-कर्त्तव्य पालन करेंगे? विद्यार्थी तो पढना चाहता है—संस्कृत, प्राकृत और अंग्रेजी। परन्तु अध्यापक ऐसा मिले कि जिसको काला अक्षर भैंस बराबर हो, तो फिर क्या वह विद्यार्थी पढ सकेगा? जो योगी भोग मे राचे नही, तपस्वी रस मे गौरव लेवे नही, तभी उसकी शोभा है। राजा तो बडा जोरदार हो, परन्तु प्रधान में कोई कला न हो—ऐसा मूर्ख प्रधान मिल जाय, तो फिर उस राजा का राज्य जाते विलम्ब नही होगा। इसी प्रकार आचार्य के पास प्रधान भी अच्छा रहना चाहिए। उपाध्याय तो हमेशा जोशीला, प्रतिभावान् और प्रत्युत्पन्नमति होना चाहिए कि जिसकी सत्ता आचार्य और सारा संघ माने। किसी विवाद के उपस्थित होने पर जिसका आगम-सम्मत निर्णय सर्वोपरि माना जावे और जिसका आगम ज्ञान पूर्ण हो, नाना नयो के विवेचन मे प्रवीण हो। यदि वह देखे कि संघ के प्रति आचार्य का व्यवहार ठीक नही है, तो वह उनसे भी एकान्त मे कहकर उन्हे भी मार्ग-दर्शन करा सके। तथा इसी प्रकार जब वह देखे कि आचार्य के प्रति संघ का, या अन्य लोगो का व्यवहार ठीक नही है, तब वह संघ से कह सके कि यह कार्य आप लोगो का उचित नही है। इस प्रकार उपाध्याय का काम आचार्य और सर्व संघ के बीच मे सम्बन्ध निभाने वाले व्यक्ति जैसा होना चाहिए।

कहने का तात्पर्य यह है कि आचार्य का प्रधान कार्य संघ के आचार-विचार पर दृष्टि रखने का है और उपाध्याय का प्रधान कार्य शिष्यो के पठन-पाठन का है, तो भी संघ-व्यवस्था मे आचार्य की सहायता करना, उन्हे आगम-सम्मत विधि-निषेध दिखलाते रहना और उनके अस्वस्थ आदि रहने के समय [illegible] करना और संघ की सारी व्यवस्था उपाध्याय का कार्य है।

इस पद के लिए उपयुक्त व्यक्ति का चुनाव करके उसे उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए। जिससे सघ के प्रति सबको अपने उत्तरदायित्वो का भान रहे। क्योकि विना पत्तो के मूली अच्छी नही लगती है। जैसे आचार्य की शोभा सघ की सदाचारिता से है, उसी प्रकार सघ की शोभा सदाचारी आचार्य से है। यदि आचार्य पहिले वतलाये गये आधारवान्, आचारवान् आदि आठ सम्पदाओ से युक्त है, तो सघ का सदा ही भविष्य उज्ज्वल रहेगा और वह भगवान् के शासन को दिपावेगा, इसमे कोई सन्देह की वात नही है।

वि० स० २०२७, आसोज वदि–१०

सिहपोल, जोधपुर

●●

# १२ मनुष्य की चार श्रेणियां

भाइयो, श्रीमद् स्थानाङ्गसूत्र में चार प्रकार की पुरुष-जाति का वर्णन आया है। यद्यपि पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म के उदय से उत्पन्न होने की अपेक्षा मनुष्य जाति एक ही है, तथापि भगवान ने यहां पर जो उसे चार श्रेणियों में विभक्त किया है, वह प्रकृति-भेद की अपेक्षा से किया है। ये चार जाति के मनुष्य इस प्रकार हैं—

१ जो अपना भी कल्याण करे और दूसरे का भी कल्याण करे,

२ जो अपना कल्याण तो न करे, किन्तु दूसरे का कल्याण करे,

३ जो अपना कल्याण करे, किन्तु दूसरे का अकल्याण करे,

४ जो अपना भी अकल्याण करे और दूसरे का भी अकल्याण करे,

इन चारों जातियों के मनुष्यों में से प्रथम जाति का मनुष्य उत्तम श्रेणी का है, दूसरी जाति का मनुष्य मध्यम श्रेणी का है, तीसरी जाति का मनुष्य जघन्य श्रेणी का है और चौथी जाति का मनुष्य अधम श्रेणी का है।

**स्वभावो दुरतिक्रमः**

जिस मनुष्य का स्वभाव जैसा पड़ जाता है वह बदलता नहीं है। [illegible] नीतिकारों ने कहा है--

स्वभावो दुरतिक्रमः । स्वभावो नहि मुञ्चति ।

हिन्दी नीतिकार भी कहते है कि 'जाति स्वभाव न जाय'। जिस मनुष्य की प्रकृति भली या बुरी जैसी होती है, वह तदनुसार ही कार्य करता है, भले दुनिया उसके लिए कुछ भी कहती रहे। किसी कुलीन-उच्च घराने के पुरुप को नीच काम करते हुए देखकर लोग कहते है कि अरे, तुझे ऐसा काम करते हुए लज्जा नही आती है? तू कैसे घराने का है और किस जाति का है! इन शब्दो को सुन करके भी वह अपने विपय मे तो विचार नही करता है, उल्टा उत्तर देता है कि ये दूसरे लोग तो मुझ से भी गये बीते है। भाई, अमल का स्वभाव कटुक है, वह उसमे रहेगा ही। और मिश्री का स्वभाव मिष्ट है, वह उसमे रहेगा ही। मिश्री कभी कडवी नही हो सकती और अमल कभी मीठा नही हो सकता। इसी प्रकार जो उत्तम प्रकृति के मनुष्य है वे मिश्री के समान सदा मीठे स्वभाव वाले ही रहेगे और जो नीच प्रकृति के मनुष्य है, वे अमल के समान सदा कडवे ही रहेगे। स्वभाव के विपय मे कहा गया है कि—

**कूकर कूर कपूर मिले तो ही हाड न मूके,**<br>
**लंगणियो ह्वै सिंह तो ही मुरदा न ढूके।**<br>
**जो हुवे राणी दूबली, जाति तासीर जणावे,**<br>
**भूखो तो ही भूपाल राकने नहीं सतावे॥**<br>
**आपदा पड़े उत्तम नरो, नीच कर्म नहिं मडिये।**<br>
**कविगद्द कहैं हो ठाकुरो, जाति-स्वभाव न छडिये॥**

कुते के सामने सोने के थाल मे उत्तम से उत्तम भोजन परोस कर रख दिया जाय और दूसरी ओर उसे दुर्गन्धित हड्डी का टुकडा दिख जाय, तो वह पहिले हड्डी को ही मुख मे लेकर चबायेगा। क्योकि वह उसे मिष्टान्न से भी अधिक मीठी मानता है। किसी गधे के शरीर पर सौ रुपये तोले के इत्र की आप मालिश कर दीजिए, उसकी थकान क्या दूर होगी? कभी नही। वह तो जब राख-धूल आदि पर लोटेगा, तभी उसकी थकान दूर होगी और तभी वह आनन्द का अनुभव करेगा। और लोट-पोट कर हरा-भरा हो जायगा। वह इत्र या तेल की मालिश से आनन्द माननेवाला नही है। जो सिंह जगल मे स्वतत्र रूप से विचरण कर रहा है, वह कितना ही भूखा-

कि मेरे पति मे शक्ति अधिक है, या मुझमे अधिक है ? यदि लडाई मे पति के चोट आजाय, तो क्या विगडेगा ? परन्तु यदि मुझे चोट आ जायगी, तो दुनिया कहेगी कि यह बीच मे क्यो आई ? इस प्रकार उसने मार भी खाई और अपनी इज्जत भी गवाई। भाई, यह उसकी भूल नही है, किन्तु वह जिस घराने की जैसी परम्परा देखती आई है, वैसा ही कर रही है, यह उसी का परिणाम है। इसीलिए कहा गया है कि मनुष्य की प्रकृति जन्म-जात भी होती है और परम्परागत भी होती है।

**प्रकृति-भेद**

हा, तो जो उत्तम प्रकृति का मनुष्य होता है, वह अपना भी कल्याण करता है और दूसरो का भी कल्याण करता है। इस प्रकृति वाला मनुष्य ही सच्चा मानव है, उसकी जितनी भी प्रशसा की जाय, वह उतनी ही कम है। देखो—भगवान स्वय तिरे और दूसरो को भी तारा—जगत् से पार उतारा और आज भी उनके वचन हमे तिरने मे सहायक हो रहे हैं। यह तो अपनी नादानी है कि हम उन पर ध्यान नही दे रहे है और उन पर अमल नही कर रहे हैं। उनके वचनो मे तो वही अमृत रस भरा हुआ है और उसका पान करने वाले आज भी आत्मकल्याण कर रहे हैं।

दूसरी जाति का वह मनुष्य है जो अपना कल्याण तो नही करता है, परन्तु दूसरो का कल्याण अवश्य करता है, वह मनुष्य मध्यमश्रेणी का है, क्योकि वह अपना नुकसान कर रहा है। ऐसे मनुष्य के लिए दुनिया भी कहने लगती है कि इसके घर मे तो कुछ भी नही है और रात-दिन दूसरो की पचायत करता फिरता है। भाई, अपना घर सम्भालते हुए ही दूसरो का घर सम्भालने मे शोभा है। जो अपना कल्याण नही करेगा, वह कितने दिन तक दूसरो का कल्याण कर सकेगा।

तीसरी जाति का वह मनुष्य है जो अपना तो भला करता है, परन्तु दूसरो को नुकसान पहुचाता है। इस तीसरी श्रेणी के मनुष्यो की ससार मे कमी नही है। आप ऐसे लोगो से जितनी मोटरें और रेलगाड़िया भरना चाहे, भर सकते

क्योकि त्यागे हुए पदार्थ की ओर देखने से उसके प्रति पुन रागभाव अकुरित हुए विना नही रहता है।

इसी प्रकार जिन्होने भगवान के वचनो की श्रद्धा की है और जो यह मानते हैं कि वीतरागी सर्वज्ञ जिनदेव ने जो कहा है, वह सत्य है, क्योकि **'नान्यथावादिनो जिनाः'** अर्थात् जिन्होने राग, द्वेप, मोह और अज्ञान को जीत लिया है, ऐसे जिनेन्द्र देव अन्यथावादी-मिथ्याभापी नही होते है, क्योकि उनके असत्य बोलने का कोई कारण ही नही है। उन लोगो को भगवान के कहे तत्त्वो मे शका, काक्षा, विचिकित्सा, परपाखडी प्रशसा और परपाखडी सस्तव भी नही करना चाहिए। किन्तु यही दृढ निश्चय रखना चाहिए कि जो कुछ भगवान ने कहा है, वह सत्य है।

**शका का काटा**

उपर्युक्त पाच दोषो मे पहिला दोष शका का है। आज लोग बात-बात मे शका करते हैं कि पहिले के लोग-जिनके शरीरो की अवगाहना पाच-पाच सौ धनुष ऊची थी उनके रहने के मकान कितने बड़े होगे, वे क्या खाते और पीते थे ? उनके खाने-पीने के पात्र कितने बड़े होते होगे और उस समय की नगरिया कितनी-लम्बी चौडी होती होगी ? उस समय के मनुष्यो के शरीर-प्रमाण से देखे तो आज सारे भारत मे इने-गिने ही लोग रह सकेंगे, आदि नाना प्रकार की कुतर्कपूर्ण शकाए उठाते रहते हैं। मैं उनसे पूछता हू कि तुम्हे इससे क्या प्रयोजन है ? तुमने जो बात सुनी है, या शास्त्रो मे पढी है, उसमे से जो बात तुम्हारे हित की हो—प्रयोजन की हो—उसे ग्रहण कर लो। इन बातो की पचायत तो वे ही लोग करेंगे, जिनको उनका अधिकार है। सर्व साधारण लोग इन बातो के निर्णय के अधिकारी नही है। जो अभी नवकार मत्र भी पूरी रीति से नही जानते हैं, उनको इस विषय मे शका करने की क्या आवश्यकता है।

यदि कोई अभी आकर कहे कि अमुक की दुकान मे दस लाख का माल है। और आपने जाकर देखा कि वहा तो पचास हजार का भी माल नही है तो भाई, इससे आपको क्या करना है ? आपको तो अपनी ओर देखना चाहिए

क्योकि त्यागे हुए पदार्थ की ओर देखने से उसके प्रति पुन रागभाव अकुरित हुए विना नही रहता है।

इसी प्रकार जिन्होने भगवान के वचनो की श्रद्धा की है और जो यह मानते हैं कि वीतरागी सर्वज्ञ जिनदेव ने जो कहा है, वह सत्य है, क्योकि **'नान्यथावादिनो जिनाः'** अर्थात् जिन्होने राग, द्वेष, मोह और अज्ञान को जीत लिया है, ऐसे जिनेन्द्र देव अन्यथावादी-मिथ्याभापी नही होते हैं, क्योकि उनके असत्य बोलने का कोई कारण ही नही हैं। उन लोगो को भगवान के कहे तत्त्वो मे शका, काक्षा, विचिकित्सा, परपाखडी प्रशसा और परपाखडी सस्तव भी नही करना चाहिए। किन्तु यही दृढ निश्चय रखना चाहिए कि जो कुछ भगवान ने कहा है, वह सत्य है।

**शका का काटा**

उपर्युक्त पाच दोषो मे पहिला दोष शका का है। आज लोग बात-बात मे शका करते हैं कि पहिले के लोग-जिनके शरीरो की अवगाहना पाच-पाच सौ धनुष ऊची थी उनके रहने के मकान कितने बडे होगे, वे क्या खाते और पीते थे ? उनके खाने-पीने के पात्र कितने बडे होते होगे और उस समय की नगरिया कितनी-लम्बी चौडी होती होगी ? उस समय के मनुष्यो के शरीर-प्रमाण से देखे तो आज सारे भारत मे इने-गिने ही लोग रह सकेंगे, आदि नाना प्रकार की कुतर्कपूर्ण शकाए उठाते रहते हैं। मैं उनसे पूछता हू कि तुम्हे इससे क्या प्रयोजन है ? तुमने जो बात सुनी है, या शास्त्रो मे पढी है, उसमे से जो बात तुम्हारे हित की हो—प्रयोजन की हो—उसे ग्रहण कर लो। इन बातो की पचायत तो वे ही लोग करेंगे, जिनको उनका अधिकार है। सर्व साधारण लोग इन बातो के निर्णय के अधिकारी नही हैं। जो अभी नवकार मत्र भी पूरी रीति से नही जानते हैं, उनको इस विषय मे शका करने की क्या आवश्यकता है।

यदि कोई अभी आकर कहे कि अमुक की दुकान मे दस लाख का माल है। और आपने जाकर देखा कि वहा तो पचास हजार का भी माल नही है तो भाई, इससे आपको क्या करना है ? आपको तो अपनी ओर देखना चाहिए

कि मेरी दुकान मे कितना माल है ? आपको तो अपनी पूजी के अनुसार ही नया माल खरीदने या पुराना माल खरीदने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि लाभ वाला भी माल ला करके दुकान मे रखकर ताला लगा दिया और सभाल का ध्यान नही रखा, तो नुकसान ही होगा। यदि माल आज लिया और कल कुछ मन्दी आने पर घाटे से भी बेचना पडा, तो निकालते भी देर नही लगेगी। कहने का प्रयोजन यह है कि हमे व्यर्थ की पचायत करने की आवश्यकता नही है जो लोग पुरानी बातो की टीका-टिप्पणी करके अपनी बुद्धिमत्ता दिखाते हैं, उनसे हमारा कहना है कि भाई, उन बातो का निर्णय तो आप लोगो की शक्ति से बाहिर है। आप तो अपने बाबा की आखें कैसी थी, मुख कैसा था और कान कैसे थे, और उन्होने क्या-क्या किया, यह भी नही बता सकते हैं। बाबाजी की बात जाने दें, आप यदि अपने स्वर्गीय पिताजी का भी इतिहास लिखना चाहे, तो लिख सकते हैं। इसे भी छोड दें, किन्तु जबसे आपने होश सम्भाला है और अपनी बुद्धि से कार्य करना प्रारम्भ किया है, यदि उस दिन से अपना जीवन-वृत्त लिखना चाहे, तो क्या सब बातो का लिखना सम्भव है ? अरे, यह भी बताना कठिन है कि अभी चार दिन पूर्व तुमने घर पर क्या खाया था ? जब आपको इतने समीप की और अपनी या अपने बाप-दादो की भी बातो का भी पता नही है, तब तीसरे आरे की नगरिया कितनी बडी थी, उसमे के महल कितने ऊचे थे, उनमे कितने ऊचे लोग रहते थे और क्या खाते थे, इत्यादि बातो की छान-बीन करने का आपको क्या अधिकार है ? हमे तो केवल इतनी बात ही जानने की है कि उस समय के मनुष्य बहुत बल-शाली और भाग्यशाली थे। आज जो लोग पहिले की सब बातो को खोटी और झूठी बताते हैं, वे अनुभव-शून्य हैं। भाई, सीधी सी बात है, कि जो बात तुम्हारी समझ मे आ जावे, उसे मान लो। जो न आवे, उसके विषय मे चुप रहो, और पूछने वालो से कह दो कि इन बातो का निर्णय करना हमारी बुद्धि से बाहिर है। आज तो वर्तमान समय और युग के अनुसार यही विचारना होगा कि हम अपना विकास कैसे कर सकते हैं, और धर्म-साधन करते हुए लौकिक जीवन मे भी सुखी कैसे रह सकते हैं ? आज भी

सर्वत्र सबकी पुण्यवानी अलग-अलग दिखाई देती है और तदनुसार ही कोई वडे घर मे और कोई छोटे घर मे जन्मा है । इसलिए यही मानना चाहिए कि ससार मे सदा ही पुण्य-पाप का चक्र चलता रहा है और आज भी चल रहा है ।

आज आप अजमेर मे जाये तो देखेंगे कि लोढाजी और सोनीजी के जितने मकान मिलते है, उतने क्या दूसरो के मिलते है ? इतने वडे शहर मे जहा देखो, उनके ही मकान दिखते हैं। अब आज से पचास वर्ष आगे यदि कोई कहेगा कि लोढाजी और सोनीजी के इतने मकान थे, तो सुनने वाला कहेगा कि यह सब झूठ है, परन्तु झूठ उन्ही के लिए है, जिनको इस वात का पता नही होगा । किन्तु जानकारो के लिए झूठ नही है। अत पुराने युग की वातो मे शका करना व्यर्थ की बात है । हा, वर्तमान मे हम जो काम करते है, इसमे यदि कोई शका उत्पन्न हो तो उसका निर्णय करना आवश्यक और उचित है । लोग कहते हैं चन्द्र कहा है, सूर्य कहा है ? वहाँ पर वैज्ञानिक कैसे पहुँचे ? आदि बातो की पचायत वे ही कर सकते है, जिन्होने इन वातो का भली-भाति अनुभव कर लिया है । इसलिए शका ऐसी करनी चाहिए, जिससे हमे लाभ हो । हम सर्वज्ञ वीतराग प्रभु के वचनो पर शंका नही कर सकते है। उन जिनकल्पी महापुरुषो ने अपने ज्ञान मे जैसे भाव देखे, वैसी प्ररूपणा करदी । और उस समय के लोगो ने वैसा मान लिया। आज हमारे सामने वैसी परिस्थिति नही है। और जो बात हमारे समझ मे नही आती है तो उस प्रपच मे हमे नही पडना चाहिए । इस विषय मे शास्त्रकारो ने स्पष्ट रूप से कहा है—

**सकलमनेकान्तात्मकमिदमुक्तं वस्तुजातमखिलज्ञैः ।**
**किमु सत्यमसत्यं वा न जातु शंकेति कर्त्तव्या ।।**

सर्वज्ञ भगवान ने सर्व वस्तुओ को अनेक धर्मात्मक कहा है, यह बात युक्ति और अनुभव से सिद्ध है। अत उसके विषय मे 'यह सत्य है, या असत्य है, ऐसी शका कभी भी नही करना चाहिए। किन्तु सर्वज्ञ ने जो वस्तु का स्वरूप कहा है, वह सत्य है, यही श्रद्धान करना चाहिए ।

**काङ्क्षा न करो !**

सम्यक्त्वी पुरुष के सम्यग्दर्शन मे मल उत्पन्न करने वाला दूसरा दोष है—काक्षा । अर्थात् धर्म को धारण करके उससे यह आकाक्षा नही रखना चाहिए कि हमे इसके फलस्वरूप धन-वैभव आदि की प्राप्ति हो और परभव मे इन्द्र, चक्रवर्ती आदि का पद मिले । शास्त्रकारो ने कहा है कि—

**इह जन्मनि विभवादीनमुत्र चक्रित्व-केशवत्वादीन् ।**
**एकान्तवाद-दूषित पर-समयानपि न चाऽऽकाक्षेत् ॥**

सम्यक्त्वी पुरुष इस जन्म मे धन-वैभव आदि की आकाक्षा न करे और परभव मे चक्रवर्ती और नारायण आदि के पद प्राप्त करने की भी इच्छा न करे । यही नही, किन्तु एकान्तवाद से दूषित अन्य मतो की भी चाह न करे ।

आज लोग कहते हैं—महाराज, हमारी समाज मे तो कोई दम नही है, सबसे गया-बीता समाज है । इस समाज की तो बुद्धि भ्रष्ट हो गई है । यह समाज आज क्या कर रहा है ? अरे भाई, तू जिस समाज मे जन्मा है, उसमे ही मरेगा । यदि तुझे अपने समाज और जाति का कुछ गौरव है, तो तू कुछ समाज और जाति का सुधार कर । केवल बकवास करने से क्या होने वाला है ? समाज न मरा है और न मरेगा । यह तो जैसा था, वैसा ही है । हा, सव लोग एक प्रकृति के न तो भगवान ऋषभ देव के समय मे हुए हैं और न भगवान पार्श्वनाथ या महावीर के समय मे ही हुए हैं । फिर आज के युग मे एक-सी प्रकृति के होना कैसे सभव है ? जिस युग मे जीवो को यज्ञ मे होम दिया जाता था, तब लोग कहते थे कि बडा भारी अत्याचार हो रहा है । यह कैसे मिटेगा ? अब बताओ—आप आज के युग को अच्छा कहोगे, या बुरा ? भाई, परिवर्तन सदा होते रहते हैं और होते रहेंगे । कभी भले कार्यों का पलडा भारी हो जाता है, तो कभी बुरे कामो का । ससार मे उतार-चढाव, या उत्थान-पतन सदा से होते आये हैं और होते रहेगे । जो यह कहते हैं कि यह समाज किसी काम के योग्य नही है । मैं उनसे पूछता हू कि आज जो समाज के कार्यो के लिए लाखो करोडो रुपये लोग खर्च कर रहे हैं, उसमे तुमने या तुम्हारे पूर्वजो ने क्या दिया है ?

**समाज मुर्दा नहीं है !**

आज यहा चालीस-पचास गाव के लोग बैठे हुए हैं, उन्हें लेने के लिए कौन लोग मोटर लेकर जाते हैं और कौन जिमाते है ? भाई, समाज के लोग ही तो यह सब भार वहन कर रहे है। आज से चालीस-पचास वर्ष पहिले क्या था ? मैं अपने बचपन की बात कहता हू कि एक गाव मे एक बडे सन्त का चौमासा हुआ। उस समय बाहिर के लोगो के साथ पत्र-व्यवहार मे डेढ रुपये के कार्ड-लिफाफे खर्च हो गये। यह देखकर श्रावको मे काना-फूसी होने लगी और लोग कहने लगे कि अपने यहा तो लाखो का लेन-देन होता है, परन्तु चार आने का भी डाक खर्च नही है और साधुओ के चौमासे मे डेढ रुपये के कार्ड-लिफाफे खर्च हो गये ? वे लोग इतने से खर्च मे ही जमीन-आसमान एक करने लगे। परन्तु आज हजारो रुपये खर्च हो रहे हैं, फिर भी श्रावको के हृदय मे उल्लास है और आने वालो का प्रतिदिन नया ही नया सत्कार हो रहा है, तो यह कौन कर रहा है ? भाई, यह सब समाज ही तो कर रहा है न ? पहिले यदि गुरुजन किसी नवीन सन्त को पढाना चाहते थे, तो लोग कहते थे कि आपको क्या मूसल के आम लगाना है ? आप तो आत्म-कल्याण करो। यदि कभी कोई पडित आता, तो पाच-सात रुपये मासिक वेतन देने वाले श्रावक भी मुश्किल से मिलते थे। किन्तु आज तो पाच सौ, सात सौ और हजार रुपये मासिक वेतन वाले भी विद्वान् सन्तो की सेवा मे है। यह सब खर्च समाज ही तो उठाता है। फिर भाई, तुम कैसे कहते हो कि यह समाज मुर्दा है। अरे, मुर्दा समाज देता है, या जीवित समाज देता है ? यदि समाज भीतर से ममता न उतारे तो क्या कोई एक टका दे सकता है ? किसी पुरुष को बुखार चढा हुआ है और स्त्री भी बीमार है। इस दशा मे भी यदि तार आता है कि ब्यावर से दो मोटरें आ रही हैं। अब बताओ—वे पहिले सेठानी की दवा लायेंगे, या आने वालो के सामने जायेंगे ? वे घर की चिन्ता न करके आनेवालो के स्वागत के लिए जावेंगे। इतना सब कुछ देखते हुए भी तुम कहते हो कि समाज मर गया, ऐसा कहते हुए कुछ लाज-सकोच भी तो होना चाहिए।

जिस दिन विश्वमैत्री दिवस था, उस दिन भी मेरे शब्द यही थे कि हम मर गये, परन्तु समाज जीवित है, वह मरा नही है। जो स्वय मुर्दा होता है, उसे चारो-ओर मुर्दे दिखाई देते हैं। यदि आप जिन्दा हैं, तो सर्व ओर आपको जिन्दा ही जिन्दा मनुष्य दिखाई देंगे। किसी कार्य मे खोट निकालना और नुक्ताचीनी करना आसान है, क्योकि इसमे ताकत का या बुद्धि का कोई काम नही है। यह तो हर कोई कर सकता है। परन्तु काम करने मे जोर पडता है। आज समाज मे अनेक दिशाओ मे विकास हुआ है, शिक्षा का प्रसार बढा है और अनेक कुरूढिया बन्द हुई हैं। हाँ, कई बातो मे हानि भी हुई है, त्याग-प्रत्याख्यान के भाव कम हुए हैं, और विनम्रता मे कमी आई है। फिर भी शहरो की अपेक्षा ग्रामो मे त्याग-प्रत्याख्यान और विनम्रता आदि अधिक है।

पहिले जहाँ बचपन मे गुरुमहाराज के साथ मैं चौमासा करता था तो एक दो अठाई-पचरगी हो जाती तो बहुत तपस्या समझी जाती थी। और आज सौ दो-सौ हो जाती हैं, तो भी कम समझी जाती हैं। अभी सिंहपोल मे तीन सौ अठाइया हो गई हैं। तथा दूसरी सम्प्रदायो मे भी कितनी ही हुई हैं। क्या पहिले कभी इतनी तपस्या सुनी थी? फिर कैसे कहते हो कि विकास नही है, समाज उन्नति नही कर रहा है।

आप कहते हैं कि आज लोग दूसरो की सहायता नही करते हैं। पहिले कहते थे कि हमने पचास व्यक्तियो को लखपति बना दिया। परन्तु भाई, आज भी घाटा नही है। हा, एक बात अवश्य है कि पहिले सहायता देने वाले उपकार की भावना से सहायता नही करते थे। किन्तु अपना कर्तव्य समझ करके कि ये भी हमारे भाई हैं, इनके दुख मे भागीदार होना चाहिए—सहायता करते थे। आज वे लोग ही दूसरो की सहायता करते हैं, और उनके ही पैर आगे बढते हैं, जिनके हृदय मे समाज के प्रति प्रेम है और जो समाज के व्यक्ति को अपना भाई मानते हैं। इसलिए समाज को मुर्दा कहने की भावना तो हृदय मे लाना ही नही चाहिए। समाज या समाज के किसी भी व्यक्ति के प्रति ऐसी भावना के लाने को विचिकित्सा दोष कहा गया है। सम्यक्त्वी पुरुप किसी

से भी घृणा नही करता और न किसी की निन्दा करता है। शास्त्रकार तो यहा तक कहते है कि अशुचि द्रव्यो तक से भी घृणा नही करनी चाहिए। यथा—

**क्षुत्तृष्णाशीतोष्णप्रभृतिषु नानाविधेषु भावेषु।**
**द्रव्येषु पुरीषादिषु विचिकित्सा नैव करणीया ॥**

अर्थात् भूख, प्यास, शीत, उष्ण आदि नाना प्रकार की अवस्थाओ मे, तथा मल-मूत्रादि द्रव्यो मे भी विचिकित्सा नही करनी चाहिए। फिर सचेतन प्राणियो पर तो भूल करके भी ग्लानि, घृणा या निन्दा का भाव नही लाना चाहिए। किन्तु उन पर तो **'निर्जुगुप्सा गुणप्रीतिर्मता निर्विचिकित्सा'** जुगुप्सा नही करना और उनके गुणो मे प्रीति करना ही सम्यक्त्वी का निर्विचिकित्सा गुण माना गया है।

सम्यक्त्वी का चौथा दोष है कि वह पर पाखडियो की प्रशसा न करे। यदि वह पाखडी लोगो की प्रशसा करता है, तो इसका यह अर्थ होता है कि उसे यथार्थ तत्त्व की श्रद्धा नही है और उसकी दृष्टि मे मूढता या मिथ्यात्वपना विद्यमान है। अपनी दृष्टि को निर्मल या निर्दोष रखने के लिए शास्त्रकार कहते हैं—

**लोके शास्त्राभासे समयाभासे च देवताभासे।**
**नित्यमपि तत्त्वरुचिना कर्त्तव्यममूढदृष्टित्वम् ॥**

अर्थात् तत्त्वरुचि वाले पुरुष को नित्य ही लोक-व्यवहार मे, कुशास्त्र मे, कुमत मे और कुदेव मे अपनी दृष्टि को मूढता-रहित करनी चाहिए। परपाखडियो की प्रशसा करने से बुद्धि मे मूढता या अविवेक उत्पन्न होता है। इसलिए अविवेक का कोई भी कार्य नही करना चाहिए।

इसी प्रकार पाखडी लोगो की स्तुति और भक्ति भी नही करना चाहिए। परपाखडिसस्तव को सम्यक्त्व का दोष बताया गया है। जो पाखडियो की स्तुति और भक्ति करेगा, उसके हृदय मे विवेक कहा रहेगा।

पूर्ण मानव तो वही है जो विवेक पूर्वक सर्व कार्य करता है। पूर्ण मानव आत्म-कल्याण के साथ पर-कल्याण करता है, वह स्वय सुखी रहना चाहता

है, और सबको भी सुखी देखना चाहता है। इसलिए उसके सभी कार्य स्व-पर-उपकारक ही होते हैं । हमे इस प्रथम श्रेणी का ही मनुष्य बनने का प्रयत्न करना चाहिए। यदि किसी कारण दूसरे का भला न कर सकें तो बुरा करने की भावना भी मन मे नही लाना चाहिए। यही मानव-धर्म है।

वि० स० २०२७, आसोजवदि ११
सिंहपोल, जोधपुर

●●

पागल हो गये हो, जो ऐसा कहते हो ? वे अपना काम करेंगे, या दुनिया का काम करेंगे ? उस राम को तो किसी का भी काम करना जरूरी नही है। वे तो कृतकृत्य हो गये हैं और परम धाम मे सुख से विराजमान हैं। उन्हे ससार के झगडो से क्या प्रयोजन है ? किन्तु जो जगत का पसारा करता है, वह है कर्मरूप राम। यह सब कर्मों का ही पसारा है और कर्म ही भला-बुरा सबसे करा रहे हैं। श्रीकृष्ण ने गीता मे कहा है—'**कर्मणो गहना गति**'। अर्थात् सारे ससार की गति तो मैंने जान ली है, परन्तु कर्मों की गति इतनी गहन है—सूक्ष्म है कि उसे मैं भी नहीं समझ पाया हू। ये कर्म एक क्षण-पश्चात् क्या करने वाले है, इसका पता किसी को नही चलता है। कर्मों की चाल ही न्यारी है।

**कर्मों की चाल**

भाई, आप तो राजनीति की चाल भी नही समझ सकते हैं, तो कर्मों की चाल को क्या समझ सकेंगे ? जैसे आपका कोई मुकद्दमा किसी मजिस्ट्रेट के पास चल रहा है। आप उससे मिलने के लिए गये। उसने आदर-सत्कार के साथ आपको बैठाया और आपकी प्रशसा की। आपके अनुनय-विनय करने पर उसने कह दिया कि आप घबडाना नही, मैं आपके लिए सब काम करने को तैयार हू। अब यदि आप उसकी मीठी बातो से यह सोच लेवें कि मैं मुकद्दमा जीत जाऊगा, तो यह आपका भ्रम है, आप अवश्य हार जावेंगे। और यदि मजिस्ट्रेट कहता है कि तुझे जेल की हवा खानी पडेगी, तूने बहुत अनुचित काम किया है। इस प्रकार यदि वह अपनी नाराजगी प्रकट करता है, तो समझना चाहिए कि वह आपको बचाने वाला और जिताने वाला है। राजनीति की यह चालाकी जब हर कोई नही समझ सकता, तब कर्मों की गहन गति को तो कैसे कोई जान सकेगा ?

यह कर्मरूपी राम तीसरा है। इसका सारे ससार मे पसारा है। सुख-दु ख, जीवन-मरण और हानि-लाभ ये सब कर्म के अधीन हैं। ये कर्म किसने किये हैं ? भाई, हमने ही किये हैं। भाई, शास्त्रकारो ने कहा है—

वाने पर घडी ठीक होगी। अब आप उससे उस पुर्जे को बदलने के लिए कहते है और वह उसे बदलकर सब पुर्जों को यथा स्थान जमा करके और उसे चालू करके आपको सौप देता है। यह व्यवस्था जैसे उस घडी के यत्रो की करता है। इसी प्रकार वक्ता प्रतिपाद्य विषय के एक-एक शब्द की व्याख्या करता है, और तभी वह व्याख्याता कहा जाता है।

**राम के रूप अनेक**

आपके सामने 'राम' पर कहने का अवसर आया। भाई, 'राम' यह दो शब्दो के सयोग से बना हुआ एक पद है। इनका परस्पर क्या सम्बन्ध है, यह शब्द कैसे बना और इसका क्या अर्थ है, यह सब व्याकरण शास्त्र के जाने विना नही ज्ञात हो सकता है। सस्कृत व्याकरण के अनुसार 'रमु' धातु से यह राम शब्द बना है और इसका अर्थ होता है—**'रमन्ते योगिनो यस्मिन्नसौ रामः।'** अर्थात् जिसमे योगी जन रमण करे अथवा **'रमयति मोदयति योगिजनमिति रामः'** अर्थात् जो योगिजन को भी प्रमुदित करे, उसे राम कहते हैं। भाई, जो योगीपुरुषो के हृदय मे रमण करता है, अर्थात् योगीजन जिसका निरन्तर ध्यान करते है, उस शुद्ध-आत्मा या परमात्मा का नाम राम है। परन्तु सर्व साधारण लोग तो दशरथ और कौशल्या के पुत्र को ही राम जानते हैं। आगम की दृष्टि से जो नौ बलदेव होते है, उन्हे राम कहा जाता है। तथा लोग जगत् के कर्त्ता को भी राम कहते हैं। इन सब अर्थों को लेकर एक कवि ने कहा है—

**एक राम घट-घट मे बोले, दूजा राम दशरथ घर डोले।**
**तीजे राम का जगत् पसारा, चौथा राम है सबसे न्यारा॥**

भाइयो, राम शब्द तो एक है उसके चार अर्थ करके उसे चार रूप मे विभक्त कर दिया। एक राम जो प्रत्येक देहधारी के घट मे बोलता है, वह राम है—चेतन आत्माराम। यह चेतनराम एकेन्द्रिय से लेकर पचेन्द्रिय तक सर्व शरीरो मे विद्यमान है, जो बोलता-चालता है। दूसरा राम है दशरथ का दुलारा और कौशल्या का प्यारा। यह दुनिया का राम है। तीसरा राम वह है जिससे दुनिया का कारोबार चलता है। दुनिया भी कहती है कि 'राम जी की माया रामजी जाने।' रामजी की मर्जी, जैसा करे, आदि। भाई, क्या

जो सुख भी नहीं रहा, तो दुख किम रहसी ?
ये भी साथ गुजरावे, घटे बघे नहि रंच हू तामें
काहे को मनड़ो डुलावे, जीव रे, तू आर्त्तध्यान क्यो ध्यावे ?

भाई, जिनकी पुण्यवानी को देख करके अडोस-पडोस के लोग आश्चर्य करते हुए कहते थे कि यह जहा पैर रखता है, वही निधान प्रकट होता है और जहा हाथ डालता है वही रत्न हाथ आते हैं। इसका पुण्य कितना प्रबल है कि सर्व ओर से इसे सुख-शान्ति है, जीवन मे किसी भी प्रकार का कोई दु ख नही है। ऐसे भी सुख के दिन जब चले गये, पानी की एक बाढ मे ही सब वह गया, अग्नि की एक ज्वाला से सब भस्म हो गया और भूकम्प के एक झटके से ही सब ध्वस्त हो गया। जब वे सुख के दिन भी स्थिर होकर के नही रहे, तब ये दु ख के दिन भी कैसे स्थिर रहेगे ? ये भी एक न एक दिन अवश्य चले जावेंगे। जो लोग पाप कर्म के उदय आनेपर उसके फल से घबडा करके देवता, मत्रवादी या अन्य किसी के पास उससे बचने के लिए दौडते हैं, तो यह उनका अज्ञान है। शास्त्रकार कहते है—

जइ देवो विय रक्खवि मतो तंतो य खेत्तपालो य।
मियमाण पि मणुस्स तो मणुया अक्खया होंति ॥
एवं पेच्छंतो वि हु गह-भूय-पिसाय-जोइणी-रक्खं।
सरणं मण्णइ मूढो सुगाढमिच्छत्त भावादो ॥

यदि ये देवता, मत्र, तत्र और क्षेत्रपाल देवादिक मरने वाले मनुष्य की रक्षा करते होते, तो मनुष्य कभी मरते ही नही, सभी अक्षय-अमर हो जाते। ससार की जीवन-मरण और सुख-दु ख की यह प्रत्यक्ष दशा को देखता हुआ भी जो मनुष्य ग्रह, भूत, पिशाच, योगिनी और राक्षस आदि को अपना शरण मानता है, यह उसका अज्ञान है और गाढ मिथ्यात्व के प्रभाव से वह ऐसा मानता है।

### अमिट कर्म की रेख

यह जीव पूर्व काल मे जो भी कर्म उपार्जन करके आया है, वह उसे अवश्य ही भोगने पडते हैं। भले ही नही होने वाली—असभव भी बातें एक

**निजार्जितं कर्म विहाय देहिनो,**
**न कोऽपि कस्यापि ददाति किंचन ।**

अपने उपार्जित कर्म को छोड करके और कोई दूसरा व्यक्ति किसी भी प्राणी को कुछ भी सुख या दु ख नही देता है । हिन्दी भाषी कवि ने भी कहा है—

**कीधा विन लागे नहीं, कीधा कर्मज होय ।**
**कर्म कमाया आपणा, जेथी सुख-दुख जोय ।।**

कवि दलपतरायजी कह रहे हैं कि अपने किये कर्मों का विचार करके तुम अपने सम्यक्त्व को दृढ करो । यदि आपने कुछ भी भला-बुरा कर्म नही किया है, तो आपको उसका फल नही भोगना पडेगा ।

कर्म शब्द का अर्थ है—**'यत् क्रियते तत् कर्म ।'** जो जीवके द्वारा किया जाय, वह कर्म कहा जाता है । सस्कृत व्याकरण मे सात विभक्तिया होती है, जिन्हे कारक भी कहते है । वे इस प्रकार है—कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध और अधिकरण । जो काम को करे, उसे कर्त्ता कहते हैं । जो काम किया जाता है, उसे कर्म कहते हैं । जिसके द्वारा वह काम किया जाय, उस साधन को करण कहते है । जिसके लिए कार्य किया जाय, उसे सम्प्रदान कहते हैं । जिससे वह होता है, उसे अपादान कहते है । जिसके साथ कर्म का सम्बन्ध हो, उसे सम्बन्ध कारक कहते है और जिसमे किया जाय, उसे अधिकरण कहते है । इन सभी का आशय यही है कि जीव अपने भले-बुरे भावो के द्वारा जो भले-बुरे काम स्वय करता है, वह उस प्रकार के कर्मों को अपने भीतर वाध लेता है और समय आने पर वे ही कर्म सुख-दु खरूप फल हमको देते हैं । इस कर्म के सिवाय और कोई हमको सुख-दु ख का देने वाला नही है ।

मनुष्य हसते हुए तो बुरे कर्मों को करता है और उनके फल को रोते हुए भोगता है । भाई, जब तुमने हसते हुए कर्ज लिया है, तो हसते हुए ही उसे चुकाना चाहिए । रोते हुए चुकाना तो अपनी अज्ञता और नादानी दिखाना है । इसलिए कर्म के दु खदायी फल के मिलने पर ऐसा विचार करना चाहिए कि—

सच्चिदानन्द, जो निरन्तर अपने अनन्त सुख मे लीन है। भाई, सर्वात्मा राम तो वही है जो घट-घट मे बोलता है। जो राम दुनिया से न्यारा होकर अन्तर्धान हो गया, परम धाम को चला गया, उससे तो हमारा बहुत अन्तराल पड गया। वह राम न तो हर्ष करे और न विषाद करे। उनका तो कहना है कि हमे जो करना था, वह हम कर चुके। अब आप चाहे उनके नाम की माला फेरें, चाहे गुण-गान करें अथवा उनके आगे अपना मस्तक रगडें, परन्तु वे आपके लिए कुछ भी करने वाले नही हैं। अतएव आप लोग अपने राम से भेंट करो। उसे इधर-उधर मत जाने दो। परन्तु आप तो बडे होशियार हैं, उसे भी ठिकाने रख देते हैं। जब कभी कोई लडता है, तो लोग कहते हैं—अरे, इसके घटमे से तो राम ही निकल गया। भाई, आत्माराम जो यह बोलता राम है, वह सबके पास है। उसमे रमणीयता है, सुन्दरता है। जो योगियो के हृदय में रमण करने वाला राम है, वही सच्चा राम है। परन्तु उस रमणीयता के लाने मे देर लगती है। क्योंकि जो मकान धुए आदि से मैला नही है, उसमे एक बार थोडी सी कलई पोत दी जाय, तो वह स्वच्छ हो जाता है। परन्तु जहा सनातन से हलवाई की भट्टी जलती रही हो, उस दुकान को एक-दो बार कूची फेर कर यदि कोई उजलापन लाना चाहे, तो नही ला सकता। पहिले कितने ही दिनो तक उस कालिमा को सोडा के पानी से रगड-रगडकर धोना पडेगा और फिर कई बार कलई का हाथ फेरना पडेगा, तब कही जाकर उसका कालापन मिटेगा और स्वच्छता एव उज्ज्वलता आवेगी।

### आतम-राम

जो राम कृतकृत्य होकर जगसे दूर परम धाम मे चला गया है उसमे और अपने राम मे द्रव्य दृष्टि से कोई भेद नही है, उसके समान ही अपने राम मे भी अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख और अनन्त शक्ति विद्यमान है। परन्तु अपने राम की इन शक्तियो पर कर्म के आवरण पडे हुए है, राग-और द्वेष का अम्बार पडा हुआ है, इसलिए इनको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। और यह भावना करनी चाहिए कि—

वार सभव हो जाये, परन्तु कर्म की रेखा नही टल सकती है। जैसा कि कहा है—

**उदयति यदि भानुः पश्चिमायां दिशायां,**
**प्रचलित यदि मेरुः शीततां याति वह्निः।**
**विकसति यदि पद्मं पर्वताग्रे शिलायां,**
**तदपि न चलति नराणां भाविनी कर्मरेखा॥**

सूर्य पूर्व दिशा मे ही उदय को प्राप्त होता है, यह प्रकृति का अटल नियम है, वह भी कदाचित् दैविक शक्ति से, या मत्रादि के प्रयोग से पश्चिम दिशा मे उदय होने लगे, तो कोई बडी बात नही है। जिसकी नीव भूमिमे एक हजार योजन है, ऐसा अचल रहने वाला सुमेरु पर्वत भी यदि चल-विचल होवे, तो भले ही हो जावे। देखो—जन्माभिषेक के समय भगवान महावीर ने अपने अगूठे को दवाया, तो वह भी हिल गया था। अग्नि का स्वभाव उष्ण है, फिर भी यदि वह शीतल हो जाय, तो हो जावे। सीता के शील के महात्म्य से प्रज्वलित अग्नि भी शान्त हो गई थी। कमल सदा ही कीचड से उत्पन्न होकर जल मे ही विकसित होता है। वह भी किसी दैवी चमत्कार से पर्वत के शिखर पर स्थित शिला पर उत्पन्न हो जाय, तो हो जावे। अर्थात् इतनी सव असभव वाते भले ही सभव हो जाये। परन्तु होने वाली कर्म की रेखा कभी इधर से उधर नही हो सकती है। उसे टालने को कोई समर्थ नही है। ससार मे तीर्थं-कर मे वडा पुण्यशाली और शक्तिशाली दूसरा कोई नही होता। कर्मोदय से उनके भी कानो मे कीले ठोके गये। चक्रवर्ती की हजारो देव सेवा करते हैं, उनके भी शारीरिक व्याधिया हुई और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती को सात सौ वर्षों तक अन्धा रहना पडा। जव कर्म के उदय ने उन-महापुरुषो को भी नही छोडा। तव आज के लोग ऐसे पागल हो रहे हैं कि रामदेवजी के, भटियानीजी के, वावा साहव के और जोगमाया के चलो तो आखे खुल जावेगी, यह कैसे सभव है? भाई, ये सव खेल उस राम महापुरुष के नही हैं किन्तु इस कर्म राम के हैं, जिसके लिए कहा गया है कि 'तीसरे राम का जगत पसारा'।

चौथे राम तो सब जग मे न्यारे हैं। वह है परमब्रह्म, परमात्मा,

आप छूट जाता है। सिद्ध अवस्था पाते ही सब एक स्वरूप हो जाते हैं, वहा पर फिर कोई भेद-भाव नही रहता है। इसीलिए कहा गया है कि—

**जो एक मांहीं एक राजे, एक माही अनेकनों।**
**एक अनेक की नहीं सख्या, नमो सिद्ध निरंजनो॥**

पर भाई, यह शुद्ध सिद्ध दशा कब प्राप्त हो ? वह तो तभी प्राप्त हो सकती है, जब हम अपने घर मे पहुच जावें। हमारे घर पर तो दूसरो ने कब्जा किया हुआ है। आज यदि कोई किरायेदार पाच-सात वर्ष से आपके मकान मे रहता है, तो उससे भी सहज मे अपना मकान खाली नही करा सकते हैं, तब हमारे आत्माराम के जिस मकान पर कर्म रूपी जिन किरायेदारो ने अनादि काल से अधिकार कर रखा है, वे क्या सहज मे ही अपना कब्जा छोड देंगे ? कभी नही छोडेंगे। क्या लातो की ठोकर खानेवाले भूत बातो से जा सकते है ? उन्हे तो जब पैरो की जोरदार ठोकर दी जायगी, तभी वे निकलेंगे। अनुनय-विनय से बात करने पर वे घर से निकलने वाले नही है। फिर आज जैसे भ्रष्टाचारी राज्य मे तो मकान खाली करना असभव नही, तो कष्ट-साध्य अवश्य है। आज के युग की वात तो रामचन्द्रजी स्वामी ने कविता मे कही है—

**पूछताछ नहीं रही राज में कामेती अलिया,**
**कहो किसी का पहरा देवे चोर कुत्ता मिलिया।**
**हालाहल कलियुग चल आयो।**
**कूर कपट मत पाखंड करने जगनें ठग खायो॥**

जव अधिकारी वर्ग न्याय-परायण हो, तभी वह ठीक न्याय कर सकता है। किन्तु जहा स्वार्थ साधन की भावना भरी हो, वहा न्याय की क्या आशा की जा सकती है ? आपके सामने ये जज साहव वैठे हैं, जो वेतन मिलता है, उसी मे सन्तुष्ट हैं, ऐसे अधिकारी लोग सव हो जायें, तो समुचित न्याय की आशा की जा सकती है। परन्तु आज यदि कोई न्याय की आशा लेकर किसी अधिकारी के पास जाता है, तो उससे कहा जाता है कि वंगले पर आ करके मिलो, वहीं

हूं स्वतंत्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता द्रष्टा आतमराम।
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ॥
जो मै हूं वह है भगवान, जो वह है, मैं हू भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहां राग-वितान ॥

यदि बीच मे यह राग-द्वेष का वितान दूर हो जाय, तो अपने राम को भी उस नित्य, निरजन राम के समान बनने मे कुछ भी देर नही लगेगी। परन्तु हम अपने स्वरूप को भूले हुए हैं और अपने को दीन-अनाथ मानकर आक्रन्दन, हाहाकार और कुहराम मचा रहे है। हमने अपने ऊपर ससार भर की चिन्ताए और झझटे स्वय ही ले रखी है। इसी से आत्माराम दीन और अनाथ बना हुआ है। यदि अपनी इस दीनता और अनाथता को छोडकर सिंहवृत्ति धारण करले, राग-द्वेष को त्याग कर प्राणिमात्र के साथ मैत्री भाव और अहिंसक वृत्ति को धारण कर लेवे, तो तुझे भी उस राम के समान बनने मे विलम्ब नही होगा और तू भी सच्चिदानन्द आत्माराम बन जायगा।

किसी पुत्र-विहीन सेठ ने किसी किशोर से कहा—तू मेरी गोद मे आजा। उसने पूछा—आपके पास कितनी पू जी है? सेठ ने बताया कि मेरे पास पाच लाख की पू जी है। तब वह कहता है कि पाच लाख की पू जी तो मेरे पास है, फिर मैं क्यो आपके गोद जाऊ? गोद तो वही जायगा, जिसके पास पू जी नही होगी। आपके सामने उदाहरण है कि गौतम स्वामी भगवान महावीर के पट्ट धर शिष्य थे। परन्तु भगवान के मोक्ष पधार जाने के बाद क्या गौतम स्वामी उनके पट्ट पर बैठे? नही बैठे। क्योकि भगवान के मोक्ष पधारते ही वे उनके समान ही केवलज्ञानी हो गये। जो पूजी भगवान के पास थी, वही उन्हे भी प्राप्त हो गई। यही कारण है कि केवली के पाट पर दूसरा केवली नही बैठता है। इसलिए भगवान के पाट पर सुधर्मा स्वामी बैठे।

भाइयो, तब तक ही राम-राम, अरिहन्त-सिद्ध आदि के नाम की माला फेरी जाती है, जब तक कि यह आत्माराम स्वय राम और अरिहन्त-सिद्ध नही बनता है। किन्तु उस अवस्था के प्राप्त करते ही सबका राम-नाम जपना अपने

अवस्था को पाने के लिए पच आचारो का आचरण, द्वादशाङ्ग श्रुत का अध्ययन एव द्वादश प्रकार का तपश्चरण करके आत्मसाधना करनी पडती है तभी आत्माराम अरिहन्त वनकर और कृतकृत्य होकर शुद्ध-बुद्ध निरजन पद को प्राप्त करते हैं।

जैनधर्म किसी एक जाति या व्यक्ति की धरोहर नही है। जो भी इसे धारण करे, वही शुद्ध आत्माराम बन सकता है। जैसे लखपति और करोडपति बनना किसी एक जाति या व्यक्ति के लिए रिजर्व नही है। किन्तु जो भी व्यापारी पुरुषार्थ करे, वह लखपति और करोडपति बन सकता है। इसलिए हमे अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार उत्तम पुरुषार्थ जो धर्म है, उसे करने का प्रयत्न करना चाहिए।

इस प्रकार एक-एक शब्द की अनेक प्रकार से यदि हमे व्याख्या करना है तो स्थानाङ्ग और समवायाङ्ग का मनन और चिन्तन करना चाहिए। उनकी एक-एक कारिका मे और एक-एक सूत्र मे इतना गहन रहस्य भरा हुआ है कि यदि हम जीवन भर मे भी उसका पार नही पा सकते है। किन्तु गुरुओ के चरण-प्रसाद से यह सब सम्भव है। जो गुरु-चरणो मे वैठकर नित्य प्रति उनका मनन-चिन्तन करते हैं, उन्हें वह रहस्य अल्पकाल मे ही प्राप्त हो जाता है। किन्तु गुरु चरणो मे भी भद्र एव नम्र होकर वैठना होगा, त्याग और वैराग्य के भाव भीतर मे भरने होंगे और पापमयी प्रवृत्तियो को छोडना होगा। यदि आप लोग इस मार्ग से चलेंगे, तो कुछ दिनो मे ही परम आनन्द और शान्ति का अनुभव करने लगेंगे।

हा, तो मैंने व्याख्यान के प्रारम्भ मे तीन प्रकार के स्थविर वतलाये थे। उनमे वयस्थविर का महत्त्व लोकव्यवहार मे है, दीक्षास्थविर का महत्त्व तपश्चरण के रूप मे है और सूत्र स्थविर का महत्त्व सम्यग्ज्ञान की दृष्टि से है। सूत्र स्थविर के सम्यग्ज्ञान की महिमा को वतलाते हुए शास्त्रकारो ने कहा है—

जं अण्णाणी कम्मं खवेइ भवसयसहस्सकोडीहिं।
तं णाणी तिहिगुत्तो खवेइ उस्सासमेत्तेण॥

बात सुनेंगे । अब बंगल पर मिलने का क्या मतलब होता है, यह आप सब जानते ही हैं । ऐसे रिश्वत खोरो-से क्या कोई अपना मकान किरायेदारो से खाली करा सकता है ? कभी नही ? किन्तु जब मकान मालिक हाथ में डडा लेकर किराये-दारो को ललकारता है, तब किरायेदार चुपचाप अपना बसना-बोरिया बाधकर भागते नजर आते है । भाई, इस सबके कहने का अभिप्राय यही है कि हमे भी अपने आत्माराम के घर पर कब्जा किये हुए इन कर्म-रूपी किरायेदारो को तपश्चरण रूपी डडा लेकर निकालने का परम पुरुषार्थ करना होगा, तभी उनसे अपना मकान खाली करा सकेंगे । अन्यथा ये सहज मे खाली करनेवाले नही है । और वे खाली करेंगे भी कैसे ? जब तक कि हमारी ओर से उन्हें भर-पूर पोषण मिल रहा है, हमारे ही विकारी भावो से उन्हे समर्थन प्राप्त हो रहा है, तब वे कर्म हमारे आत्माराम का मकान खाली भी कैसे करेंगे । उनसे अपना मकान खाली कराने के लिए यह आवश्यक है कि हम अपने भीतर विवेक जाग्रत करे और उससे यह निर्णय करे कि विषयो की चाह और कषायो की दाह मेरे स्वभाव नही है । ये तो कर्म-कृत है । जब तक मैं विषय-कषाय की चाह-दाह मे पडा रहूगा, तब तक और पुष्ट एव बलवान् बनेंगे । अत इस चाह-दाह को छोडकर मैं पचेन्द्रियो का दमन करू, कषायो का शमन करू और पर पदार्थों मे इष्ट-अनिष्ट बुद्धि छोडकर अपने ज्ञान-दर्शनमयी ज्ञाता द्रष्टा आतमराम का चिन्तवन करू । ऐसा करने से जब उन कर्मों को खुराक नही मिलेगी, तब सब भूख से वे स्वय ही मर जावेंगे और उनसे हमारा मकान खाली हो जायगा । फिर हम अपने मकान की तपस्तेज से शुद्धि करके और शुक्ललेश्या से सफेदी करके स्वच्छ-निर्मल निज भवन मे चिरकाल तक निराकु-लता पूर्वक विश्राम करेंगे ।

इस प्रकार के स्वच्छ भवन मे निवास करने वालो को सिद्ध परमेष्ठी कहते हैं । यह शुद्ध दशा कर्मरूपी शत्रुओ के नाश के बिना सम्भव नही है, अत सिद्ध बनने के पूर्व अरिहन्त परमेष्ठी बनना पडता है । जब यह आत्माराम कर्म अरियो का हनन करता है, तभी वह चौतीस अतिशयो, पैंतीस वचनातिशयो और आठ प्रातिहार्यों का धारक एव अनन्त चतुष्टय का स्वामी बन जाता है । इस अरिहत

# १४ समन्वयवाद

### समन्वय मे सुषमा

भाइयो, अभी आपके सामने बताया गया है कि प्रत्येक वस्तु की प्रकृति या स्वभाव भिन्न-भिन्न है। यदि प्रत्येक वस्तु की भिन्न-भिन्न प्रकृति न हो तो उनके सम्मिश्रण से एक अद्भुत रस का आस्वाद भी नही आ सकता है। भोजन के पश्चात् उसके सम्यक् परिपाचन और मुख-शुद्धि के लिए जो चूर्ण लेते हैं तो उसमे काली मिर्च, सोठ, जीरा, नमक, अकरकरा आदि अनेक वस्तुए मिली होती हैं। यद्यपि उन सबका स्वाद भिन्न-भिन्न है, तथापि उनके सम्मिश्रण से बने उस चूर्ण का स्वाद एक विलक्षण ही प्रकार का हो जाता है। और खाने वाला उसके स्वाद की प्रशसा करता है। यह उदाहरण विभिन्न रसो के सम्मिश्रण का है। इसी प्रकार विभिन्न रूपो के समिम्श्रण मे भी देखिये—वर्षाकाल मे जो इन्द्र धनुष दिखाई देता है, उसके अन्तर्गत अनेक रग हैं। एक-एक रग देखने पर कोई विशेषता नही दिखेगी। किन्तु उन्ही अनेक रगो के सम्मिश्रण पर वह इन्द्र धनुष कितना चित्ताकर्षक दृष्टिगोचर होता है। मोर के पुच्छ को देखिये—उसमे कितने रग हैं। उसे देखकर तो आज के वडे-वडे वैज्ञानिक भी चक्कर खा जाते हैं। भाई, प्रकृति की करामात वडी विचित्र एव गहन है। आज यदि कोई अतिकुशल भी कलाकार मोर के एक पख को वनाने का

इस गाथा के अर्थ को पण्डित दौलतराम जी ने इस प्रकार कहा है—

**कोटि जन्म तप तपैं ज्ञान-विन कर्म झरै जे ।**
**ज्ञानी के छिन-मांहि त्रिगुप्ति तें सहज टरै ते ॥**

भाइयो, हमे इस सम्यग्ज्ञान को पाने के लिए सूत्र-स्थविर की उपासना करनी चाहिए, जिससे कि हम उसे पाकर असख्यभवो के कर्मों के क्षणमात्र मे भस्म कर सके ।

वि० स० २०२७, आसोज वदि–१२
सिंहपोल, जोधपुर

से करता है, क्योकि प्रत्येक वस्तु अनेक धर्मात्मक हैं। इसीलिए कहा गया है कि—

'त्वया गीत तत्त्व बहुनय - विवक्षेतरवशात् ।'

अर्थात्—हे भगवन्, आपने तत्त्व का स्वरूप अनेकनयो की मुख्यता और गौणता की विवक्षा और अविवक्षा से किया है। सापेक्षवाद का कथन आज विज्ञान-सम्मत माना जाता है। आज जो नवीन शोध कार्य हो रहे हैं, उत्तरकाल की शोधो से उनके निर्णय बदलते रहते हैं। किन्तु सर्वज्ञ वीतराग जिनदेव ने वस्तु के स्वरूप-विषयक जो निर्णय किये हैं, वे त्रिकाल अबाधित हैं, उनमे कभी परिवर्तन होने वाला नही है। अनेकान्तवाद की यही विशेषता है।

**अनेकात : जीवन व्यवहार का मार्ग**

भाइयो, व्यवहार मे भी एकान्तवाद से काम नही चलता है, किन्तु अनेकान्तवाद के आश्रय से ही लोकव्यवहार भली-भाति चलता है। जैसे किसी सेठने अपने मुनीम से कहा—मुनीमजी, अमुक शहर मे जाकर अमुक आढतिया का हिसाब करके आओ। साथ ही हिदायत दी कि 'देखो—अपना तो गवाना मत और उसका अधिक लाना मत।' मुनीम कहता है—सेठ साहब, आपका आदेश स्वीकार है। किन्तु वहा जैसा अवसर देखूगा वैसा ही करूगा। अब वह मुनीम उस आढतिया के यहा गया और उसने सर्वप्रकार से छान-बीन की कि आसामी कैसा है, उसकी नीयत कैसी है और आर्थिक परिस्थिति कैसी है? छान-बीन के पश्चात् मुनीम इस निर्णय पर पहुंचा कि आसामी तो अच्छा है, परन्तु अभी इसकी आर्थिक स्थिति ठीक नही है। अत यदि मैं इसके साथ झगडा करूगा तो क्या हाथ आयगा। अदालत मे दावा करूगा तो पहिले अपना ही खर्च करना पडेगा, वकील को मेहनताना देना होगा। पीछे यदि मुकद्दमा मे जीत भी हो गई और मय व्याज के अदालत से डिग्री भी मिल गई तथा कुर्की भी जारी करा ली, तो भी यहा से क्या वसूल होने वाला है? क्योकि आसामी के पास न निजका मकान-दुकान है और न दुकान मे कुछ माल-टाल ही है। इसके घर मे तो पाच फूटे वर्तन भी नजर नही आते हैं। लोगो ने भी कहा—मुनीम जी, अदालत मे जाने पर यहा से क्या वसूल करोगे? उल्टा

पहिले आधुनिक विज्ञान वाले पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति में जीव नहीं मानते थे। किन्तु जब से सर जगदीशचन्द्र बसु ने वनस्पति में श्वासोच्छ्वास का होना यन्त्र द्वारा प्रत्यक्ष दिखा दिया है, तब से वैज्ञानिक लोग वनस्पति, पृथ्वी और जल में जीव स्वीकार करने लगे हैं। फिर भी अग्नि और वायु में अभी उन्होंने जीवन नहीं स्वीकार किया है। आज जो नवीन शोधें दिन-पर-दिन हो रही हैं उससे आशा है कि निकट भविष्य में इन दोनों में भी चैतन्य का सद्भाव स्वीकार कर लिया जायगा। इस प्रकार जैनागमों में पृथिवी आदि के जो जीवनपना माना गया है, वह विज्ञान से भली-भांति सिद्ध है। पृथ्वीकाय आदि किसी एक काय के आरम्भ में छहों काय के जीवों की हिंसा होती है, क्योंकि सर्वत्र छहों काय के जीव विद्यमान हैं। यह बात भी आज विज्ञान से प्रमाणित है। जैनदर्शन एक वैज्ञानिक दर्शन है और वह वस्तु के स्वरूप का प्रतिपादन किसी एक दृष्टि से नहीं करता है, किन्तु नाना दृष्टियों

आपका कोई घनिष्ठ मित्र है और जैसा आप कहते हैं, वह वैसा ही काम करता है। वह आपके कहे अनुसार किसी काम को पूरा करने के लिए आपके घर गया और आपकी श्रीमतीजी से उसके विषय मे कहा। वह बोला—खबरदार, यदि इस सम्बन्ध मे कुछ कहा तो घर मे आना बन्द कर दूगी। दुकान पर सेठजी का राज है। किन्तु घर पर मेरा राज है। यहा मैं जो कुछ कहूगी, वही होगा। अब भले मित्र का यही कर्तव्य है कि वह चुपचाप वापिस लौट आवे।

भाई, एकबार मैं एक गाव में किसी सस्था के कार्य के लिए गया। गाव वालो ने बताया कि यहा पर तो अमुक व्यक्ति सम्पन्न है, पूजी भी पास मे है। यदि वे हु कारा भर लें तो काम बन जाय। मैंने अपने उपदेश मे उस कार्य के करने की चर्चा की। उस सेठने कार्य की सराहना की। जब उससे द्रव्य देने के लिए कहा गया तो बोला—महाराज, मुझे सोचने के लिए कुछ अवसर दीजिए। उसकी इस बात से मैं समझ गया कि वह अपनी श्रीमतीजी से सलाह करना चाहता है। मैंने भी कह दिया—अच्छा, सोच लेना। सेठ की इच्छा पच्चीस हजार देने की दिखी। सेठ व्याख्यान से उठकर दुकान पर गया। उसके घर पहुचने के पूर्व ही मैं गोचरी के लिए उसके घर चला गया। मैंने उसकी सेठानी से कहा—बाई, उत्तम काम है, तेरी क्या मर्जी है। सेठानी बोली—बावजी, सेठजी जाने। मैंने कहा—जो तू कहेगी, वही होगा। सेठानी ने कहा—जो आप हुक्म करें। तब मैंने कहा—पचास हजार चाहिए। तब वह बोली—पाच हजार मेरे अधिक हैं। मैंने कहा—जब सेठजी आवें, तब उनसे कह देना कि महाराज ने बुलाया है। उन्हे मेरे पास जल्दी भेज देना। और अवसर होवै तो तू भी साथ मे आ जाना।

दो पहर के व्याख्यान मे वे सेठजी आये और सेठानी ने भी सामायिक कर ली। गाव वालो ने कहा—महाराज, अमुक काम करना आवश्यक है। मैंने पूछा—भाई, उसके लिए कितने रुपयो की आवश्यकता है? लोगो ने बताया कि चालीस-पेतालीस हजार मे काम हो जायगा। सब लोग सेठजी की ओर

तुम्हारे वडप्पन मे ही कलक लगेगा। आसामी भी कहता है कि मैंने मूल पूजी तो दे दी है। केवल व्याज ही वकाया है। वह भी मैं देता। परन्तु इन दिनो मेरा काम ढीला पड गया है। इस प्रकार चारो ओर की परिस्थिति देखकर वह मुनीम अपने कर्त्तव्य का निर्णय करता है और जो कुछ वह राजी-खुशी देता है, उसमे ही फैसला करके वापिस आजाता है। अथवा कोई ऐसा आसामी है जिसकी निजी मकान-दुकान है और दुकान मे भी लाखो का माल है। फिर भी मुनीमजी के मागने पर पिस्तौल दिखा कर कहता है—खवरदार, यदि देने-लेने की वात की तो गोली मार दूगा। ऐसे अवसर पर भी मुनीम सव आगा-पीछा सोचकर काम करता है।

आप लोगो का ज्ञात है कि जो नौहरा आज महाराजा विजयसिहजी का मौजूद है उसका पट्टा दिखाने के लिए श्यामविहारी जी ने हुक्म दिया। अव लोग पट्टा देखने के के लिए वहा गये तव वह महाराजा विजयसिहजी—वहा पर दुनाली लेकर बैठ गया और पट्टा मागने वालो से दुनाली का घोडा दवाते हुए वोले—कहो, दिखाऊ पट्टा? तो यह सुनते ही सव लोग वापिस चले गये। भाई, अवसर देखकर ही काम किया जाता है। इसीलिए तो सेठ ने मुनीम से कहा था—'घर का गवाना मत'। मुनीम देखता है कि आसामी की नीयत बुरी है, तो शान्ति से काम लेता है और कहता है—भाई, मैं तो सेठ का नौकर हू। आप जैसा चाहे, मैं वैसा ही फैसला करने को तैयार हू। वह कहता है—बारह आने दूगा, या आठ आने और चार आने देने की कहता है, तो उसी को लेकर वापिस चला आता है। सेठजी कहते है—मुनीमजी, यह क्या किया? तब मुनीमजी कहते है—क्या मैं सारा गवाकर आता? वहा परिस्थिति ही ऐसी थी, अत. यही लेकर फैसला कर आया हू।

भगवान् ने भी यही आदेश और उपदेश दिया है कि द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का विचार करके ही किसी कार्य का निर्णय करना चाहिए, केवल अपनी दृष्टि से ही किसी बात का निर्णय नही करना चाहिए। किन्तु सामने वाले की स्थिति को भी ध्यान मे रखकर निर्णय करना चाहिए।

ने दीवान से पूछा—सामने से किसकी यह सवारी आ रही है ? कोई शत्रु तो चढकर नही आ रहा है ? जाकर देखो—कौन आ रहा है राजा वही पर ठहर गये। दीवान ने जाकर देखा—अरे, ये तो नगरसेठ हैं। उनसे पूछा—सेठजी, कहा गये थे ? सेठजी बोले—दीवान साहब, हवाखोरी के लिए गया था। अब वहा से वापिस आ रहा हू। दीवान ने वापिस आकर राजा से कहा—ये तो अपने नगर के ही सेठजी हैं। राजा ने पूछा—इनका क्या नाम है, और कहा पर रहते हैं ? दीवान ने सेठजी का पूरा परिचय दिया। सुनकर राजा बोला—अरे, यह तो घर मे ही घाटा है। नगर मे ऐसे-ऐसे मालदार सेठो के रहते हुए भी मुझे दीवानजी, आपने आज तक कुछ भी जानकारी नही दी ? यदि ऐसे सेठो से मित्रता की जाय तो राज्य का दारिद्रय दूर हो जाय। दीवान बोला—हा महाराज, सेठ से अवश्य ही मित्रता स्थापित करनी चाहिए। बस, फिर क्या था ? तुरन्त वही जाजम विछवा दी गई। और राजा साहब वही विराज गये। जब सेठजी की सवारी यहा तक पहुची तो उन्हें लोगो से ज्ञात हुआ कि सामने राजा साहब विराज रहे हैं। सेठ तुरन्त सवारी से नीचे उतरे और राजा साहब से रामा-सामा करने के लिए सामने गये। सेठजी को आता हुआ देखकर राजाजी कुर्सी से उठे और पाच-सात कदम आगे जाकर सेठजी का स्वागत करते हुए बोले—सेठजी पधारिये। यह कहकर राजाजी सेठजी का हाथ पकडकर अपने पास की कुर्सी पर बैठाने लगे। तब सेठ ने कहा—मैं आपकी बराबरी मे कैसे बैठ सकता हू ? महाराज ने कहा—यह आपकी ताजीम है, यह कहकर और उनका हाथ पकडकर अपने पास की कुर्सी पर उन्हें बिठा दिया। और कहा—सेठजी, हमारे नगर मे रहते हुए भी आप कभी मिलने तक भी नही आये ? सेठजी बोले - महाराज, मैं आना तो चाहता था, परन्तु आपके भय के मारे हाजिर नही हो सका। राजा ने कहा—सेठजी, आज से आप मेरे मित्र हैं, और मैं आपका मित्र हू। सेठने कहा—महाराज, मैं विचार कर कहूगा। राजा बोला—सेठजी, इसमे विचारने क्या बात है ? यह कहकर उन्होंने अपने शिर की पगडी उतार कर सेठ के शिर पर रख दी और सेठ के शिर की उतारकर अपने शिर पर रख ली। यह देखकर सर्व उपस्थित लोग कहने लगे—वाह रे सेठ,

देखने लगे और बोले—यदि सेठजी कह देवे तो क्यो दूसरो को कष्ट दिया जाय। मैंने सेठजी की ओर मुख करके कहा—भाई, क्या मर्जी है ? तुमने सलाह कर ली है ? मेरे ऐसा कहते ही सेठानी बोली—महाराज की जो मर्जी होवे, वही ठीक है। तब मैंने कहा—इक्यावन हजार ठीक है। उसने कहा—जैसी महा-राज की आज्ञा। भाई, दान-पुण्य के अवसर पर अपनी सहधर्मिणियो से सलाह करके काम करना ठीक रहता है, क्योकि वे आपकी धर्मपत्नी है। जो धर्म को पाले, उसे ही धर्मपत्नी कहते है। और उन्हे भी चाहिए कि पति के प्रत्येक सत्कार्य मे वे पूर्ण सहयोग देवे। शास्त्रकार कहते है कि—

नित्य भर्तृमनीभूय वर्तितव्यं कुलस्त्रिया।
धर्म श्रीशर्मकीर्त्येककेतनं हि पतिव्रता॥

कुलवन्ती स्त्री को सदा अपने भर्तार के मन के अनुकूल ही वर्तना चाहिए। क्योकि पतिव्रता स्त्री धर्म, लक्ष्मी, कीर्त्ति और सुख की आगार है।

इस प्रकार वहा की आवश्यकता एक सेठजी ने ही पूर्ण कर दी। भाई, जिसके हाथ मे हो, वही दे सकता है। जिसके हाथ मे नही है, उससे कहना व्यर्थ है। मनुष्य को दाता की नाडी का परिज्ञान होना चाहिए। हम आपसे कहते है कि अमुक काम करना है तो आप लोग सुन करके माथा नीचा कर लेते हैं। परन्तु हमे तो हर एक की नस देखनी पडती है कि कहा दबाने पर काम सिद्ध होगा। कहने का सार यही है जहा जिस प्रकार से कार्य सम्पन्न होने की सभावना हो, वहा उसी प्रकार से अवसर देखकर कार्य सिद्ध कर लेना चाहिए। घर मे यदि पुरुष चतुर है तो वह घर का काम चला सकता है और यदि स्त्री चतुर हो तो वह भी काम चला सकती है ?

### चतुर नारी

किसी शहर मे एक श्रीमन्त सेठ रहते थे। उनकी दिसावर मे पन्द्रह सौ दुकानें चलती थी। घर पर सर्व प्रकार के राजसी ठाठ-बाट थे। और शान-शौकत के साथ ही घर से बाहिर निकलते थे। एक बार वे हवाखोरी करके घर वापिस आरहे थे। उनके साथ मे सैंकडो कामदार थे और हाथी घोडे भी चल रहे थे। इसी समय सामने से नगर के राजा की सवारी निकली। राजा

होती है। तुझे तो खुशी मनानी चाहिए। यह सुनकर सेठानी ने फिर कहा— कि आपने यह काम अच्छा नही किया है, इसका भविष्य मे आपको पता चलेगा। सेठजी बोले—तू व्यर्थ की आशका करती है, राजसुख और भी मिल गया है। अब महाराज के पास मेरा आना जाना होगा और काम-काज भी शामिल होंगे, जिससे मेरी धाक भी सब पर रहेगी।

इस प्रकार सेठजी का राजा के यहा आना-जाना प्रारम्भ हो गया। सेठजी की दिसावरो की दुकानो से कोई बढिया वस्तु आती तो वे राजा के यहा भिजवाते। और राजा के यहा से भी बदले मे कोई न कोई वस्तु भेंट मे आती ? इस प्रकार दोनो की मित्रता दिन-प्रति दिन घनिष्ठ होने लगी। राजा को किसी खास मामले मे यदि सलाह की आवश्यकता होती, तो वे सेठजी से लेते रहते। सेठजी की सलाह से राज-कार्यों मे लाभ भी पर्याप्त होने लगा। भाई, महाजन की बुद्धि केवटने की होती है। धीरे-धीरे मित्रता ने इतना गाढ रूप ले लिया कि महाराज हर मामले मे सेठजी के साथ ही विचार-विनिमय करने लगे। यह देखकर दीवान ने सोचा कि यह बनिया राजा के कानो मे लग गया है, तो फिर हमारा यहा रहना कठिन है। अब कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि इसका यहा से सम्बन्ध-विच्छेद हो जाय तो ठीक रहे। अन्यथा हम सब कामदारो के विस्तर गोल हो जावेंगे।

एक दिन अवसर देखकर दीवान ने राजा से कहा—महाराज, आजकल आप राज्य का काम-काज नही देखते हैं और सेठजी के भरोसे ही सब कुछ छोड दिया है, सो ठीक नही है। क्योकि नीति मे कहा है—

> तुलसी कबहु न कीजिए, वणिक-पुत्र विश्वास।
> धीरप देके धन हरे, रहे दास का दास॥

दीवान की बात सुनकर महाराज बोले—दीवानजी, आप यह क्या उल्टी बात कह रहे है। देखते नही कि राज्य मे प्रति वर्ष जो लाखो का घाटा रहता था, वह उनकी सलाह से पूरा हो गया है और अब राज्य को लाखो का मुनाफा हो रहा है। सेठ की भाग्यवानी वडी प्रबल है, वह जो सलाह देता है, उसमे

तू बडा सौभाग्यशाली है जो राजा ने तुझे अपना मित्र बनाया है। इसके पश्चात् सामान्य शिष्टाचार के पश्चात् दोनो अपने-अपने महलो पर चले गये।

सेठजी ने घर पहुचकर हाथ-मुह धोया और भोजन के लिए बाजोट पर विराज गये। परोसगारी करते समय सेठानी की दृष्टि सेठजी की पगडी पर गई। पगडी पर सदा के समान पेच नही दिखाई दिये। सेठजी मरोडदार पेच लगाते थे। भाई, जिसके हाथ मे मरोड है, उसके पेच मे भी मरोड होती है। सेठानी बोली—आज आपकी यह बिना मरोड वाले पेच के पगडी कैसी ? और आज आपके चेहरे पर इतनी खुशी कैसी दिख रही है ? सेठ ने मार्ग मे घटी हुई सारी घटना कह सुनाई। साथ ही उसने यह भी कहा कि मैंने महाराज से बहुत कुछ कहा कि मैं सेठानी जी से पूछे बिना मित्रता करने के विषय मे कुछ नही कह सकता हू। मगर महाराज नही माने और उन्होने अपने हाथ से ही यह पगड-बदल दोस्ती कायम कर दी। यह सुनकर सेठानी बोली—आपने बहुत भूल की है। राजाओ से कभी मित्रता नही करनी चाहिए। इन लोगो से सदा इस प्रकार दूर रहना चाहिए जिस प्रकार कि अग्नि से दूर रहा जाता है। नीति कहती है कि—

'नटायन्ते हि राजानः सेव्या हव्यवहा यथा।'

अर्थात् राजा लोग नट के समान आचरण करते है, कभी डोरी के इस किनारे नाचते है और कभी उस किनारे नाचते हैं। इन लोगो की दृष्टि बदलते देर नही लगती है। इनकी सगति को अग्नि के समान दूर से ही अच्छी है। अग्नि हमारे भोजन को पकाती है, सर्दी को दूर करती है एव अन्य और भी बहुत उपकार करती है, परन्तु उसे लोग दूर से ही तापते हैं, और उससे बच कर ही रहते है। इसी प्रकार राजाओ की सेवा भी दूर से ही करना चाहिए। इन लोगो के साथ की गई घनिष्ठता या मित्रता हमेशा दुःख देती है।

राजा मित्र केन दृष्टं श्रुतं वा

सेठानी की इन बातो को सुनकर सेठजी बोले—अरी तू तो बिलकुल बावली सी दिखती है। राजाओ के साथ मित्रता तो पुण्यशालियो के नसीब मे

युक्ति सगत है। पहिले आपको स्वीकृति देना चाहिए। सेठ ने मन मे हर्षित होते हुए कहा—महाराज, आनेवाली इसी पचमी के दिन सर्व राज-परिवार के लिए सादर निमत्रण स्वीकार कीजिए। राजा ने सेठजी को स्वीकृति दे दी। और सेठजी हर्षित होते हुए अपने मकान पर आये। महाराज भी राजमहल चले गये।

घर पर आते ही सेठजी ने सेठानीजी से कहा—मैं इसी पचमी के लिए महाराज को सपरिवार भोजन का निमत्रण दे आया हू और महाराज ने स्वीकृति भी दे दी है। अत उस दिन के लिए भोजन की उत्तम से उत्तम तैयारी होना चाहिए, जिसे देखकर महाराज भी दग रह जायें। सेठजी की वात सुनते ही सेठानी वोली—आपकी वुद्धि को क्या हो गया है ? दिन आनन्द से वीत रहे है, तो उसमे अपने ही हाथ से क्यो आग लगाकर नष्ट करते हो ? अरे, राजा का घर के ऊपर वोलना ही वुरा है, फिर उसे घर के भीतर वुलाना तो और भी अधिक अनर्थकारक है। राजा लोगो से तो दूर की मित्रता ही भली होती है। उन्हें अपना घर कभी नही दिखाना चाहिए। इन लोगो के भाव पलटते देर नही लगती है। सेठानी की वात सुनकर सेठ वोला—तुम तो भली वात मे भी वुराई ही देखती हो। जानती नही कि यदि राजा प्रसन्न हो जाय, तो साधारण मनुष्य को भी निहाल कर देता है। कहा भी है कि 'राजा प्रसन्नं गजभूमिदानं' राजा जिस पर प्रसन्न हो जाय तो उसे हाथी-घोडे और जमीन-जागीर दे देता है। यदि महाराज की अपने ऊपर प्रसन्नता वनी रहेगी, तो आगे अपन और भी अधिक फूलें-फलेंगे। सेठानी ने वहुत कुछ समझाया। पर सेठ के गले एक वात भी नही उतरी। उल्टा उसे यह कहकर निरुत्तर कर दिया कि अव तो मैं निमत्रण दे आया हू, उसे तो पूरा करना ही पडेगा ? क्या दिया हुआ निमत्रण भी वापिस लिया जाता है ? देखो—केवल तीन दिन शेष है। इस वीच मे सर्व प्रकार की अच्छो से अच्छी तैयारी होना चाहिए। यदि तू तैयारी करने से इनकार करती है, तो मैं वाहिर ही वगीचे मे तैयारी करा लूगा। पर इसमे तेरी शोभा नही रहेगी। सेठजी की यह वात सुनकर सेठानी वोली—यदि मुझसे तैयारी कराना चाहते हैं तो आप सारे गाव को

सदा ही विजय, यश और लाभ तीनो की प्राप्ति हो रही है अत आपकी बात मैं कैसे सच मान सकता हूं।

दीवान सोचने लगा—सेठ ने महाराज को सर्व ओर से अपने वश मे कर लिया है। अत महाराज उसके विरुद्ध कोई बात सुनने वाले नही है। अब और कोई उपाय सोचना चाहिये जिससे कि सेठ की सत्ता यहा से हटे। अत एक दिन अवसर पाकर उसने महाराज से कहा—सेठजी के यहा से नित्य कोई न कोई नयी भेट आती रहती है। परन्तु आपने तो उनको कभी जल-पान के लिए भी नही बुलाया है। मित्रता के लिए जैसे अपनी गुप्त बात कहना और मित्र की गुप्त बात सुनना और परस्पर मे उचित सलाह देना आवश्यक है, उसी प्रकार खाना-खिलाना और देना-लेना भी आवश्यक है। नीति मे कहा है—

> ददाति प्रतिगृह्णाति, गुह्यमाख्याति पृच्छति।
> भुंक्ते भोजयते चैव षड्ेते प्रीतिलक्षणम्॥

महाराज, मित्र को भेट देना और उसकी भेट को स्वीकार करना, अपने सुख-दुःख की गुप्त बात मित्र से कहना और उसके सुख-दुःख की गुप्त बात पूछना जैसे मित्र के साथ प्रीति बढाती है, उसी प्रकार मित्र को खिलाना और उसके यहा खाना-पीना भी प्रीति को बढाता है। इसलिए महाराज, एकबार तो आप सेठजी को प्रीतिभोज दीजिए। राजा साहब यह सुनकर हर्षित होकर बोले - दीवानजी, आपका कहना बिलकुल सत्य है। उन्हे आज ही कल के भोजन के लिए आमन्त्रित करो।

सायकाल के समय महाराज हवाखोरी के लिए गये। सेठजी भी हवा-खाने के लिए गये हुए थे। अत नगर के बाहिर ही दोनो का आमना-सामना हो गया। साधारण शिष्टाचार के पश्चात् राजा ने कहा—सेठ साहब, कल सपरिवार आप राजमहल मे भोजन के लिए पधारिये। सेठ ने कहा—महाराज, मैं प्रतिदिन आपका ही तो खाता हू। फिर भी यदि आपका आदेश है तो उसके पूर्व मेरा निवेदन है कि पहिले महाराज मेरा घर पवित्र करें। पीछे आपका आदेश शिरोधार्य है। दीवानने कहा—हा महाराज, सेठजी का कहना बिलकुल

पचमी के दिन यथासमय सर्व राज-परिवार के एव नगर-निवासियो के साथ महाराज जी मने के लिए पधारे। मेठजी ने उन सवकी समुचित अग-वानी की और मवको यथास्थान भोजन के लिए वैठाया। सेठनी ने अपने भडार मे वीस हजार सोने के और तीस हजार चादी के थालो को निकलवाकर उनमे ही सवके लिए परोसगारी कराई। किसी के लिए भी पीतल के वर्तनो का काम नही था। सव थालो मे सोने और चादी की कटोरिया थी। सवको एक सी मिठाइया, नमकीन, पूडी शाक और कचौडिया-पकौडिया परोसी गई। सारे भोजन करने वाले सेठजी की रसोई की प्रशसा करने लगे। जव सवकी परोसगारी हो गई, तव सेठजी ने महाराज से भोजन प्रारम्भ करने के लिए प्रार्थना की। महाराज के भोजन प्रारम्भ करने के साथ ही सवने भोजन करना प्रारम्भ कर दिया। सहसा महाराज की नजर अपने सामने वैठे दीवानजी के ऊपर गई। वे सेठजी का यह ठाठ-वाट देखकर के आश्चर्य-चकित होकर चित्र-लिखित से रह गये। ईर्ष्या से उनका हृदय जलने लगा और हाथ मे उठाया लड्डू हाथ मे ही रह गया। तव महाराज ने कहा—दीवानजी, क्या नीद आ रही है? खाना तो प्रारम्भ करो। दीवान वोला—महाराज, मैं कैसे खाऊ? मेरा तो माथा और पेट दुख रहा है?

भाइयो, सचाई तो यह है कि ईर्ष्या से ग्रास उसके लिए मुख मे देना दूभर हो गया। मगर राजा साहव से अपने मन की वात कैसे कहे! इमलिए शिर और पेट के दर्द का वहाना लेकर महाराज से उक्त वात कही—महाराज ने कहा—जो कुछ भी अनुकूल पडे, वही खाओ। वह खाने का अभिनय करता हुआ वोला—महाराज, सेठजी ने आपको यह पार्टी आपकी नाक काटने के लिए दी है? राज्य मे कभी आपको नगर-भोज का अवसर आता है तो दो कौडी की पत्तलो मे जिमाते हैं। जवकि यह सेठ पचास हजार मनुष्यो को मोने-चादी के थालो मे जिमा रहा है। अव यदि आप मेरी वात मानें तो इन मव थालो को मय कटोरी गिलासो के राज भण्डार मे पहुचा दिया जावे। इसे अपने वैभव का वहुत गर्व हो रहा है। जव तक इसकी नस नही दावी जायगी, तव तक यह आप पर हावी होता जायगा। आज तो इसने इस प्रकार की पार्टी

निमत्रण दे देवे, इसमे अपने घर की शोभा है। सेठ ने कहा—इतने हजारो मनुष्यो के भोजन की व्यवस्था कर लोगी ? सेठानी बोली—घर मे किस बात का घाटा है ? सेठ बोला—अरी, तीन दिन मे हजारो की व्यवस्था कैसे करेगी। सेठानी बोली–आपको इस बात की चिन्ता करने की आवश्यकता नही है। सबको न्योता देना आपका काम है और सबको जिमाना मेरा काम है। कहो भाइयो, एक वह भी स्त्री है जो हजारो को खिलाने का भार अपने ऊपर लेती है और एक आपकी भी देविया है, यदि पच्चीस मेहमानो को घर ले जाओ तो वापिस उल्टे पैरो ही उतारना पडता है।

अब सेठजी दुकान पर गये और मुनीमजी से कहा—सारे शहर मे निमत्रण दे दो कि इसी पचमी के दिन सबका मय पाहुनो के यहा निमत्रण है। उस दिन किसी के यहाँ चूल्हा नही जलेगा। मुनीम ने प्रसन्न होकर कहा—आप ने यह बहुत उत्तम विचार किया है। मैं सबके यहा निमत्रण भिजवाने की व्यवस्था करता हू। तत्पश्चात् उसने सभी जातियो के मुखिया लोगो को बुलवाया और उनसे कहा—इसी पचमी के दिन सेठ साहब का विचार सारे शहर को प्रीतिभोज देने का है। अत. आप लोग अपनी-अपनी जाति मे निमत्रण दिला देवे और पचमी के दिन बुलाने और सबको खिलाने-पिलाने की व्यवस्था का भार मजूर करे। सबने इसे सहर्ष स्वीकार किया।

पचमी के दिन प्रीतिभोज की सारे शहर मे धूम मच गई। इधर सेठानी ने भी तैयारी मे कोई कसर नही रखी। वे समझती थी कि घर की शोभा तो स्त्री की चतराई और घर की सुघड व्यवस्था से है। फिर अनेक पीढियो के वाद नगर-भोज का यह सुअवसर मुझे प्राप्त हो रहा है। दैव ने भी सर्व प्रकार से घर भरा-पूरा कर रखा है। फिर मैं क्यो कजूसी करू ? क्या इस अपार धन-दौलत को मैं या सेठजी अपनी छाती पर बाध करके ले जायेगे ?

सेठजी ने भी हवेली के भीतर और वाहिर लोगो के वैठने की समुचित व्यवस्था की। सडको पर कनातें और शामियाने लगवा दिये गये, स्थान-स्थान पर हरे भरे गमले आदि रखवा दिये और महाराज एव राज-परिवार के वैठने के लिए अपनी वैठक को विशेप रूप से सजा दिया गया।

किरानेवालो को किराने की, कपडेवालो को कपडो की, एव वर्तन जो अपने घर नही थे, उनकी सूची वर्तन वालो को लिखा दी। इसी प्रकार अनाज के व्यापारियो को गेहू, चना, उडद-मू ग आदि का परिमाण लिखा दिया और उन्हें विदा कर दिया।

यथाममय महाराज के यहा वारात आई और वाईराजा का विवाह धूम-धाम के साथ सम्पन्न हो गया। तव राजा ने दीवान से कहा कि विवाह तो हो गया है, अव सेठजी का माल कैसे हजम किया जाय ? न्याय के अनुसार तो सव वर्तनादि वापिस करना चाहिए। इस प्रकार चौडे धाडा तो नही डाला जा सकता है। दीवान ने कहा—महाराज, आप इस वात की चिन्ता न कीजिए। मैं सव उपाय कर लू गा, यह कहकर उसने सेठजी को बुलाकर कहा—सेठजी, आप जैसे श्रीमन्त की कृपा से वाईराजा की शादी सानन्द हो गई है और महाराज को भरपूर यश भी मिल गया है। अव आप विवाह के अनुरूप यदि दायजा दिया जावे तो ठीक रहेगा। सेठ ने कहा—दीवान साहव, जो आप आज्ञा करें, वह मैं देने के लिए तैयार हू। दीवान ने कहा—और तो सव दान-दहेज तैयार कर लिया गया है। केवल चार गहनो की कमी है। सेठ ने कहा—उनके नाम वतलाइये—मैं उनको लाकर सेवा मे हाजिर करू गा। दीवान ने कहा—एक भोला, एक डाह्या, एक कपटी और एक नमक हराम। इन चार गहनो को दहेज मे देने की आवश्यकता है। सेठजी इन गहनो के नाम सुनकर वहुत चकराये और सोचने लगे—इनके तो मैंने आज तक नाम भी नही सुने हैं। फिर कुछ विचारकर वोले—इनके लिए समय की कुछ सुविधा दी जाय। महाराज ने चारो गहनो को लाने के लिऐ एक मास का समय दे दिया। दीवान वोला—महाराज, इतने समय तक वारात कैसे रोकी जा सकती है ? इसलिए वारात को विदा कर दिया जावे। केवल वाईराजा और वीदराज को रोक लिया जावे। उनको एक मास के पश्चात् दहेज के साथ विदा कर देंगे। उसने सेठजी से कहा—एक मास के भीतर चारो गहने आ जाने चाहिए। सेठजी 'हा' भरकर घर चले आये।

दुकान पर आकर उन्होंने मुनीमजी से कहा—महाराज को वाई राजा के

देकर आपका अपमान किया है। कल और कोई उपाय से आपको यह नीचा दिखायेगा। अत शत्रु को उठते ही दबा देना चाहिए, अन्यथा पीछे उसको दबाना कठिन होता है। राजा ने बातो को ध्यान से सुना और सिर हिलाकर अपनी मूक सम्मति दीवान को दे दी।

जब सारे लोग भोजन कर चुके तो सेठजी ने सब को पान-सुपारी दिलाई और स्वय पानदान लेकर महाराज के सामने उपस्थित हुए तथा उनकी समुचित नजर न्यौछावर की। महाराज भी ऊपरी प्रसन्नता दिखाते हुए राजमहल चले गये।

दूसरे दिन महाराज ने एकान्त मे दीवानजी को बुलाकर पूछा—कहो क्या सलाह है ? उसने कहा—महाराज, बाईजी लाल बडी हो गई है। अब उनकी शादी की तैयारी करनी है। अत उसके बहाने से सेठजी के यहा से सोने-चादी के सब थाल मय कटोरी गिलासो के मगवालिये जावें। पीछे देना तो अपने हाथ की बात है।

हवाखोरी के समय राजा साहब ने सेठजी को बगीचे मे बुलाया। सेठजी गये और अभिवादन करके बोले—महाराज, क्या आज्ञा है ? राजा ने कहा—सेठजी, बाईराजा का विवाह करना है। सेठजी ने कहा—महाराज, विवाह का सारा खर्च मैं उठाऊगा। महाराज, बोले—यह तो आपकी कृपा है। परन्तु मुझे शादी के लिए वर्तन-भाडो की आवश्यकता है। सेठजी ने कहा—आपको जिन वर्तनो की भी आवश्यकता हो, वो मेरे यहा से मगवा सकते हैं। यह सुनते ही दीवान ने वर्तनो की सूची जेब मे से निकालकर महाराज के हाथ मे दे दी। उन्होने सेठजी को देते हुए कहा—इसके मुताबिक सब वर्तन राजमहल मे भिजवा दीजिए। और जो अन्य वस्तुए आपके यहाँ नही हो, उन्हे वाजार से खरीद करके भिजवा दीजिए। सेठजी सबको भिजवाने की 'हा' भरकर अपने घर लौट आये। फिर दुकान पर जाकर उन्होने सव व्यापारियो को वुलवाया और उनसे कहा—महाराज की वाईराजा का विवाह होना है। उसके लिए इस-इस सामान की महाराज को आवश्यकता है, सो आप लोग, यह मामान राजमहल भिजवा देवें और सवके रुपयो का भुगतान मैं करूगा। ऐसा कहकर उन्होंने घी-शक्कर वालो को घी-शक्कर की तोल लिखा दी,

मुझे वताइये। मैं सर्व सभव उपाय करूगी। कई वार पूछने के वाद सेठजी वोले—क्या वताऊ ? तूने जो कहा था, वही सच हुआ ? सेठानी ने दिलासा देते हुए कहा—आखिर, मैं सुनू तो सही कि वात क्या है ? तव सेठ ने सारी वातें सेठानी को कह सुनाई। और कहा कि आज हुक्म मिला है कि यदि पन्द्रहवें दिन ये चारो गहने नही दिए तो घर-वार जप्त कर लिया जायगा। सेठानी वोली—आपको किसी प्रकार की चिंता करने की आवश्यकता नही है। ये चारो गहने तो कभी से मेरी तिजोडी मे रखे हैं। आप तो आनन्द से खाइए पीजिए और आराम कीजिए। सेठजी वोले—अरी, क्या तू भी मेरे साथ मजाक कर रही है ? मेरे तो प्राण सकट मे पडे हैं ? सत्य वता, क्या गहने तिजोडी मे तैयार रखे है ? सेठानी ने कहा—नाथ, क्या ऐसे सकट के समय भी कोई भली-स्त्री अपने स्वामी के साथ मजाक कर सकती है ? आप विलकुल निश्चित रहे ? समय पर चारो गहने राज-भवन पहुचा दिये जावेंगे। सेठानी के ऐसे आश्वासन एव प्रेम भरे मधुर वचनो को सुनकर वहुत शान्ति मिली। सेठानी ने कहा—आप विलकुल निश्चित होकर राज-दरवार मे जाते-जाते रहें। दूसरे दिन जव सेठजी प्रसन्न चित्त राज-सभा मे गये तो राजा ने दीवान से कहा—अरे, वनिया तो आज खुश नजर आ रहा है ? इसे गहने मिल गये प्रतीत होते है ? दीवान वोला—महाराज, आप तो राजमद से मत्त हैं और यह सेठ धन के मद से उन्मत्त है। वे गहने तो स्वप्न मे भी कहीं प्राप्त नहीं हो सकते हैं। दीवान की वात सुनकर राजा ने मन ही मन सन्तोष की साँस ली।

जव एक मास पूर्ण हो गया, तव इकतीसवें दिन सेठ ने सेठानी से कहा—वे चारो गहने दो, जिन्हे लेकर मैं राज-दरवार मे जाऊं ? सेठानी ने कहा—वे गहने आप नही, किंतु मैं ही लेकर राज-दरवार जाऊंगी। इतने मे ही राजा के भेजे चार घुडसवार आ पहुंचे और सेठजी से वोले—सेठ साहव पधारिये और वे चारो गहने हमें दीजिए। सेठ ने कहा—गहने सेठानीजी के पास है और वे ही अपने हाथ से महाराज को भेट करेंगी। चारो सवारो ने वापिस आकर सेठ की कही वात राजा से कह दी।

लिए दहेज देने को इन चार गहनो की आवश्यकता है, अत इनको बाजार से खरीद कर मगा लिया जाय। मुनीम ने कहा—ये गहने तो यहा नही मिलेंगे। तब सेठ ने कहा—अच्छा दिसावर मे जो अपनी पन्द्रह सौ दुकाने है, उनको लिख दो कि ये चारो गहने खरीदकर जल्दी से जल्दी यहा भिजवा दिये जावे। सेठजी के हुक्म के साथ ही सब दुकानो को पत्र लिखा दिये गये। पन्द्रह दिन मे सव दुकानो से उत्तर आ गया। सब मे शब्द न्यारे-न्यारे होने पर भी सार बात एक ही लिखी थी। मुनीम ने सर्व पत्रो की फाइल सेठजी के हाथ मे दे दी। उन सब मे यही लिखा था कि "मुनीम-साहब, आपका पत्र मिला। पढकर वहुत दु ख हुआ। ऐसा मालूम पडता है कि सेठ साहब का दिमाग खराव हो गया है। इसलिए आप अच्छे वैद्यो से उनका इलाज करावे। अन्यथा सारा कारोवार समाप्त होते देर नही लगेगी। राजी खुशी के समाचार तुरन्त देवे।"

सेठजी ने सव पत्रो को उलट-पुलट कर देखा। सब मे एक ही बात लिखी थी। वे बडे असमजस मे पडे। अब मैं क्या करू ? वे राज-दरबार मे गये, परन्तु मुख अत्यन्त उदास था। दीवान उन्हे देखकर जान गया कि मेरी करामात काम कर रही है। उसने सेठजी से पूछा—क्या चारो गहने तैयार हैं ? सेठ ने कहा—हा प्रयत्न कर रहा हू। दीवान बोला—सेठजी, केवल पन्द्रह दिन शेप है। यदि तीसवे दिन वे गहने नही आये, तो आपका सव घर-वार जप्त कर लिया जायगा। यह महाराज का हुक्म है।

सेठजी राज-दरवार से घर पर आये। और अपनी वैठक मे जाकर वेहोश होकर पड गये। पता चलते ही सेठानीजी आई और सेठजी को वेहोश देखकर वैद्यजी को वुलाया। शीतलोपचार किया गया। वैद्य ने कहा—नाडी की गति-विधि तो ठीक है। कुछ गर्मी वढी हुई है सो शीतलोपचार से थोडी देर मे ठीक हो जायेंगे। शीतलोपचार से कुछ शान्ति मिली और सेठजी ने आखे खोली। सेठानी ने पूछा—आपकी तवियत कैसी है ? सेठानी के शब्द सुनते ही सेठजी की आखो से आसू गिरने लगे और कुछ वोला नही गया। सेठानी ने उन्हे धीरज वधाते और माथे पर हाथ फेरते हुए कहा—घवड़ाने की क्या वात है,

है। यह प्रकृति की भूल हो गई है कि उसने आपके दाढी और मूछे उत्पन्न कर दी हैं।

सेठानी की यह कटु बात सुनते ही महाराज आग-बबूला हो गये। पर क्रोध को दबाकर बोले—सेठानीजी, क्या भग पीकर आई हो? सेठानी ने कहा—महाराज, हमारे नशेका क्या काम है? हम तो जैनधर्म को पालने वाले हैं। तब राजा बोला—फिर इस प्रकार कैसे बोल रही हो। सेठानी ने कहा—महाराज, मैं ठीक बोल रही हू। आपको यह कहते हुए शर्म नही आई कि मैं घर लूट लूगा। आपने मित्रता का अनुचित लाभ उठाया, बाई राजा की शादी के बहाने मेरे घर से सब सोने-चादी के बर्तन मगवा लिये। जीमन-वार के नाम पर बाजार से भी सारा सामान हमारे ही द्वारा मगवाया। और अब दहेज के नाम पर इन गहनो के बहाने हमारे घर को लूटना चाहते हैं?

सेठानी के ये कठोर वचन सुनकर महाराज आपे से बाहिर हो गये और बोले—अरी, चुपचाप गहने देती है, या नही? अन्यथा तेरा सिर उडवा दिया जायगा। यह सुनकर सेठानी भी उत्तेजित होकर बोली—महाराज, आपने जीवन भर मक्खिया ही मारी होगी? अन्यथा बतलाइये—कितनो के सिर उडाये है? पहिले उनके नाम बतावे फिर मेरे सिर पर हाथ उठाने का साहस करे। आपने गहने मागे है, उन्हे लीजिए न? यह कहकर सेठानी ने अपनी नौकरानी से कहा—अरी छोकरी, मेरा गहनो का केस ला। उसने लाकर सेठानी के हाथ मे दे दिया। केस के मखमल के ऊपर सोने के तारके साथ हीरा-पन्ना जडे हुए थे। यह देखकर राजा और दीवान दोनो ही चकित रह गये। दीवान बोला—सेठानीजी, यहा आकर गहने दो। सेठानी बोली—मैं नही आ सकती। तुम मागते हो सो आकर ले जाओ। याचक ही दाता के आगे जाकर हाथ पसारता है। तब राजा स्वय उठकर सेठानी के सामने गये और बोले—लाओ चारो गहने। सेठानी ने कहा—सभालिये चारो गहने—

मोलो म्हारो घर-धणी, डाहो राजा तू।
कपटी मंत्री पायरो, नमकहरामो तूं॥

तत्पश्चात् सेठजी दरबारी पोशाक पहिन कर राज-दरबार मे पहुचे। दीवान ने पूछा—क्या आप गहने लाये है ? सेठ बोला—कौन से गहने ? दीवान ने कहा—भोला, डाह्या, कपटी और नमक हराम। सेठ ने उत्तर दिया—ये गहने तो सेठानीजी के पास है। वे ही आकर स्वय देगी। तब दीवान ने सेठानी को बुलाने के लिए दासियो को भेजा। सेठानी पहिले से ही सज-धज कर तैयार बैठी थी। दासियो के पहुचते ही वह ठाठ-बाट से पालकी मे बैठकर के घर से चली। इधर राज-सभा मे लोग आपस मे चर्चा कर रहे है कि कौन से अद्भुत आभूषण है, हमने तो उनका नाम भी नही सुना ? इसलिए सब लोग वडी उत्सुकतापूर्वक सेठानी की आने प्रतीक्षा कर रहे थे। इसी समय सेठानीजी की सवारी राज-दरबार मे पहुची। और उन्होने पालकी मे से उतर कर सभा मे प्रवेश किया। सारे सभासद विस्फारित नेत्रो से सेठानी की ओर देखने लगे।

सेठानी ने राजा के सामने जाकर उनका यथोचित अभिवादन किया और पूछा कि कौन से चार गहने चाहिए है ? उनके नाम वतलाइये। दीवान वोला-भोला, डाह्या, कपटी और नमकहराम। ये नाम सुनते ही सेठानी ने कहा—महाराज, चारो ही आभूपण तैयार है। उनका इतना बहुमूल्य जडाव है कि आपके सारे राज्य के वेच देने पर भी उनकी कीमत पूरी नही होगी। यह सुनते ही सव लोगो का मुह उतर गया। और सोचने लगे कि अव क्या होगा ? सेठानो फिर वोली—सव गहनो की कीमत मय मूल व्याज के पाई-पाई देनी होगी। गहने मेरे पास तैयार है, परन्तु उन्हे देने से पहिले मेरी एक विनती सुनली जाए—

**तुम दीसत के नर, दीसत हो, पर लच्छन तो पशु के सव्वहिये,**
**खावत पीवत सोवत वैठत, रह्यो घर मे वन जात सरहिये।**
**रात रही परभात चले सुन्दर यो नितभार वही ये,**
**और तो लच्छन आन मिले, सिर्फ दोय कमी सिर सींगरु पूंछ नहींये॥**

महाराज, आप देखने मे तो मनुष्य है, वाकी सारे लक्षण तो पशु के हैं। कमी है तो केवल यही कि आपके मिर पर सीग नही और पीछे पूछ नही

चाहिए। सेठानी के इतना कहने पर भी राजा ने यह कह कर दीवान को देश मे निकाल दिया कि यह दीवानगिरी के योग्य नही है।

भाइयो, कहने का सार यह है कि यदि घर की स्त्री मे बुद्धि और चतुराई हो, तो वह बिगडते को सभाल लेती है। घर की शोभा सुघड स्त्री से ही है। जहा पर स्त्री सुघड और चतुर नही होती है, वहा पर घर बिगडते देर नही लगती है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि विवाह के समय वह धन को न देखे, किन्तु कुशल बुद्धिमती कन्या को ही देखे। क्योकि सच्ची लक्ष्मी तो वही है। मनुष्य को भी सूझ-बूझ से काम लेना चाहिए। यदि समय पर सूझ-बूझ से काम न लिया जाय, तो बडे बडे अनर्थ हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति की प्रकृति भिन्न-भिन्न होती है। पर उन सब के साथ समन्वयात्मा बुद्धि से ही काम लेना चाहिए। यह समन्वयवाद ही जैनधर्म का मूल है।

वि० स० २०२७ आसोज वदि १३

सिंहपोल, जोधपुर,

●●

महाराज, मेरा घर-धणी भोला था, जो आपसे मित्रता की। आप डाह करने वाले है ईर्ष्यालु है। जो आपकी वाई-राजा की शादी मे इतना धन लगा दिया, फिर भी आपको सन्तोप नही हुआ। डाही (चतुर) मैं हू सो दवामाल वापिस ले लूगी खानेवाले है कौन ? जरा-आगे देखिये और यह मत्री कपटी है, जो छल-प्रपच वताकर आपके द्वारा घर जप्त कराना चाहता है और आप स्वय नमकहरामी है जो मेरा इतना धन खा करके भी मुझे और मेरे घर को वर्वाद करना चाहता है ?

सेठानी की यह फटकार सुनकर राजा और दीवान दोनो मत्र-कीलित से रह गये। राजा का भूत उतर गया और मनमे सोचने लगे—सेठानी ने वात तो ठीक कही है और चारो गहने भी ठीक सभलवाये हैं। यह दीवान वडा पापी और कपटी है। उसके मायाजाल मे फसकर के मैंने यह अनुचित किया, जो सेठ के माल को ही हडपने की वात मनमे लाया। यदि सेठानी आकर आज यह भेद न खोलती तो वडा अनर्थ हो जाता। सारी सभा भी यह देखकर दग रह गई और सेठानी की प्रशसा करने लगी।

तत्पश्चात् राजा ने हुक्म दिया, इस वेईमान दीवान को डडे मारते हुए ले जाओ और जेलखाने मे बन्द कर दो। फिर राजा ने चूदडी मगवाई और सेठानी को उडाते हुए कहा—वहिन, तू ने आज मेरे राज्य की लाज रख दी। अन्यथा दुनिया मेरे मुख पर थूकती। उससे राजा ने माफी मागी और सेठ के सब चादी के वर्तन आदि वापिस भिजवा करके सेठ-सेठानी को विदा ,किया। पीछे विवाह मे जितना भी खर्च हुआ था, वह पाई-पाई हिसाब करके सेठ के यहा भिजवा दिया। और दीवान को फासी पर चढाने का हुक्म दिया। तब सेठानी ने कहा—महाराज, इसे क्षमा किया जाए। इसमे केवल इसी का अपराध नही है, सभी की भूल है। मेरे निमित्त से किसी के प्राण जावे, यह मैं नही चाहती हू। यदि फासी पर चढेगे, तो तीनो ही चढेंगे ? मेरे धनी ने मित्रता करने की भूल क्यो की ? दीवान ने कपटाई क्यो की और आपने नमकहरामी के भाव क्यो किये ? अत यह प्रथम बार सब से अपराध हुआ है सो मैं सबको क्षमा करती हू। आगे से सबको अपने-अपने कर्तव्य का ध्यान रखना

के लिए सुखदायी हो और उनकी उन्नति करे। जिसके द्वारा लोगो का अमन कायम रहे। इस प्रकार लोकपाल अपनी शक्ति के अनुसार अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। जव उसकी शक्ति कुण्ठित हो जाती है, अथवा वह अपने कर्तव्य को भली-भाति निर्वाह नही कर पाता है, तव उसकी पुकार इन्द्र के पास होती है और फिर इन्द्र उसकी समुचित व्यवस्था करता है।

**पेटपाल**

लोकपाल के समान राज्यपाल या प्रदेशपाल हैं। उनके भी अधीन जिला-पाल, नगरपाल और ग्रामपाल आदि होते है। साथ ही सर्वत्र पेटपाल भी होते है। भाई पेटपाल तो सारा ससार ही वना हुआ है। आप जिधर भी दृष्टि-पात करेंगे, उधर ही आपको पेटपाल दिखाई देंगे। पेट की प्रति पालना करने मे यद्यपि सवको भले-बुरे का विचार रखना चाहिए। तथापि यदि उनसे कहा जाय कि भाई, अनीति से तो पेट की पालना नही करना चाहिए। तो उनका उत्तर होता है कि साहव, जव न्याय-नीति से निर्वाह नही होता है, तभी विवश होकर हमे अनीति का आश्रय लेना पडता है। उनका यह उत्तर सुनकर पूछने वालो को भी चुप रह जाना पडता है। फिर भी नीतिवान् पुरुष यही कहेंगे कि भाई, अनीति से खीरा-पूडी खाने की अपेक्षा नीति से रूखी-सूखी रोटी खाना सदा ही सुखदायी होता है।

न्याय-नीति से पेट भरने वालो को भी इस वात का ध्यान रखना आवश्यक होता है कि उतनी ही मात्रा मे भोजन किया जाय, जितना कि हजम हो सके, जो ऋतु और प्रकृति के अनुकूल हो एव सात्त्विक हो। यदि मात्रा से अधिक, गरिष्ठ, मादक, उत्तेजक, दूषित और सडा-गला भोजन पेट मे जायगा, तो पेट तो भरेगा, मगर स्वास्थ्य अवश्य ही विगड जायगा। इसलिए पेटपालो को भी इस वात का ध्यान रखना चाहिए कि मुझे कौन-सी वस्तु खाना चाहिए और कौन-सी नही? यदि वह इसका ध्यान नही रखेगा, तो अपने स्वास्थ्य से हाथ धो वैठेगा। और कदाचित् जीवन से भी हाथ धोने का अवसर आ सकता है।

इसीप्रकार ग्रामपाल और नगरपाल का भी उत्तरदायित्व होता है कि वह अपने ग्राम और नगर की भली-भांति सार-सम्भाल करे। यदि उसकी

# १५ | लोकपाल या आत्मपाल

सज्जनो, अभी आपके सामके लोकपाल का वर्णन आया है। लोक-पाल शब्द का अर्थ क्या है? यह भी जानना आवश्यक है। **'लोकान् पालयतीति लोकपालः'** अर्थात् जो लोको-की प्रति पालना करे, उसे लोकपाल कहते हैं। इन्द्र ने चारो दिशाओ की रक्षा के लिए चार लोकपाल नियत किये है। उनमे सोमपूर्व दिशा का लोकपाल है, यम दक्षिण दिशा का, वरुण पश्चिम दिशा का और वैश्रवण उत्तर दिशा का लोकपाल है। जैसे आज राजस्थान, पजाब, उत्तर प्रदेश, विहार, बगाल, मध्यप्रदेश, आन्ध्र, मद्रास, महाराष्ट्र और सौराष्ट्र आदि प्रदेशो की सरकारे है और उन सरकारो के ऊपर केन्द्र की ओर से राज्यपाल नियुक्त है। प्रत्येक प्रदेश की व्यवस्था सचालन राज्य सरकार करती है उसका उत्तरदायित्व राज्यपाल पर रहता है। सरकारो के मत्रियो को शपथ ग्रहण कराना राज्यपाल (लोकपाल) का काम है। जब किसी प्रदेश की सरकार मे गडबडी होती है, तब तव विधानसभा को भग करने का अधिकार भी राज्य-पाल को होता है। राज्यपाल का सम्बन्ध राष्ट्रपति से रहता है। जैसे यहा राज्यपालो की नियुक्ति राष्ट्रपति करता है। वैसे ही देवलोक मे लोकपालो की नियुक्ति इन्द्र करता है।

लोकपाल वह है जो लोक की रक्षा करे, लोक का हितावह बने, लोगो

का निकल भागना अवश्यम्भावी था। साथ और भी कैदी उसी मार्ग से भाग निकलते। फिर वे बाहिर आकर देश में पुन लूट-पाट करते और जनता त्रास पाती। भाई, जिनका अपने कर्तव्य-पालन पर ध्यान है, वही अपना कर्तव्य ठीक रीति से पालन कर सकता है। यदि सभी जेलपाल सर्वत्र ऐसी सावधानी रखें तो कही भी कोई षड्यंत्र सफल नही हो सकता।

**आत्मा के शत्रु**

भाइयो, यदि हमे भी अपनी आत्मा का रक्षण करना है तो आत्मा के जो शत्रु है, डाकू हैं, वे क्या षडयन्त्र रच रहे हैं, इसका भी ध्यान रखना अत्यावश्यक है। परन्तु यदि हम प्रमादी रहेगे, पूर्ण सावधानी नही रखेंगे, तो उनके षड्यन्त्रो का पता नही चल सकेगा। हम अनादिकाल से असावधान रहे, इस लिए आज तक हमारे ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्यादि गुण लुटते चले आ रहे हैं। अब हम प्रमाद छोडकर अप्रमादी बनें। प्रमाद क्या है? आत्म-स्वरूप की ओर लक्ष्य या दृष्टि नही रहने को प्रमाद कहते है। कितने ही लोग कहते है कि हम जागते है, तो कौन आ सकता है? परन्तु मारवाड की कहावत है कि 'जागता से तावता अधिक अच्छा होता है।' वह जागृत अवस्था मे भी चौकन्ना रहकर सर्व ओर की बातें देखता और सुनता रहता है। और यदि किसी ओर से उसे चोर-डाकू आदि के आने का अन्देसा होता है, तो तत्काल उसका उपाय कर लेता है। अत उसका कोई नुकसान नही होने पाता है।

आत्मा के मूल शत्रु है कर्म और उत्तर शत्रु है क्रिया। यदि आप को कर्म और क्रिया का ठीक रीति से बोध नही होगा तो कर्म रूपी शत्रुओं का आस्रव (आना) नहीं रुक सकेगा। और जब कर्मों के आस्रव-द्वार खुले हुए हैं, तब उनका संवर (रोकना) कैसे सम्भव होगा? जब हम निरन्तर धड़ाधड़ आने वाले कर्म शत्रुओं को नही रोक सकेंगे, तो पहिले के आत्म मन्दिर में घुसे हुए कर्मों की निर्जरा कैसे कर सकेंगे? अर्थात् उन्हें बाहिर कैसे निकाल सकेंगे? इस प्रकार जब संवर और निर्जरा नहीं होगी तब आत्मा कर्मों से मुक्त कैसे हो सकेगा? क्योंकि तत्त्वार्थ सूत्र का कहना है कि—

'बन्ध हेत्वभाव-निर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्ष.।'

व्यवस्था मे कोई खराबी या गडबडी पैदा होती है, तो उसका दड उसे भोगना पडता है। यही बात राज्यपाल के विषय मे भी जाननी चाहिए। वह अपने सारे राज्य की पूर्ण रूप से सभाल रखता है और कोई वैधानिक सकट नही उत्पन्न होने देता। राष्ट्रपति के ऊपर सारे राष्ट्र का उत्तरदायित्व रहता है और वह सर्व राज्यपालो के कार्यों पर दृष्टि रखता है।

**आत्मपाल कौन ?**

भाइयो, अब मैं आपसे पूछता हू कि आपने इतने प्रकार के 'पाल' तो देखे। परन्तु क्या कभी 'आत्मपाल' भी देखा है, या उसका नाम भी सुना है ? अरे, अन्यपाल सदा स्थिर रहनेवाले नही है। किन्तु यह आत्मा स्थिर है और उसकी प्रतिपालना करने वाला भी स्थिर है। इसलिए हमे 'आत्मपाल' वनने की नितान्त आवश्यकता है।

आप लोग पूछेंगे कि 'आत्मपाल' किसे कहते हैं। भाई, इसका उत्तर यह है कि जिन-जिन कार्यों से ये आत्मा का अहित होता है, आत्मा ससार-समुद्र मे डूवता है और दु खो को पाता है, उन-उन सर्व कार्यों से आत्मा की जो प्रतिपालना करे—रक्षा करे—उसे आत्मपाल कहते है। आत्मपाल सदा सतर्क और सावधान रहता है और सर्व ओर दृष्टि रखता है कि मेरे भीतर कोई दुर्भाव रूप शत्रु तो प्रवेश नही कर रहा है और कोई मेरे विरुद्ध षड्यत्र तो नही रच रहा है। जैसे अभी दो दिन पूर्व यह समाचार-पत्रो मे प्रकाशित हुआ कि जोधपुर जेल मे आजीवन कैद की सजा भोगनेवाले कुछ डाकू कैदियो ने जेल के अधिकारियो से मिलकर और पुलिस का सहयोग पाकर के लोहे के सीकचे काटनेवाले औजार दिन मे मगालिए और लोगो की दृष्टि से वचाने के लिए उन्हे धूल मे छिपा दिया। उनका उद्देश्य रात मे अपनी वेडियो और जेल के सीकचो को काटकर भागने का था। परन्तु जेल का प्रधान अधिकारी सूक्ष्म दृष्टि वाला था, उसे इस षड्यत्र का पता लग गया और ठीक समय पर उसने कलेक्टर को सूचितकर वुला लिया और वे सव औजार पकड लिये गये। भाई, वह अधिकारी जव अपने कर्त्तव्य-पालन मे पूर्ण सतर्क एव सजग था, तव उन लोगो का षड्यत्र सफल नहीं हो सका। यदि वह सावधान न होता, तो डाकुओ

है, जो कि अधर मे ही लटकता रह गया था। और हमे यह छटपटी लग रही है कि कर्मो का नाश कब हो और मुक्ति कब प्राप्त हो। हमारा मन नही होने पर भी यहा आकर फस गये हैं, तो हम भी न यहा के रहे और वहा के ही रहे और इस प्रकार आपके समान हम भी बीच मे ही गोते खा रहे हैं। और गोते खिलानेवाला है यह प्रमाद। जब हम इस प्रमाद को जीतेंगे, तभी कोई काम सावचेती मे हो सकता है। कहिए, क्या किसी को अपने घर का भी ध्यान है? अरे, आप लोग तो पर्यायबुद्धि जीव हैं कि जहा गये, वही के होकर के रह गये।

आज कई बहिने और भाई मिले। उनसे मैंने पूछा—आप कहा रहते हैं? उन्होने कहा—महाराज साहब, हम रतनरायपुर रहते हैं। जब उनके घर वहा हो गए, तब न तो देश का नाम रहा और न गाव का नाम रहा। न मित्रो के नाम रहे और न सगे-सम्बन्धी साथियो के नाम रहे। परन्तु अब नाम रहा वहां का, वहा के निवासी पीढियो से नही, किन्तु वर्षो से ही हो। फिर भी आप अपने को वही का मानने लगे। इसीप्रकार आपने जब अनादिकाल से कर्मों के यहा बसेरा कर लिया, तो अपनी आत्मा की जन्मभूमि को क्यो याद करोगे? अब तो जहा रहते हो, उसे ही याद करोगे? परन्तु भाई, याद रखो, जिसे अपनी आत्मा का ध्यान है, वह मनुष्य यह कभी नही कहेगा कि मैं यहा का रहने वाला हूँ। वह तो यही कहेगा कि मेरा घर और स्थान तो यह है। हा, कार्य के लिए हम यहा रह रहे हैं। ऐसा कहनेवाला यहा का प्रामाणिक व्यक्ति माना जा सकता है। आप व्यापार आदि के निमित्त यदि कुछ समय के लिए यहा या कही बाहिर चले गये तो अपने ही घर को भूल गये? भाई, यह द्रव्य घर और द्रव्य देश तो याद रखते हैं, किन्तु अनादिकाल से जो आत्मा अपना है उसे आप भूल जाये और पुद्गल के ससर्ग से पुद्गलानन्दी बन जावें क्या यह आश्चर्य की बात नही है? पुद्गलो के साथ सम्बन्ध आपका कितना ही पुराना क्यो न हो, परन्तु जो वस्तु यथार्थ मे अपनी नही है, वह कभी भी अपनी नही हो सकती है। जो वस्तु अपनी है, वह ही सदा अपने साथ रहेगी। आत्मा के गुण आत्मा के साथी हैं, वे कर्मों के साथी नही है। और कर्मों के गुण कर्मों

अर्थात् कर्मों के आस्रव और बन्ध का अभाव होने से जब नवीन कर्मों का आना रुक जाता है और निर्जरा के द्वारा पूर्व-समागत कर्म झड जाते है, तभी सर्व कर्मों से छुटकारा होता है, और उसी का नाम मोक्ष है ।

इसलिए आप लोगो को सर्व प्रथम उन कर्म शत्रुओ को जानने की आवश्यकता है । मूल कर्म शत्रु आठ है—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, और अन्तराय । इन के उत्तर भेद एक सौ अडतालीस या एक सौ अठावन हैं । परन्तु इनके नामो से और इनके भेदो के जानकार मात्र होने से हम इन से नही बच सकते है । इन कर्मो की जो सूक्ष्म चाल है उस पर हमे दृष्टि रखनी पडेगी कि किन-किन द्वारो से कर्म आते हैं और किन-किन भावो से ये हमारे ऊपर अधिकार जमाकर हम पर हावी होते है, इन सब बातो की जानकारी भी होना चाहिए और फिर जानकारी के वाद हमे वैसा आचरण करना चाहिए कि जिससे हमारे भीतर कर्मो का प्रवेश ही न हो सके । सर्वप्रथम हमे कर्मों के आने के मार्ग को बन्द करना होगा ।

**आत्मा का ध्यान किसे ?**

परन्तु आज आप लोगो को अपनी आत्मा का ध्यान कहाँ है ? आज तो आपका ध्यान पुद्गल पर है और दिसावर की दुकानो पर हैं । आप यहा पर लोगो से मिलने का उद्देश्य लेकर आए है, अथवा साधु-सन्तो के दर्शनो का भाव लेकर आए है । परन्तु आपका मन तो दिसावर मे ही लगा हुआ है कि दुकान पर क्या हो रहा होगा ? बार-बार ध्यान वही पहुच रहा है । और ठहरे हुए यहा है । अव आप जो देश मे आकर अपने सगे-सम्बन्धियो से मिलने का आनन्द लेने आये थे, वह भी नही ले पा रहे है, और साधु-सन्तो के समागम का, दर्शनो का जो लाभ लेना चाहिए, वह भी नही ले पा रहे है । क्योकि मन मे जल्दी वापिस जाने की आकुलता जो लग रही है, वह यहा आ करके भी आपको चैन (शान्ति) नही लेने दे रही है । मन मे यही भाव आ रहे है कि जितने लोगो से मिललिए सो मिललिए । अव वाकी से फिर देखा जायगा । इस प्रकार आप लोग इधर आने के लाभ से भी वचित रहे और उधर के लाभ से भी वचित रहे । आपकी अवस्था उस त्रिशकु के समान हो रही

है, जो कि अधर मे ही लटकता रह गया था। और हमे यह छटपटी लग रही है कि कर्मों का नाश कब हो और मुक्ति कब प्राप्त हो। हमारा मन नही होने पर भी यहा आकर फस गये है, तो हम भी न यहा के रहे और वहा के ही रहे और इस प्रकार आपके समान हम भी बीच मे ही गोते खा रहे हैं। और गोते खिलानेवाला है यह प्रमाद। जब हम इस प्रमाद को जीतेंगे, तभी कोई काम सावधानी से हो सकता है। बहिन, क्या किसी को अपने घर का भी ध्यान है? अरे, आप लोग तो पर्यायबुद्धि जीव है कि जहा गये, वही के होकर के रह गये।

आज कई बहिनें और भाई मिले। उनसे मैंने पूछा—आप कहा रहते है? उन्होंने कहा—महाराज साहब, हम रतनरायपुर रहते हैं। जब उनके घर वहा हो गए, तब न तो देश का नाम रहा और न गाव का नाम रहा। न मित्रो के नाम रहे और न सगे-सम्बन्धी साथियो के नाम रहे। परन्तु अब नाम रहा वहां का, वहा के निवासी पीढियो से नही, किन्तु वर्षों से ही हो। फिर भी आप अपने को वही का मानने लगे। इसीप्रकार आपने जब अनादिकाल से कर्मों के यहा बसेरा कर लिया, तो अपनी आत्मा की जन्मभूमि को क्यो याद करोगे? अब तो जहा रहते हो, उसे ही याद करोगे? परन्तु भाई, याद रखो, जिसे अपनी आत्मा का ध्यान है, वह मनुष्य यह कभी नही कहेगा कि मैं यहा का रहने वाला हूं। वह तो यही कहेगा कि मेरा घर और स्थान तो यह है। हा, कार्य के लिए हम वहा रह रहे हैं। ऐसा कहनेवाला यहा का प्रामाणिक व्यक्ति माना जा सकता है। आप व्यापार आदि के निमित्त यदि कुछ समय के लिए वहा या कही बाहिर चले गये तो अपने ही घर को भूल गये? भाई, यह द्रव्य घर और द्रव्य देश तो याद रखते हैं, किन्तु अनादिकाल से जो आत्मा अपना है उसे आप भूल जायें और पुद्गल के ससर्ग से पुद्गलानन्दी बन जाये क्या यह आश्चर्य की बात नही है? पुदगलो के साथ सम्बन्ध आपका कितना ही पुराना क्यो न हो, परन्तु जो वस्तु यथार्थ मे अपनी नही है, वह कभी भी अपनी नही हो सकती है। जो वस्तु अपनी है, वह ही सदा अपने साथ रहेगी। आत्मा के गुण आत्मा के साथी हैं, वे कर्मों के साथी नही हैं। और कर्मों के गुण कर्मों

अर्थात् कर्मों के आस्रव और बन्ध का अभाव होने से जब नवीन कर्मों का आना रुक जाता है और निर्जरा के द्वारा पूर्व-समागत कर्म झड जाते हैं, तभी सर्व कर्मो से छुटकारा होता है, और उसी का नाम मोक्ष है।

इसलिए आप लोगो को सर्व प्रथम उन कर्म शत्रुओ को जानने की आवश्यकता है। मूल कर्म शत्रु आठ है—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, और अन्तराय। इन के उत्तर भेद एक सौ अडतालीस या एक सौ अठावन है। परन्तु इनके नामो से और इनके भेदो के जानकार मात्र होने से हम इन से नही बच सकते है। इन कर्मों की जो सूक्ष्म चाल है उस पर हमे दृष्टि रखनी पडेगी कि किन-किन द्वारो से कर्म आते है और किन-किन भावो से ये हमारे ऊपर अधिकार जमाकर हम पर हावी होते हैं, इन सब बातो की जानकारी भी होना चाहिए और फिर जानकारी के बाद हमे वैसा आचरण करना चाहिए कि जिससे हमारे भीतर कर्मो का प्रवेश ही न हो सके। सर्वप्रथम हमे कर्मों के आने के मार्ग को बन्द करना होगा।

**आत्मा का ध्यान किसे ?**

परन्तु आज आप लोगो को अपनी आत्मा का ध्यान कहाँ है ? आज तो आपका ध्यान पुद्गल पर है और दिसाबर की दुकानो पर हैं। आप यहा पर लोगो से मिलने का उद्देश्य लेकर आए हैं, अथवा साधु-सन्तो के दर्शनो का भाव लेकर आए है। परन्तु आपका मन तो दिसावर मे ही लगा हुआ है कि दुकान पर क्या हो रहा होगा ? बार-बार ध्यान वही पहुच रहा है। और ठहरे हुए यहा हैं। अब आप जो देश मे आकर अपने सगे-सम्बन्धियो से मिलने का आनन्द लेने आये थे, वह भी नही ले पा रहे है, और साधु-सन्तो के समागम का, दर्शनो का जो लाभ लेना चाहिए, वह भी नही ले पा रहे है। क्योकि मन मे जल्दी वापिस जाने की आकुलता जो लग रही है, वह यहा आ करके भी आपको चैन (शान्ति) नही लेने दे रही है। मन मे यही भाव आ रहे है कि जितने लोगो से मिललिए सो मिललिए। अव बाकी से फिर देखा जायगा। इस प्रकार आप लोग इधर आने के लाभ से भी वचित रहे और उधर के लाभ से भी वचित रहे। आपकी अवस्था उस त्रिशकु के समान हो रही

(प्राणातिपातिकी)। इनमें पहिली क्रिया है 'काइया'। काया के द्वारा कार्य करना। अर्थात् हाथ-पैर आदि से किसी काम को करना। दूसरी है—अहिगरणिया—हिंसा के साधनों को लेकर काम करना। तीसरी है—पाउसिया, क्रोध के आवेश में काम करना। चौथी है परितावणिया—दूसरे को सन्ताप उत्पन्न करने वाला काम करना। और पांचवीं है—पाणाइवाइया अर्थात् दूसरे के प्राणों का घात करना। ये पांच क्रियाएं हैं और प्रत्येक के पांच-पांच उत्तर भेद होते हैं। इस प्रकार पच्चीस क्रियाएं हो जाती हैं। इनके भंग अड़तालीस हजार सात सौ पिच्यानवे (४८७९५) होते हैं।

इन कर्मों के भंगों को उपयोग से समझने पर ज्ञात होगा कि अमुक भंग की क्रिया इसप्रकार हो रही है और इससे इसप्रकार का कर्मबन्ध हो रहा है। उसप्रकार के कर्म-बन्ध से बचने का उपाय यही है कि उसप्रकार की क्रिया न की जाय। जैसे आश्रव के ५७ भेद या द्वार हैं, तो संवर के भी ५७ ही भेद हैं। अर्थात् कर्म के आने के एक-एक द्वार को संवर का एक-एक भेद रोकता है। इस प्रकार आश्रव और संवर की टक्कर होती रहती है, क्योंकि वे परस्पर में प्रतिपक्षी हैं। जब जिसका वेग प्रबल होता है, तब वह उस पर विजय प्राप्त कर लेता है। यदि संवर का वेग जोरदार है, तो वह आस्रव को दबा देता है और यदि आस्रव का वेग जोरदार है, तो वह संवर को दबा देता है। किन्तु जब आत्म-परिणाम शक्तिसम्पन्न होकर संवर के रूप में परिणत होते हैं, तब कर्मों का आस्रव अर्थात् आत्मा में प्रवेश नहीं होने पाता है। इसी को सूत्रकार ने कहा है—'आस्रवनिरोधः संवरः'। नवीन कर्मों के आने के निरोध करने को संवर कहते हैं।

अब नवीन कर्मों का आना तो बन्द हो गया, किन्तु जो पूर्वकाल में आये हुए कर्म आत्मा के भीतर विद्यमान हैं, उनके निकालने के लिए उनकी निर्जरा करनी पड़ती है। इस प्रकार नवीन कर्मों के आने के द्वारों को बन्द कर देने से तथा पूर्व समागत कर्मों की निर्जरा कर देने से वह जीव कर्म-भार से हलका हो जाता है और अपने असली निवासस्थान मोक्ष में जा विराजता है। जहां पर

के सार्थी हैं। आत्मा, कर्म, क्रिया और लोक ये चारो चरबहिए हमारे सिद्धात मे बताये है। इनमे कर्म और क्रिया इन दोनो को समझना अत्यावश्यक है क्योकि ये दोनो ही हमको दु ख देते हैं। अत दु ख देनेवालो को ही सर्वप्रथम देखना और जानना है।

**कर्मबन्ध के कारण**

कर्म तो आपको पहिले बतला दिए गए है। परन्तु वे कर्म जिन क्रियाओ से बधते है, उन्हे बतलाया जाता है—प्राणातिपात (हिंसा करना) मृषावाद (भूठ बोलना) अदत्तादान (चोरी करना) मैथुन सेना (कुशील सेवन करना) परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, पैशुन्यता, परपरिवाद, रहोऽभ्याख्यान, अरति, माया मृषावाद, मिथ्यादर्शनशल्य इन अठारह पापो की जो-जो परिणतिया है, उसे क्रिया कहते है। इन क्रियाओ द्वारा जो पुद्गल आत्मा मे आते हैं उसे कर्म कहते है।

कर्म और क्रिया के भेद को एक दृष्टान्त से स्पष्ट किया जाता है—जिस प्रकार आपके कुए की भूमि पर कपास उत्पन्न होता है तो उसे देखकर लोग जान लेते है कि इससे रुई निकलेगी और उससे सूत काता जायगा। और उससे वस्त्र बनाया जायगा। यहा पर वस्त्र के समान तो कर्म जानना चाहिए। और रुई निकालना और धागा कातना आदि क्रियाए है। सूत को लेकर जुलाहा क्या करता है ? ताना-बाना करके वस्त्र बनाता है। ताना सीधा और बाना टेडी गति से चलता है। ताने को जोर नही पडता, बाने को जोर पडता है। जब ताने-बाने की क्रिया पूरी हो जाती है, तब वस्त्र तैयार हो जाता है। इसी प्रकार पाप करने की जो प्रवृत्ति होती है, वह क्रिया है। उस क्रिया से जो वस्त्र के समान निर्माण होता है, उसे कर्म कहते हैं। शास्त्रो मे क्रियाओ के भेद पच्चीस बतलाये गये है। और उन पच्चीस क्रियाओ के बावन हजार आठ सौ छिहत्तर (५२८७६) भग (उत्तर भेद) होते है।

**पाच मूल-क्रियाएं**

मूल क्रियाए पाच है—**काइया** (कायिकी) **अहिगरणिया** (आधिकरणिकी) **पाउसिया** (प्राद्वेपिकी) **परितावणिया** (पारितापनिकी) और **पाणाइवाइया**

बनना चाहिए और गौतमस्वामी के समान बेले-बेले पारणा करते हुए सदा ज्ञान-ध्यान मे लीन रहने का पुरुषार्थ प्रकट करना चाहिए।

एक भगवती सूत्र मे गौतमस्वामी ने भगवान महावीर से छत्तीस हजार प्रश्न पूछे है। उन्होने अपना एक मिनट भी व्यर्थ नही गवाया। वे सदा ही भगवान् से प्रश्न पूछते ही रहते थे। उनके पूछने का आशय यही था कि हमारा ज्ञान सदा जागरूक रहे और उससे हमारे साथ दूसरे श्रोताओ को भी लाभ पहुचता रहे।

**गौतमस्वामी के प्रश्नो का रहस्य**

गौतमस्वामी ने एक बार पूछा—भगवन्, द्वीन्द्रिय जीव के आयुष्य, ज्ञान, गुणस्थान, योग और उपयोग कितने होते है ? भाई, गौतमस्वामी क्या इतने अ-समझ थे उन्होने भगवान से इतना साधारण प्रश्न किया ? क्या उनके इतना भी ज्ञान नही था ? अरे, वे तो चौदहपूर्वो के वेत्ता थे। फिर भी पूछा कि द्वीन्द्रिय जीवो की आयुष्य कितनी है। उन्होंने यह प्रश्न इसलिए पूछा कि हमारा ज्ञान ताजा रहे, साथ ही श्रोताओ को भी ज्ञान प्राप्त हो। उन्हे तो ज्ञात था कि द्वीन्द्रिय जीवो की स्थिति कितनी है और यह भी ज्ञात था कि उनके योग और उपयोग कितने व कौन-कौन से होते हैं। भाई, इस प्रकार के प्रश्न आभीक्ष्ण्य ज्ञानोपयोग बनाये रखने के लिए वे भगवान से उनके निर्वाण होने तक पूछते ही रहे। पूछने से जैसी बात याद रहती है, वैसी याद स्वय पढने से नही रहती है। आप लोगो ने कितनी ही पुस्तके पढी है। परन्तु वे सब क्या आज याद है ? नही हैं। किन्तु यदि कोई प्रश्न आपने किसी समय किसी विशेषज्ञानी से पूछा होगा, तो उसके द्वारा दिया गया उत्तर आपको आज भी याद होगा। इसलिए प्रश्न पूछना और उत्तर प्राप्त करना जैसे अपने कल्याण के हित मे है, इसी प्रकार दूसरो के हित मे भी है। भाई, सर्वसाधारण श्रोताओ को नया-नया ज्ञान देने के लिए ही गौतमस्वामी ने भगवान के छत्तीस हजार प्रश्न पूछे हैं। यह हमारे ऊपर उनका महान् उपकार है। अन्यथा उनसे क्या छिपा था, कौनसी बात उन्हे अज्ञात थी ? कोई भी नही। यदि भगवान् केवलज्ञानी थे तो गौतमस्वामी पूर्ण श्रुतज्ञानी थे। ज्ञेय पदार्थो को जानने की

किसी प्रकार का कोई रोग, शोक आदि नही है। उस मोक्ष या शिवपद का वर्णन शास्त्रकारो ने इस प्रकार से किया है—

**जन्म-जराऽऽमय-मरणैः शोकैर्दुःखैर्भयैश्च परिमुक्तम्।**
**निर्वाणं शुद्धसुखं निःश्रेयसमिष्यते नित्यम्॥**

वह शिवपद जन्म, जरा, आमय (रोग) मरण, शोक, दु ख और सर्वप्रकार के भयो से रहित है, वहा पर आत्मोत्पन्न शुद्ध सुख प्राप्त है, सर्व प्रकार के वाण या शल्य से वह रहित है और नित्य स्थायी है। उसे ही ज्ञानीजन नि श्रेयस या निर्वाण कहते है।

उस मोक्ष मे रहने वाले मुक्त जीव कैसे होते है। इस बात का वर्णन करते हुए शास्त्रकार कहते है—

**विद्या-दर्शन-शक्ति-स्वास्थ्य-प्रह्लाद-तृप्ति-शुद्धियुजः।**
**निरतिशया निरवधयो निःश्रेयसमावसन्ति सुखम्॥**

उस नि श्रेयस मे निवास करने वाले मुक्त जीव हीनाधिकता से रहित अनन्त ज्ञान, दर्शन, शक्ति (वीर्य) स्वास्थ्य, आनन्द, तृप्ति और परम विशुद्धि को धारण करते हुए सुखपूर्वक अनन्तकाल तक निवास करते हैं। और भी कहा है—

**काले कल्पशतेऽपि च गते शिवाना न विक्रिया लक्ष्या।**
**उत्पातोऽपि यदि स्यात् त्रिलोक-सम्भ्रान्तिकरणपटु॥**

यदि इस ससार मे तीनो लोको को उलट-पुलट कर देने वाला कोई वडा भारी उत्पात भी होवे, तो भी उन शिवनिवासी सिद्ध भगवन्तो के अनन्त कल्प काल वीत जाने पर भी कभी कोई विकार नही होगा। किन्तु वे सदा निजानन्दरूप अमृत का पान करते हुए अनन्तकाल तक अपने शुद्ध स्वरूप मे ही रहेगे।

भाइयो, जिन पुरुपो ने कर्म और क्रिया का भलीभाति से अध्ययन किया और अपनी आत्मा को उनसे सुरक्षित रखा, वे ही महापुरुप इस ससार-सागर मे पार होकर उक्त प्रकार के मोक्ष महल मे निवास करते है। जो आत्मपाल है, वे ही आत्मा के इम शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करते है। हमे भी अव आत्मपाल

लोग एकत्रित होते है, तो भगवान की कृपा भी साथ रहती है। अन्यथा सिर फूटते भी देर नही लगती है। वहा पर एक सम्प्रदाय के आचार्य ने—जब पर्युषण पर्व के अवसर पर अतगडसूत्र सुनाया जा रहा था, उसमे श्री कृष्ण का वर्णन आया तब-विना विवेक से यह कह दिया कि श्री कृष्ण तीसरी पृथ्वी मे गये है। उस दिन सभा मे अन्य मतावलम्बी भी अनेक व्यक्ति बैठे हुए थे और राज्य के मुसद्दीलोग भी थे। उन सबको यह बात बहुत बुरी लगी। आज यदि आपके पिता या दादाजी के लिए कोई कह दे कि वे नरक गये है, तो क्या यह बात आपको सहन होगी? चाहे जैसा भक्त हो, परन्तु असह्य बात उसे भी सहन नही होती है। इसलिए सभा मे ऐसी कटु एव अप्रिय भी सत्य बात नही कहना चाहिए।

आनन्दपुर कालू में तनसुखलालजी पाटनी पहिले दिगम्बरी थे। किन्तु पीढीओं से स्थानकवासी बन गये थे। एकबार वहा दिगम्बर सप्रदाय के आचार्य आये वे प्रथमबार ही वहा आये थे। उन्हे स्थानकवासियो से चिढ थी। उन्होंने तनसुखलालजी पाटनी से कहा कि तुम स्थानकवासी साधुओ को आहार मत दो और हाथ भी मत जोडो। यदि तुम यह नियम लो तो हम तुम्हारे घर का आहार ले सकते हैं। उन्होने कहा—महाराज, आपको इस पचायत से क्या लेना-देना है। आप तो आहार के जो बत्तीस दोप है, उन्हे देखो और यदि दोप दृष्टिगोचर हो तो आहार मत लो। आपको कोई द्वेप-वर्धक बात नही कहनी चाहिए। हमारे पूर्वजो ने उन्हे (स्थानकवासी साधुओ को) माना है, और हम भी उन्हे मानते हैं। इसलिए आप इस बात को छोड कर आहार लीजिए। यह सुनते ही उन्होंने कहा—तुम्हारे पूर्वज तो नरक मे गये हैं। वे तो डूब गये, कभी तिर करके भी नही आवेंगे। यह सुनते ही तनसुखलालजी को गुस्सा आ गया, तब उन्होने कहा—महाराज, वापिस पधारो। हमारे पूर्वज तो नरक मे नही गये है, परन्तु जो आपको आहार देता है, वह अवश्य नरक मे जायगा। इस प्रकार भाई, वहा पर बडा झगडा खडा हो गया। अरे, जचे तो आहार लो, अन्यथा मत लो। परन्तु ऐसे अशोभन कर्कश वचन तो नही कहना चाहिए।

हा, तो मैं कह रहा था कि जब उन आचार्य ने कृष्ण के सम्बन्ध मे नरक

अपेक्षा उन दोनो के ज्ञानो मे कोई भेद नही था। यदि कोई भेद था, तो वह केवल प्रत्यक्ष और परोक्ष का था। भगवान् अपने केवलज्ञान के द्वारा समस्त ज्ञेय पदार्थों को प्रत्यक्ष रूप से जानते थे और गौतम स्वामी अपने श्रुतज्ञान के द्वारा उन्ही ज्ञेय पदार्थों को परोक्ष रूप से जानते थे। जैसा कि कहा है—

**स्याद्वाद्व-केवलज्ञाने सर्व तत्त्वप्रकाशने।**
**भेदः साक्षादसाक्षाच्च श्रुत-केवलयोर्मतः॥**

द्वादशाङ्गरूप स्याद्वाद श्रुतज्ञान और केवलज्ञान से दोनो ही सर्वतत्त्व के प्रकाशक है। अर्थात् दोनो ही सर्वज्ञेय पदार्थों को जानते है। श्रुतज्ञान और केवलज्ञान मे भेद तो साक्षात् (प्रत्यक्ष) और असाक्षात् (परोक्ष) का ही है।

गणधर सर्व द्वादशाङ्ग के पारगामी होते हैं और वे उपयोगपूर्वक ही वचन निकालते है। इसलिए उनके द्वारा सर्व प्राणियो का सदा हित ही होता है, वहा किसी के अहित होने की कोई बात ही नही है।

आज लोग कहते हैं कि अमुक स्थान पर अमुक सन्त ठहरे थे। उन्होने कोई ऐसी बात कह दी तो भारी बवडर खडा हो गया। कहिये, क्या हो गया? यदि उनका अपने वचनो पर नियत्रण होता, भाषा-समिति रखते तो ऐसा अवसर क्यो आता। भाई, साधु को तो हित, मित, प्रिय वचन ही मुख से निकालना चाहिए। सभा मे सभी प्रकार के मनुष्य आते है। कोई नवीन ज्ञान उपार्जन की भावना से आते है, कोई केवल सुनने के लिए आते है, कोई शका-समाधान के लिए आते है और कोई छिद्रान्वेषण के लिए ही आते है कि इनके मुख से कोई ऐसा-वैसा शब्द निकले, तो इनका अपमान किया जाय। ऐसे व्यक्ति तो आकरके कुछ न कुछ ऐसा काम करेंगे और ऐसी बात कहेगे कि जिससे सभा मे कुछ न कुछ वखेडा खडा हो जाय।

### बोलने में विवेक

भाई, एक बार उदयपुर मे श्वेताम्बर समाज के तीनो ही सम्प्रदायो के सन्तो का चातुर्मास था। पूज्य श्रीलालजी, महाराज साहब, श्री धर्मविजयजी और तेरहपन्थियो के पूज्य भी थे। तथा वैष्णव सम्प्रदाय के महन्तजी का भी चातुर्मास था। इस प्रकार चार सम्प्रदाय के आचार्य वहा पर थे। जहा पर बड़े

उन्होंने वलि से कहा—'राजन्, देहि मा भिक्षाम'। अर्थात् हे राजन्, मुझे भिक्षा दो। यज्ञ करने वाले का यह कर्त्तव्य होता है कि यज्ञ पूर्ण होने तक भी याचक उसके द्वार पर जाकर जिस वस्तु की भी याचना करे, वह प्रदान करता है, क्योंकि दिये बिना यज्ञ सफल नही होता है। तव वलि कहा—'भगवन्! किमिच्छसि'? अर्थात् हे भगवन्, आप क्या चाहते हो तव विष्णु जी ने कहा—'पादत्रयभूमिकाम् अर्थात् तीन कदम भूमि चाह हू। वलि ने देने की स्वीकृति दे दी। उसी समय विष्णु भगवान् ने वि रूप वनाया और एक कदम मे ही सारे भारतवर्ष पर अधिकार कर लिय और वलि से कहा कि शेप दो पाद भूमि और वता कहा है? तव विष्णुजी का यह विराट रूप देखकर घवडा गया और भयभीत होकर वोला भगवन्, मेरे शिर को ले लीजिए। भगवान ने उसके उसके शिर पर पर र तो वह चिल्ला कर वोला, भगवन्, मैं मरा! तव विष्णु ने सोचा कि यह भक्त है, अव इसे अधिक सताना ठीक नही। यह स्वय ही कोमल वन गया अत उन्होंने उससे कहा—वोल, क्या चाहता है? स्वर्ग तो तू जा नही सव है, अव जो तू चाहे, सो माग। तव वलि ने कहा—भगवन्, जहा मैं जा वहा पर आप पहरा देना। विष्णु जी ने 'तथास्तु' कह दी। इसलिए वच वद्ध होने के कारण विष्णु भगवान् भी उसके द्वार पर पहरा देने के लिए हैं। यह सुनते ही पुरोहित जी वोले—महाराज, जो वात आपने कही है, विलकुल सच है। इसमे झूठ का लेश भी नही है। यही वात हमारे भागवत मे लिखी है। और हम भी यही कहते है। आपके और हमारे पुराणो के क मे कोई अन्तर नही है, परन्तु महाराज, उन आचार्यजी को वोलने का वि नही है। भाइयो, देखो—एक आचार्य ने वोलने का विवेक नही रखा तो व वात मे सकट उपस्थित कर दिया। और दूसरे आचार्य ने वही वात वि पूर्वक कही तो सघ पर आने वाला सकट टल गया। और झूठ भी नही वोल पडा। पुरोहित जी ने जाकर सारी वात राणाजी से कही—महाराज, कोठ जी के गुरु तो शास्त्रो के वहुत वडे ज्ञाता हैं। उन्होंने सही वात

जाने की वात कही तो उन मुसद्दियो और अन्य मतवालो को वहुत बुरी लगी। आखिर यह वात राणाजी के कानो तक पहुच गई। राणाजी ने कहा-उन सब को यहा से निकाल दो। पहिले तो राजाओ के हाथ मे शासन की लाठी थी। वे जव जैसा चाहे, वैसा ही करने मे समर्थ थे। उस समय वहा पर बलवन्तसिंह जी कोठरी मौजूद थे। उन्होने राणा साहब का यह हुक्म सुनते ही कहा—महाराज, सबको क्यो निकालते हैं ! हमारे आचार्य जी को भी तो पूछिये कि वे इस सम्बन्ध मे क्या कहते है ? और क्या उन्होने भी यह बात कही है ? जिन्होने कही हो, उन्ही को निकालिये। तब राणाजी ने कहा—पुरोहितजी, कोठारीजी के साथ इनके आचार्यजी के पास जाओ और उनसे पूछो कि कृष्णजी भगवान् कहा गये है ? तब पुरोहितजी कोठारीजी के साथ वहा गये। उस समय पूज्य श्रीलालजी महाराज बागमे विराजमान थे। वहा जाकर पुरोहित जी ने पूज्य श्री जी से पूछा—महाराज, श्रीकृष्णजी कहा गये है ? तब आचार्य श्री जी ने कहा—पुरोहितजी, आपने अनेक बार भागवत पढी है ! फिर हमसे क्या पूछ रहे हो ? वे राजा बलि के द्वार पर गये हैं। उन्होने पूछा-क्यो गये महाराज ? तव आचार्य श्री ने कहा—पुरोहितजी, आपको ज्ञात ही होगा कि राजा वलिने ९९ यज्ञ किये थे और यज्ञ करके सारे भूमडल पर अपना अधिकार कर लिया था। फिर भी उसकी तृष्णा शान्त नही हुई। तव उसने सौवा यज्ञ प्रारम्भ किया। और उस यज्ञ की पूर्णाहुति होते उसका स्वर्ग पर भी अधिकार हो जाता। यह देखकर इन्द्रादि सव देवगण भयभीत हुए और वे सव मिलकर विष्णु महाराज के पास गये और उनसे निवेदन किया कि प्रभो, वलिको समझाओ। उसने सारी पृथ्वी पर अधिकार कर लिया। फिर भी उसकी तृष्णा शान्त नही हुई। और अव वह यह सौवा यज्ञ करके हमारे स्वर्गलोक पर भी अधिकार करना चाहता है। भगवन्, यदि उसने स्वर्ग पर अधिकार कर लिया तो हमे वडा क्लेश होगा और देवलोक मे विप्लव मच जायगा। यह सुनकर विष्णुजी ने कहा—इन्द्र, तुम घवडाओ नही, मैं इसका उपाय करता हू। तव इन्द्रका दु ख दूर करने के लिए उन्होने वामन अवतार का रूप धारण किया और वलिराजा के द्वार पर गये। वहा जाकर

छीटे अपने ऊपर ही पडेगे। अजान तो कर्म-क्रिया के ज्ञान से शून्य है। पर भाई, आप तो इनके जानकार हैं, फिर ऐसे बोल बोलकर क्यो कर्मो का बन्ध करते हो। कोयले की दुकान पर जाओगे तो आपके कपडे काले होवेगे ही। अब उसे आप उपालम्भ दे कि तेरे यहा आने मे मेरे कपडे काले हो गये तो वह कहेगा कि आप यहा आये ही क्यो? भाई, जब हमे कर्म-बन्ध का ध्यान है, तो ऐसी क्रियाए करनी ही नही चाहिए, जिनमे कि कर्मबन्ध होता है। आत्मपाल बनने के लिए अपने आत्मा को भली-भाति पालना करनी ही पडेगी।

भाइयो, यह प्रसन्नता का समाचार मिला है कि भारत सरकार ने महावीर जयन्ती की छुट्टी मजूर कर ली है। इसकेलिए अनेक वर्षो से प्रयत्न चल रहा था। उसमे सफलता अब प्राप्त हुई है। अरे, जहा बुद्ध, मोहम्मद, नानक आदि के जन्म-दिवसो पर छुट्टी रखी जाती थी, वहा पर महावीर-जयन्ती की छुट्टी क्यो नही थी? इसमे कुछ तो भारत सरकार की गलती थी और उससे अधिक गलती आप सब जैनियो की थी। जब आप लोग महावीर-जयन्ती के दिन स्वय ही अपना व्यापार बन्द नही रखना चाहते है, तब दूसरे क्यो रखेंगे? आप तो अपना कारोबार-चालू रखकर कमाई करना चाहे और दूसरो से दुकानें बन्द रखने की कहकर उनके पेट पर पट्टी बाधना चाहे, तो यह नही हो सकता है। जब अपने को भगवान् महावीर का भक्त कहलानेवाला जैनी ही उनका सन्मान न करें, तो दूसरे धर्मावलम्बियो को क्या गरज पडी है कि वे उनके जन्मदिन पर अपना कारोबार बन्द रखें? इसलिए इस विषय मे मेरा तो यही कहना है कि इस दिन को आप लोग जितना महत्त्व देंगे और व्यापार छोडकर आत्म-साधना मे लगेंगे, उतना ही अच्छा रहेगा। भाई, भगवान महावीर के जन्म समय कुबेर ने रत्न-सुवर्ण की वर्षा की और उनके पिता ने याचकजनो को भर पूर दान दिया, तो आप लोगो का कर्तव्य है कि महावीर के जन्मदिन पर आप भी गरीब-अनाथो को दान देवें, उनके दु खो को अपनी शक्ति के अनुसार जितना भी कम कर सकें, उतना कम करे। इससे जैनधर्म की बडी भारी प्रभावना होगी। इस दिन कोरे व्याख्यान देने या सुन लेने से कुछ नही होगा। किन्तु

लिए वहा जाना पडा । पुरोहितजी की बात सुनकर राणाजी ने कहा—अच्छा वे रहे । और जिन्होने कहा—उन्हे निकाल दो । अन्त मे उन्हे क्षमा-याचना करनी पडी तब रह सके । इसलिए मैं कहता हू कि जो मनुष्य विना विचारे यद्वा-तद्वा वचन बोलते है, वे आस्रव के द्वार खोलते है । फिर उनके कर्मों का सवर कैसे हो सकता है ?

भाइयो, जब एक गृहस्थ पुरुष भी विचार करके बोलता है तब साधु को तो बहुत विचार के साथ ही बोलना चाहिए । देखो—अभागी और मन्दभागी दोनो ही शब्द समान अर्थ वाले है । किन्तु यदि किसी से अभागी कह दिया जावे तो उसे बहुत दुःख होता है, उसका चेहरा बिगड जाता है । इसलिए बोलते समय सावधानी की आवश्यकता है । आज जैनियो मे समता क्यो नही है ? क्योकि उन्होने गुरु को भी कुछ नही समझा और धर्म को भी कुछ नही समझते है । वे अपनी वस्तु को भी अपनी नही समझते हैं, फिर यदि वे दूसरो के लिए अनर्गल वचनो का प्रयोग करे, तो कोई आश्चर्य की बात नही है । देखो—कहा तो केवलज्ञान के धनी सर्वज्ञ भगवान् और चार ज्ञान के धनी गौतम स्वामी । और कहा आज के अल्पज्ञ मनुष्य ! फिर भी लोग यह कहते नही चूकते कि अमुक विषय मे भगवान् चूक गये । गौतम चूक गये ! भाई, यह बात कैसे सही जा सकती है । जो बालक अभी पहिली कक्षा मे 'अ, ब' ही सीख रहा है, यह यदि एम ए मे पढनेवाले से कहे कि तुम चूक गये, या अशुद्ध बोल रहे हो, तो क्या उसकी बात विश्वास करने के योग्य है ? जब हमे मति—श्रुतज्ञान भी पूरा नही है, तब हमे चार ज्ञान के धारियो की चूक बताने का क्या अधिकार है ? और क्या यह हमारी सज्जनता और कृतज्ञता है ? जो इस प्रकार कहने मे भगवान तक से नही चूकते है, तो वे यदि अन्य के लिए कुछ यद्वा-तद्वा कह देवे, तो कौन सी बडी वात है । जो लडका अपने दादाजी और पिताजी के भी थप्पड मार दे, वह यदि अपने बडे भाई से कुछ कहे, तो कौन सा आश्चर्य है ? परन्तु भाई, हमे अपने वचनो पर लगाम रखना चाहिए । यदि कोई अजान या अनार्य पुरुप है और यदि हम उसका मुकाविला करने के लिए उद्यत हो, तो दुनिया हमे ही वुरा कहेगी । गीले गोवर पर पत्थर फेंकोगे तो

# १६ आज के बुद्धिवादी !

वन्धुओ, जैनधर्म का अनेकान्तवाद एक ऐसा सिद्धान्त है कि वह समस्त एकाङ्गी दृष्टियो का समन्वय करके वस्तु के यथार्थस्वरूप का निर्णय करता है। उससे हम सभी प्रकार के विवादो को वडी सरलता से सुलझा सकते हैं। परन्तु समन्वय करने के लिए यह अत्यावश्यक है कि उसका करनेवाला वुद्धिमान् होना चाहिए। उसे जैनदर्शन के प्राणभूत नयवाद का परिज्ञान होना चाहिए। अन्यथा वह विरोधाभासो और विसगतियो को दूर नही कर सकेगा।

**ज्ञान लो ! गुरुगम से !**

देखो—उद्यान मे अनेक जाति के पुष्प अलग-अलग वृक्षो की शाखाओ पर, लताओ पर एव गुल्मो पर खिले हुए हैं। उनके वर्ण, आकार और सुगन्ध आदि सव भिन्न-भिन्न हैं और प्रत्येक पुष्प का उपयोग भी भिन्न-भिन्न है। माली उनको तोडकर एक टोकरी मे सग्रह करता है। तत्पश्चात् वह उनसे हार, गुलदस्ता आदि वनाता है जिस हार मे जिस जाति का पुष्प उपयुक्त प्रतीत होता है, उसे वह वही पर सूत्र-निवद्ध करता है। इस प्रकार वह अनेक जाति के सुन्दर हार, सेहरा, गुलदस्ता आदि वनाता है, जिनको देखकर दर्शक का मन मुग्ध हो जाता है। यदि कोई पुष्प यथास्थान नही लगा है तो दर्शक कह देता है कि इसको वनानेवाला माली मूर्ख है। ठीक इसीप्रकार पुष्पो के समान

इस दिन भगवान् महावीर के उच्च आदर्शों को हम स्वय अपने जीवन मे लाकर ससार के सामने एक आदर्श के रूप मे उपस्थित हो कि हमे देखकर दूसरे लोग भी महावीर का जय जयकार करते हुए उनके मार्ग पर चलने के लिए तैयार हो। तभी यह भगवान् महावीर की जन्म-जयन्ती की छुट्टी सार्थक होगी।

सज्जनो, ये महावीर-जयन्ती, पर्युषण आदि पर्व हमे यही प्रेरणा देने के लिए आते है कि अभी तक तुम पेटपाल ही बने रहे। अब उसे छोडकर और आत्मा की साधना करके आज से आत्मपाल बनो। तभी तुम्हारा कल्याण होगा।

वि० स० २०२७, आसोजवदि-१४
सिहपोल, जोधपुर

●●

समय ऐसा इशारा करना अयोग्य है । इसप्रकार क्षेत्र और काल का विचार नही करने से लोगो की दृष्टि मे गिर गया । क्योकि लोग तो यही समझेंगे कि यह पराई स्त्री से इशारेबाजी कर रहा है । यद्यपि उसके भाव बुरे नही है और आवश्यक कार्य से वह उसे घर चलने के लिए इशारे कर रहा है परन्तु यह स्थान व काल स्त्री को इशारा करने का नही है । भाई, आपके विचार पवित्र होने पर भी क्षेत्र-काल का विचार न करने पर आपको बदनाम होने का प्रसग आ गया ।

भाइयो, इसीप्रकार शास्त्रो की बातो का यथार्थ रहस्य जानने के लिए क्षेत्र, काल, भाव की दृष्टि से विचार करना आवश्यक है । सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति—ये ज्योतिष के ग्रन्थ हैं। इनमे ज्योतिष का वर्णन है। आचार्यो ने सभा मे इनके व्याख्यान का निषेध किया है । भगवान् ने दो प्रकार के सूत्र कहे हैं— आगमसूत्र और पापसूत्र । ज्योतिष, वैद्यक, काम शास्त्र आदि को पापसूत्र कहा है, क्योकि इनके द्वारा पाप की प्रवृत्ति होती है ।

ज्योतिषी के पास आप क्यो जाते हैं ? आप कहेंगे कि विवाह का लग्न निकलवाने के लिए, मकान-प्रवेश का मुहूर्त पूछने के लिए, दुकान खोलने या गौने आदि के मुहूर्त दिखाने के लिए जाते हैं ? परन्तु ये सब पापके काम हैं, क्योकि इनके द्वारा पापकी प्रवृत्ति होती है । इसीप्रकार वैद्यक शास्त्र भी हैं । यद्यपि वैद्यक से दुनिया को लाभ होता है, आराम मिलता है और रोग दूर होते हैं । परन्तु आप को यह भलीभाति से विदित है कि रोग को दूर करने के लिए जिन दवाओ का निर्माण किया जाता है, उसमे सचित्त-अचित्त वस्तु का और हिसा-अहिसा का विचार नही रखा जाता है । जो वस्तु मागे वही देनी पडती है और लेनी भी पडती है । क्योकि उस समय तो आराम पाने का लक्ष्य है, हिसा की ओर ध्यान नही है । अत वैद्यकशास्त्र से भी पापकी प्रवृत्ति होती है । कामशास्त्र आदि तो स्पष्ट रूप से ही विषय-भोगो के प्ररूपक होते है । अत इन सबको भगवान ने पाप सूत्र कहा है ।

अब आप पूछेंगे कि जब ज्योतिष-वैद्यक आदि शास्त्रो को भगवान ने पाप सूत्र कहा है, तब सूर्यप्रज्ञप्ति-चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि का निर्माण ही क्यो किया

शब्द है। एक-एक शब्द के सयोग से पद बनता है, पदो के सयोग से वाक्य वनते हैं। और वाक्यो के सयोग से श्लोक, सूत्र आदि की रचना होती है। इसप्रकार की जो रचनाए सिद्धान्त का प्रतिपादन करती है, उन्हे आगम, शास्त्र, ग्रन्थ आदि कहा जाता है। इन आगम-ग्रन्थो मे विभिन्न स्थलो पर नाना प्रकार के विषयो का वर्णन आया हुआ है। उनका पूर्वापर की सगतिपूर्वक वास्तविक अर्थ निकालने के लिए गुरु-गमता की आवश्यकता है। अध्ययन या पठन करनेवाले मनुष्य को पहिले गुरु-मुख से उसके अर्थ की वाचना लेनी चाहिए। वाचना लेते समय अध्येता को अपनी बुद्धि के द्वारा उस अर्थ का अवधारण करना आवश्यक है। यदि कही पर पूर्वापर-विरोध प्रतीत हो, अथवा अर्थ-विपर्यास प्रतिभासित हो तो उसका गुरु-मुख से निर्णय लेना और शका का समाधान करना भी जरूरी है। जो इस प्रकार आगम-ग्रन्थो का गुरु-मुख से अध्ययन करेगा, उसे जिन-भाषित और गणधर-ग्रथित इन आगमो के विषय मे कही पर भी रचमात्र शका नही रहेगी।

### चार अपेक्षाओ से विचार करो !

आगमो मे प्रत्येक तत्त्व का निर्णय द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से किया गया है और वक्ता या श्रोता को इन चारो के आश्रय से तत्त्व-प्रतिपादन करने और तत्त्वग्रहण करने का उपदेश दिया गया है। जो इन चारो वातो को ध्यान मे नही रख करके किसी वात का कथन करते हैं, उनके कथन मे अवश्य ही विसगति आयेगी। जैसे आप यहा पर व्याख्यान सुन रहे है, अव आप मे किसी भाई ने अपनी वहिन या वेटी से जोकि स्त्री-समुदाय मे वैठी थी,—आख या हाथ-द्वारा कोई इशारा किया। उस समय दूसरे जो लोग यहा पर वैठे है और जिन्हे यह ज्ञात नही है कि आप जिसे इशारा कर रहे है, वह आपकी ही वहिन-वेटी है, तो वह यही कहेगा, कि इस मनुष्य को इतनी भरी सभा मे किसी स्त्री की ओर इशारा कहते हुए शर्म नही आती है। भाई, दूसरो को ऐसा कहने का अवमर क्यो आया ? इसीलिए कि उस व्यक्ति ने न तो क्षेत्र का विचार किया कि यह धर्मस्थान है, यहा पर हमे ऐसा इशारा नही करना चाहिए। और न उमने काल का ही विचार किया कि व्याख्यान के

अध्ययन तो करो, परन्तु प्रचार मत करो। यह रोक लगा दी। यह रोक क्यो लगाई। इसलिए कि सब लोग समान बुद्धि के नही हैं, सबके दिमाग एक से नही हैं। अत उनके सुनाने पर उनके अहित की सभावना है।

जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति मे चक्रवर्ती के विषय मे कहा गया है कि उनकी मुख्य रानिया थी, उनके नख-शिख का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार अकर्म-भूमि मे जो युगलियो की स्त्रिया थी उनका वर्णन भी पैर के अगूठे से लगाकर शिर तक के ८४ अगो का बहुत शृंगार पूर्ण वर्णन किया गया है। यदि आज का बुद्धिवादी और धर्म का द्वेषी पुरुष उसे पढ लेवे, तो यही कहेगा कि यह तो कोकशास्त्र है। परन्तु नही, वह तो शास्त्र है। वैसा वर्णन क्यो किया गया ? क्योकि उनका शरीर वैसा था। उनको ऐसे-ऐसे भोग और उपभोग के साधन सुलभ थे। अर्थात् जो उनकी यथार्थस्थिति थी, उसका शास्त्रकारो ने चित्रण कर दिया। परन्तु वह सभा को सुनाने का नही है, जहा पर कि नव-युवक और नवयुवतिया बैठी हुई हैं। हा, वृद्ध पुरुषो को सुना सकते हैं। यदि ऐसे स्थल पर सुनाने का अवसर आवे—जहा पर कि सभी अवस्थाओ के स्त्री-पुरुष बैठे हो, तो सक्षेप मे उसे कह दो।

अब आप पूछेंगे कि ऐसा क्यो कहा ? इसमे तो कपट का दोष लगता है ? भाई, इसमे कपट की क्या बात है ? जैसे आपको किसी की कोई गुप्त बात सुनने मे आई। वह आपका घनिष्ठ मित्र है, या सगा सम्बन्धी है। अब उसने आकर आपसे पूछा। अब आप क्या उसे वह बात सीधे रूप मे कहेगे ? नही कहेगे। किन्तु उससे ही पूछेंगे कि यह बात आप क्यो सुनना चाहते हैं ? वह कहता है कि मैं इस बात की जड-मूल जानना चाहता हू। अब आप उस बात को इस ढग से कहेंगे कि उसकी जड-मूल भी न बताना पडे और बात भी कह दी जावे। इस प्रकार आपने मर्म की बात भी नही कही और उसके साथ मित्रता या रिश्तेदारी का भी निर्वाह कर लिया। इस सबके कहने का आशय यही है कि जहा जैसी सभा हो—जैसे श्रोताजन हो—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के अनुसार वहा पर उसी प्रकार से समास या व्यास रूप से कहना चाहिए।

गया ? इसका उत्तर यह है कि पर की जानकारी हुए विना 'स्व' का अपने आपका-बोध भलीभाति से नही हो सकता है, अत अपने घर का और पर घर का ज्ञान करना आवश्यक होता है। जब तक जिज्ञासु व्यक्ति अपने चारो ओर की वस्तुओ को न जान ले तब तक अपना निर्णय ठीक रीति से नही हो पाता है। जैसे आपका किसी व्यक्ति के साथ मुकद्दमा चल रहा है, और आपको अपना जबावदावा पेश करना है। परन्तु उसे पेश करने के पहिले आप देखते हैं कि विरोधी पक्षने हमारे ऊपर कौन-कौन से आरोप लगाये हैं, उनका उत्तर देने के लिए पहिले आपको विरोधी के आरोपो की छानबीन करना आवश्यक होता है और आपका वकील भी विरोधी के मुद्दो को भली भाति से जानकारी करता है, तब जबाब दावा तैयार करके पेश किया जाता है, ताकि विरोधी को परास्त किया जा सके।

इसीप्रकार जब हम स्व-धर्म का मडन कर रहे हैं, तब पर-धर्म के वाक्यो को भी जोड देते हैं। और पर-पक्षी भी कहते हैं कि हम को भी सामनेवाले के पक्ष का ज्ञान करना आवश्यक है। अत. तत्वनिर्णय के लिए पर-पक्ष का जानना जरूरी है, यह कह करके भी सभा मे उनके और आदेश या उपदेश करने की रोक लगा दी कि सूर्य प्रज्ञाप्ति, चन्द्र प्रज्ञप्ति, वृहत्कल्पसूत्र आदि छह सूत्र ग्रन्थ सभा मे बाचने की आवश्यकता नही है। इसकेलिए कहा गया है कि हे साधो, तुम स्वय इनका अध्ययन कर लो। परन्तु सभा के भीतर इन्हे मत सुनाओ। कोई पूछे कि बताओ—किस सूत्र मे मना किया है ? इसका उत्तर यह कि भाई, इस बात का विचार कर कि सूत्रो के सूत्र क्यो रचे गये है ? अपनी धारणा लेकर, लौकिक व्यवहार को लेकर और जीवाचार लेकर। इसका मतलब यह हैं कि हमारे पूर्वज जैसा करते आये हैं वैसा करना पडता है। हमारे पूर्वाचार्यों ने जो बातें बताई हैं, वे हमारे लिये सूत्रो के समान ही है। सूत्र हमे पूर्वजो से ही प्राप्त हुए है। वे सूत्रो के विशेष ज्ञाता थे और उन्होने जो बातें बताई, तो वह परम्परा है और व्यवहार भी है। अत उसका भी मानना योग्य है। आचार्यों ने हमारे जीवन को सुखी बनाने के लिए और हमे आनन्द मे रखने के लिए कह दिया कि तुम इन सूत्रो का

पर दृष्टिपात करते ही उन लोगो की मन स्थिति और अपराध करने की परि-स्थिति को समझ लिया और यह निर्णय कर लिया कि यह व्यक्ति इतने कहने से ही आगे ऐसा अपराध नही करेगा। देखो—प्रथम व्यक्ति को उतना सा कहने पर ही आसू झरने लगे। दूसरे को प्रथम से अधिक उपालम्भ या हिदायत करने पर उसका सिर लज्जा से नीचे झुक गया और तीसरे को नालायक कहने पर भी असर नही हुआ, तब उसे आगे के लिए चेतावनी दी गई। तो न्याया-धीश के वचन अपराधी के अन्तस्तलस्पर्शी थे। अब यदि कोई तर्क करे कि न्यायाधीश ने पक्षपात किया, तो यह कहनेवाले की भूल है। आचार्य के सामने एक ही जाति की भूल करनेवाले अनेक साधु अपनी आलोचना करते है। फिर भी आचार्य सबको शारीरिक, मानसिक स्थिति का अध्ययन करके सबको एक ही जाति का प्रायश्चित नही देते है किन्तु भिन्न-भिन्न ही दण्ड देते हैं। इसीप्रकार भगवान ने किस वचन को कहा पर किस विवक्षा से कहा है, इसका हमे अनुसन्धान करने की आवश्यकता है, बिना सोचे-विचारे उनकी बात को गलत कहना अनुचित हैं।

### पूर्वा-पर सम्बन्ध का विचार

भाइयो, पर आज के बुद्धिवादी लोग तो अपने को शायद सर्वज्ञ से भी बडा समझते हैं और बिना सोचे-विचारे झट कह देते हैं कि भगवान महावीर ने यह भूल की, गौतमस्वामी ने यह अन्यथा कह दिया और अमुक आचार्य ने यह अन्यथा कह दिया है। आज एम ए पास लोग डाक्टरेट् उपाधि प्राप्त करने के लिए शोध-निबन्ध लिखते हैं, तब उन्हे आगे-पीछे के सन्दर्भ का कुछ भी ध्यान नही रहता कि हम अपने ही हाथो से अपने लिए कब्र खोद रहे है और अपने ही पैसे पर स्वय कुठाराघात कर रहे हैं। उन्हे इस बात का कुछ भी ध्यान नही रहता कि हम क्या लिख रहे हैं और भविष्य मे इसका हमारी समाज पर या धर्म पर क्या असर पडेगा। भाई, मूर्ख भी दो प्रकार के होते हैं—एक अपढ मूर्ख और दूसरा पढा हुआ मूर्ख। अपढ तो मूर्ख है ही, पर पढ़े मूर्ख को क्या कहा जाय ? उसे कुछ भी लिखते हुए और शास्त्रो पर टीका-टिप्पणी करते हुये यह विचार नही होता है कि हमारी समाज कितनी भोली

## शास्त्र का सदुपयोग करो

एक वार पाली मे जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति का व्याख्यान चल रहा था। उसमे युगलियो की 'राब' का वर्णन आया। व्याख्याता मुनिराज कुछ अनुभव-हीन थे, वे पाली के लोगो के स्वभाव आदि से परिचित नही थे। अत उन्होने भोलेपन से 'राव' कैसे बनती है, इसका सारा विवेचन कर दिया। उसे सुनकर एक भाई को उसके खाने की उत्कण्ठा जग गई और उसने घर जाकर स्त्री से कहा—मैं आज व्याख्यान मे सुनकर आया हू सो इस प्रकार की 'राव' बनाओ। स्त्री ने भी वतलाई विधि के अनुसार ही सव मसाले डाल कर 'राब' बना दी। और उसने उसे खाया। दूसरे दिन वह व्यक्ति व्याख्यान मे पहुचा और बोला—महाराज, आपने युगलियो की राव का जैसा वर्णन किया था, उसी प्रकार का राब मैंने बनवाया। परन्तु आपके कहे अनुसार वैसा आनन्द तो नही आया। तब मुनिराज ने कहा—अरे गुरुकर्मी, यह क्या किया? वह बोला—आपने ही तो व्याख्यान मे फरमाया था। भाई, बताओ—यह सुनाने का सदुपयोग हुआ, या दुरुपयोग? इसी प्रकार शास्त्रो मे अनेक प्रकार के भाव आये हुए है। उनको कैसे काम मे लेना, यह वक्ता या व्याख्याता की कुशल बुद्धि पर निर्भर है।

देखो—तीन व्यक्तियो ने एक ही अपराध किया और वे पकडे जाकर न्यायाधीश के सामने लाये गये। न्यायाधीश ने तीनो व्यक्तियो की ओर दृष्टि-पात किया। तत्पश्चात् प्रथम व्यक्ति से कहा—आप समझदार और समाज के प्रमुख हैं, फिर भी आपने वह भूल कैमे की? इतना सुनते ही उस व्यक्ति की आखो से आसू झरने लगे। दूसरे तर्फ वालेव्यक्ति से कहा—देखो, तुम किसके बेटे और और किसके पोते हो। तुमने यह काम करके अपने कुल को कलकित कर दिया? अब आगे से ऐसा काम मत करना यह सुनने पर उसने लज्जित होकर अपना मुख नीचे कर लिया। तीसरे व्यक्ति को लक्ष्य करके न्यायाधीश ने कहा—अरे नालायक, तुझे यह काम करते हुए शर्म नही आई? अब आगे यदि ऐसा काम करोगे तो सजा पाओगे। आप सोचेंगे कि एक ही अपराध के दोषी तीन व्यक्तियो को तीन प्रकार से क्यो कहा? भाई, न्यायाधीश ने उन

मधु और मास का त्याग करना चाहिए। तथा प्रमाद के परिहार के लिए मद्य का त्याग करना चाहिए।

मास का त्याग आवश्यक वतलाते हुए कहा गया है—

न विना प्राणिविघातान्मासस्योत्पत्तिरिष्यते यस्मात्।
मास भजतस्तस्मात् प्रसरत्यनिवारिता हिंसा॥

अर्थात् प्राणियो के घात के विना मास की उत्पत्ति नही होती है, अत जो मास का सेवन करता है, उसके हिंसा अनिवार्य रूप से प्राप्त होती ही है।

जो लोग यह कहते हैं कि किसी प्राणी को मार करके उत्पन्न हुए मास मे तो हिंसा है। पर स्वय मरे हुए प्राणी के मास खाने मे क्या दोष है? उनको लक्ष्य करके शास्त्रकार कहते हैं—

यदपि किल भवति मास स्वयमेवं मृतस्य महिष वृषभादे।
तत्रापि भवति हिंसा तदाश्रितनिगोद - निर्मथनात्॥

अर्थात्— स्वयमेव मरे हुए भैसे-वैल आदि का मास है उसमे भी अनन्त निगोद राशि निरन्तर उत्पन्न होती रहती है, उसके भी पकाने और खाने वालो को उन प्राणियो के निर्मथन करने से हिंसा होती ही है।

आमा वा पक्का वा खादति यः स्पृशति पिशिपेशीं स।
खलु हन्ति सततनिचित पिण्ड वहुजीवकोटीनाम्॥

जो कच्ची या पकी हुई मास की पेशी (डली) को खाता है, या स्पर्श भी करता है, वह असख्य जीव कोटियो के निरन्तर उत्पन्न पिंड का निश्चय मे घात करता ही है।

इसी हिंसा पाप से वचने के लिए भगवान ने चारो ही महा विकृतियो के खाने का निषेध किया है। यथा—

मधु मद्यं नवनीत पिशितं लघु महाविकृतयस्तास्ता।
वल्भ्यन्ते न व्रतिना तद्वर्णा जन्तवस्तत्र॥

अर्थात्—अल्प परिमाण मे भी मधु, मद्य, मक्खन और मास है, तो भी वह महाविकृति ही है, क्योकि उनमे उसी वर्णवाले जीव निरन्तर उत्पन्न होते

है और कितनी नाजुक स्थिति से गुजर रही है। यदि हम ऐसी बाते लिखेंगे तो समाज का सत्यानाश हो जायगा। और सारा गौरव धूल मे मिल जायगा। ऐसे लेखको को चाहिए कि वे ऐसी बाते लिखे, जिससे समाज का उत्थान हो और उसका गौरव बढे। जो आज के बुद्धिवादी लोग सिद्धात के मर्म को समझे विना यद्धा-तद्वा लिख देते हैं, वे समाज के हितैषी नही प्रत्युत शत्रु हैं।

पजाब-निवासी श्री पूज्य सोहनलालजी की स्मृति मे 'पार्श्वनाथ विद्याश्रम' नामक एक सस्था बनारस मे खोली गई है। वहा पर जैन दर्शन के विभिन्न विषयो पर एम ए पास छात्र रिसर्च करते है और कुछ लोग नवीन साहित्य का भी सर्जन करते हैं। वहा से हाल मे ही 'जैन दर्शन का बृहद् इतिहास' नामक एक पुस्तक निकली है। उसमे कुछ बातें ऐसी लिखी गई हैं कि जिन्हे पढकर बडा दु ख होता है। उसमे एक स्थल पर लिखा है कि मुनियो को मद्य, मास, मधु और मक्खन नही कल्पता है। परन्तु यदि कोई खास अवसर आ पडे तो ले सकते है। और खा सकते है। मास मे की जो हड्डिया हैं, उनको नही लेना और जो काटे हो, तो उन्हे लेना। इसका सीधा सादा अर्थ यह निकलता है कि यदि पात्र मे मास आजाय तो उसे खा जाओ और हड्डिया काटे निकाल दो। ऐसा पढकर या सुनकर किसी विचारक या साधारण बुद्धि के जैनी को दु ख हुए विना नही रहेगा ? और वह कह उठेगा कि अरे राम, उन पढे लिखे मूर्खों को ऐसा लिखते हुए शर्म नही आई ? भाई, साधु तो वहुत ऊचे व्रती है, किन्तु एक सामान्य जैन गृहस्थ के लिए भी इन वस्तुओ के खाने का निषेध किया गया है। जैन नाम रखने वाले और जिन भगवान् की शरण मे जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को मद्य-मासादिक का त्याग आवश्यक बतलाया गया है। शास्त्रकारो ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है—

**त्रसहतिपरिहरणार्थं क्षौद्रं पिशितं प्रमादपरिहृतये।**
**मद्यं च वर्जनीयं जिनचरणौ शरणमुपयातैः॥**

अर्थात् जो लोग जिन भगवान के चरणो की शरण मे जाना चाहते हैं और जैन धर्म अगीकार करना चाहते हैं, उन्हे त्रसजीवो की हिंसा के परिहार के लिए

फिर तेरे चित्त मे उदासी क्यो है ? जयन्ती ने कहा—वहिन, मुझे इनकी तो कोई चिन्ता नही है। किन्तु मेरे धर्माचार्य भगवान महावीर जो धर्म के नायक और जगत के तरण-तारण हैं, मैं उनके दर्शनार्थ गई थी। वहा जाकर ज्ञात हुआ कि वे छह माम से रक्तातिसार से पीडित है। यह सुनते ही रेवती ने कहा—मेरे पास इस रोग की उत्तम औषधि तैयार है, जिसे लेते ही उनका रोग उपशान्त हो जायगा। भाई, जव रोग जाने का समय आजाता है, तव सव योग भी अपने आप मिल जाते हैं। यह सुनकर जयन्ती वाई तुरन्त वापिस लौटी और उसने भगवान के पास जाकर निवेदन किया—हे भगवन्, आप तो महापुरुष हैं, आपको तो इस रोग की कोई चिन्ता नही है, परन्तु आपके भक्तो का हृदय दु ख पाता है। मेरी वहिन के पास इस रोग की औषधि तैयार है। यदि आप उसे सेवन करेंगे तो आपका यह रोग अवश्य शान्त हो जायगा। तव भगवान ने जयन्ती वाई की प्रार्थना स्वीकार करके रोहा नामक मुनि को वुलाया और उससे कहा कि इस श्राविका के साथ जाओ और रेवतीवाई के यहा जो मेरे लिए कोलापाक वनाया गया है, उसे तो मत लाना। परन्तु घोडो के लिए जो विजोरा पाक वना हुआ रखा है, वह लाना। अव जयन्ती उस साधु के साथ पैदल ही मेढियाग्राम पहुची और रेवती ने सामने आकर साधु की अगवानी की और वन्दन कर निवेदन किया कि महाराज, यह कोलापाक लीजिए। कोलापाक का नाम सुनते ही साधु ने कहा—'नो कप्पई' अर्थात् इसे लेना नही कल्पता है। रेवती ने इसका कारण पूछा, तो साधु ने कहा—यह तुमने भगवान के लिए वनाया है और साधु के उद्देश्य से वनाया गया पदार्थ उनके लिए ग्राह्य नही होता है। यह सुनकर रेवती बडी चकित हुई कि मेरे और मेरी दासियो के सिवाय इस बात को तीसरा कोई नही जानता है। फिर यह बात भगवान् को कैसे ज्ञात हो गई कि यह मेरे लिए वनाया गया है ? उसने यह बात प्रकट रूप मे साधु से कही कि भगवान ने यह बात कैसे जान ली है ? तब साधु ने कहा—रेवती, भगवान तो सारे लोकालोक के स्वरूप को जानते हैं। उनसे कोई वात छिपी हुई नही है। तव रेवती ने जयन्ती से पूछा कि अब क्या करना चाहिए ? इस पर रोहा मुनि ने कहा—बाई, तुम्हारे यहा घोडो के लिए जो विजोरा

रहते है अत व्रती पुरुप इन चारो ही महाविकृतियो को नही खाते हैं, किन्तु नियम से उनका त्याग करते है।

**शब्द को नहीं, भाव को देखो !**

इस प्रकार शास्त्रो मे चारो महाविकृतियो के त्याग करने का भरपूर वर्णन है। फिर भी आज के ये बुद्धिवादी लोग परम्परागत अर्थ को न मानकर और शब्दो को ही पकड करके जैन-परम्परा के सर्वथा विरुद्ध अर्थ का प्रतिपादन करते हुए सकोच नही करते है। भगवती सूत्र मे आया है कि गोशालक ने भगवान महावीर के ऊपर तेजोलेश्या छोडी। उसके फल स्वरूप वे छह मास तक रक्तातिसार (खूनीपेचिस) से पीडित रहे। भगवान् तो वज्रवृषभनाराच सहनन के धारक थे, अत जीवित बच गये। अन्य कोई होता, तो तत्काल भस्म हो जाता। रक्तातिसार की पीडा सहन करते हुए छह मास वीत गये। परन्तु भगवान ने कोई औषधि नही ली। यद्यपि वे अपने ज्ञान से जानते थे कि मेरे रोग कि अमुक औषधि है। और उसे लेने से रोग शान्त हो जायगा। पर वे तो निश्चय मार्गावलम्बी थे। मेढिया ग्राम की रहनेवाली रेवती बाई और जयन्ती बाई दोनो सगी बहिने थीं। जयन्ती का विवाह समीपवर्ती दूसरे गाव मे हुआ था। एकवार वह अपने ग्राम से मेढिया ग्राम मे होती हुई भगवान के दर्शनार्थ गई। भगवान के शरीर की निर्बल दशा देखकर उसे अत्यन्त दु ख हुआ। भाई, जो धर्मानुरागी होते है, उन्हे अपने गुरुजनो की दु खित दशा देखकर दु ख होता ही है। वह सोचने लगी कि हमारे धर्माचार्य की ऐसी दशा क्यो है ? यदि मैं यहा पर ठहरूगी तो भगवान् उपदेश देंगे, इससे उन्हे और भी अधिक कष्ट होगा। अत वह वहा से दर्शन करके ही वापिस लौटी। जब वह मेढिया-ग्राम के मध्य मे होकर जा रही थी तो रेवतीवाई की दासियो ने उसके रथ को देख लिया। उन दासियो ने जयन्ती बाई से कहा कि आप रेवतीबाई से विना मिले ही कैसे जा रही है। जयन्ती ने कहा—अभी मुझे ठहरने का अवसर नही है, अत्यावश्यक कार्यवश मुझे जल्दी घर पहुचना है। परन्तु वे दासिया नही मानी, और जयन्ती बाई को आग्रह पूर्वक रेवती बाई के पास लिवाले गईं। तव रेवती ने पूछा—वहिन, सासरा और पीहर दोनो सर्वप्रकार से सुखी है,

सकते हैं ? परन्तु फिर भी ये अपने को पडित कहनेवाले मूर्ख उन शब्दो का खुले शब्दो मे मांस अर्थ करके मास का प्रचार कर रहे हैं। इस प्रकार का अर्थ प्रकट करने वाली उक्त पुस्तक को राजस्थान सरकार ने अपने पाठ्यक्रम मे स्वीकृत कर ली है। क्योकि वह जैनियो के नाम से मास का प्रचार करना चाहती है। जब लोग ऐसी पुस्तको को पढेंगे तो कहेगे कि जैन शास्त्रो के अनुसार मास खाना कल्पता है। इस प्रकार की पुस्तको से मास का ही प्रचार होगा। क्योकि पढने वाले इन्ही पुस्तको की दुहाई देकर खुले रूप से मास खावेंगे।

भाइयो, आज आपकी समाज के ही पडित कहलाने वाले व्यक्तियो के द्वारा ऐसी पुस्तको का और ऐसे भ्रष्ट इतिहास का निर्माण हो रहा है। और इस ओर आप लोगो का रत्ती भर भी ध्यान नही है। आप लोग रात-दिन केवल धन कमाने मे ही लग रहे हैं और इसका विरोध नही कर रहे है ? यदि सरकार से इसके लिए लडा जाय, विरोध प्रकट किया जाय और आन्दोलन छेडा जाय कि जो कुछ अमुक व्यक्ति ने अमुक पुस्तक मे मास खाने के विषय मे लिखा है, वह एक दम असत्य है। इस प्रकार सरकार को समझा करके उसके द्वारा ऐसी पुस्तकें पाठ्यक्रम से हटायी जा सकती है। पर भाई जब स्थानकवासी विद्वान् ही ऐसी बातें लिख रहे हैं, तब उसकेलिए क्या किया जावे। मेरी राय मे दो काम एक साथ ही करना चाहिए। पहिला तो यह कि जिस सस्था से यह पुस्तक प्रकाशित हुई है, उस पर सारी समाज दबाव डालकर उक्त अश को उस पुस्तक से निकाल दे। और यदि वह निकालने को तैयार न हो तो आन्दोलन करके सरकार द्वारा वह पुस्तक कोर्स से निकलवा दी जावे। यह कार्य किसी एक दो व्यक्ति का नही है, किन्तु सारी समाज का है। जब सारा समाज एक होकर उक्त दोनो काम करेगी, तभी इसका सशोधन हो सकेगा।

### शास्त्रीय शब्दो का भाव

आप लोग पूछेंगे कि शास्त्रो मे 'कुक्कुडमसे, कपोयमसे' जैसे शब्दो का प्रयोग ही क्यो किया गया ? तो भाई, इसका उत्तर यह है कि ऐसी बोलने की परम्परा रही है, सो शास्त्रकारो ने वैसा लिख दिया। देखो—सीता, हनुमान,

पाक बना हुआ रखा है, वह ले आओ और उसी से तुम हाथ फरस लो। क्योकि मनुष्य और घोडे के शरीर की तासीर एक सी है। अत जो औषधि उनके लिए लाभ कारक है, वह मनुष्य के लिए भी लाभ कारक होती है। यह सुनकर रेवती ने बिजोरापाक साधु को बहरा दिया। वे उसे ले गये और भगवान ने उसे सेवन किया और उनका रोग दूर हो गया।

भगवती सूत्र मे यह सारा वर्णन आया है। वहा कोलापाक, बिजोरापाक आदि के लिए **'कूकडामंसे, कवोयामंसे'** आदि शब्द आये है। जिन लोगो ने गुरु मुख से वाचना नही ली है, वे तो इन शब्दो को पकडकर कहेगे कि कूकडे का मास और कबूतर का मास यह इन शब्दो का अर्थ है। परन्तु यथार्थ मे कूकडा का अर्थ बिजोरापाक है और कपोया मास का अर्थ कूष्माण्ड या कोलापाक है। परन्तु गुरुजनो से अर्थ की वाचना न लेने वाला व्यक्ति शब्दो को पकडकर अर्थ का अनर्थ कर देता है। यदि शरीर-विज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो जिस व्यक्ति को रक्तातिसार, या साधारण भी दस्तो की बीमारी है, तो उसे किसी भी प्रकार का मास खाना मास-भक्षी के लिए भी वैद्य नही बतायगा। क्योकि दस्तो की शिकायत वाला व्यक्ति यदि मास खायगा, तो वह बिना मौत के ही मरेगा। आज भी दस्तो की बीमारी वाले के लिए वैद्य लोग, कोलापाक, बिजोरापाक या बेल आदि का मुरब्बा लेने की सलाह देते है। इस प्रकार अतिसार के रोगी के लिए मास का लेना या बताना किसी भी प्रकार से युक्ति या शास्त्र-सगत नही है और फिर जैन साधुओ और उसमे भी भगवान महावीर जैसे तीर्थंकर धर्म-नायक के लिए तो यह कथन सर्वथा ही लोक-विरुद्ध और धर्म-विरुद्ध है। परन्तु जो गुरु-मुख से वाचना नही लिए हुए है और आधे पडित है—अर्थशून्य केवल शब्द मात्र के ज्ञाता हैं, वे तो शास्त्रो का यही आगम-प्रतिकूल एव मान्यताबाह्य ही अर्थ लगाकर शास्त्रो की दुहाई देकर महावीर जैसे महापुरुषो तक का अवर्णवाद करने से नही डरते हैं। अरे, जैनी का बच्चा भी यदि मास को देख लेता है, तो घृणा से उसका खाया हुआ अन्न भी निकल जाता है। जब एक साधारण जैन को भी मास के देखने से इतनी ग्लानि होती है, तब उसके गुरु और धर्मोपदेशक गुरु और भगवान् तो ले ही कैसे

साधु लोग तो इनका प्रचार नही होने देंगे, तव ये लोग उनको भी गिराने का प्रयत्न करेंगे। वे लोग सोचते है कि जव सारी समाज मे इन निन्द्य वस्तुओ का प्रचार हो जायगा, तव साधु लोग स्वय ही गिर जावेंगे। इसलिए भाइयो, मैं प्रतिदिन आप लोगो को सावधान कर रहा हू और समझा रहा हू। किन्तु आप लोगो का ध्यान इस ओर नही जा रहा है। क्योकि आप लोगो को भय है कि इस काम मे पैसे खर्च करना पडेंगे। परन्तु भाई, यदि ऐसे काम मे खर्च नही करोगे, तो किस काम मे करोगे? व्यर्थ के कार्यो मे तो आप लोग हजारो रुपये खर्च कर रहे हो? पर धर्म की रक्षा करनेवाले ऐसे सार्थक कार्यों मे खर्च करने से हाथ सिकोडते हो? यदि आप लोग अपनी सन्तान को पाप से वचाना चाहते है, तो इसका एकमात्र उपाय यही है कि आप लोग उक्त पुस्तक का विरोध करो। दूसरे अपने वच्चो को धार्मिक सस्कार देते रहो। उन्हे घर पर या धार्मिकशाला मे भेज कर धार्मिक ज्ञान अवश्य देते-दिलाते रहो। अभी तो आपके वच्चे विगडे हुए नही हैं, किन्तु दुनिया का वातावरण ऐसा हो रहा है, जिससे वचाने के लिए धार्मिक शिक्षण देना अत्यावश्यक हो गया है। समाज मे जो ऐसे धर्मविघातक लोग पैदा हो रहे हैं, उनका मुख तोड उत्तर दो और उनके धर्म-घातक प्रचार का विरोध करो और उनसे स्पष्ट कह दो कि हम आपको जैन मानने के लिए तैयार नही है।

देखो, आचार्य तुलसीजी ने सीता के लिए दूसरे पात्र के द्वारा एक लाछित शब्द का प्रयोग करादिया तो रायपुर (मध्यप्रदेश) मे कितना वडा काड हो गया। आखिर उन्हे वहा से रवाना ही होना पडा। यह हिन्दू सम्प्रदाय के सगठन का फल था। यदि आप लोग भी सगठन करके उस पुस्तक के उक्त शब्दो का विरोध करेंगे तो लेखक को वे शब्द निकालना ही पडेंगे।

भाई, पहिले पाठशालाओ मे पढने को जाते थे, तो लडके आपस मे वताने के लिए सकेताक्षर कर रखते थे—'राम पार्वती सीता महादेव'। जहा पर तीनो का काम पडता तो वे 'राम' वोल देते। सीता का काम पडता तो महादेव और बुद्धि का काम पडता तो पार्वती वोल देते थे। इससे मास्टर को पता नही

राम और दशरथ ये सब विशिष्ट व्यक्तियो के नाम हैं। किन्तु वैद्यक मे इन सब नामो की औषधिया है। आप पसारी के यहा जाकर मागो कि 'सीता' दो। वह तुरन्त मिश्री दे देगा। सीता का अर्थ है शीतल। क्योकि वह खाने पर शीतलता प्राप्त होती है। इसी प्रकार मिश्री को 'मच्छडी' भी कहा जाता है। इस शब्द का अर्थ है मलछडी, अर्थात् जिसमे से मल दूर हो गया है। क्योकि शक्कर को गला कर और उसमे दूध आदि के छीटे देकर उसका मैल दूर करके ही मिश्री बनाई जाती है। इसी प्रकार के हजारो शब्द कोष मे पाये जाते है। और मास किसे कहते है ? किसी वस्तु की भीतर की गिरी को बीज आदि से रहित दल भाग को मास कहा जाता है। जैसे अभी उपर्युक्त प्रकरण मे कहा गया कि हड्डी को बाहिर निकाल देना। वहा पर हड्डी से अभिप्राय कडी गुठली आदि से है। कितने ही फलादि मे काटे भी ऊपर होते है, जैसे— करेला और बैंगन आदि। गवारपाठे मे भी काटे होते है। यदि शाक बनाते समय ये रह जावे तो उसकेलिए कहा गया है कि खाते समय उन काटो को निकाल देना चाहिए। परन्तु अपने को विद्वान् माननेवाले इन लोगो ने उन शब्दो का अर्थ लगा दिया कि हड्डी, मास, काटे आदि। भाई, जब अपने घर मे ऐसे सपूत पैदा हो जाते हैं, तब क्या किया जावे।

मैंने जो बात अभी कही है, उसे सुन करके दूसरे कान से बाहिर निकाल नही देना है, परन्तु कुछ विचारक एव प्रभावक व्यक्तियो की एक समिति बना करके उक्त पुस्तक का विरोध करके उसे कोर्स से बाहिर निकलवाना है।

इसी प्रकार उन लोगो ने लिखा है कि यदि साधु ऐच्छिक धन रखना चाहे तो अपने पास रख सकता है, ब्रह्मचर्य पालना चाहे तो पाले, अन्यथा न पाले, यह भी उसकी इच्छा पर निर्भर है। वाहनो पर सवारी कर सकता है, लोच भी करना चाहे तो करे और न करना चाहे तो न करे। नल का पानी भी काम मे ले सकता है। इस प्रकार आगम और परम्परा के विरुद्ध अनेक बाते लिखी गई हैं। इसका मतलब स्पष्ट रूप से समाज को शिथिलाचारी और मासाहारी-बनाना है। ये लोग तो नाम मात्र के जैनी है। वास्तव मे तो ये अमेरिका, रूस और चीन के एजेन्ट हैं और मद्य-मास का प्रचार कर रहे हैं।

## १७ | जीवन की सार्थकता

भाइयो, 'जीवन' यह एक शब्द है। इसमे तीन अक्षर हैं। हमे यदि अपने जीवन को वास्तविक अर्थ मे जीवन बनाना है, तो इस शब्द के परमार्थ को पहिले समझना होगा। 'जीवन' शब्द मे पहिला अक्षर है—'जी, दूसरा है 'व' और अन्तिम है 'न'। 'जी' का अर्थ है जीत। 'व' का अर्थ है वमन और 'न' का अर्थ है नवीनता। यदि हम इन तीनो बातो को जीवन मे स्वीकार करलें, तो जीवन यथार्थ मे जीवन बन जायगा।

**जीवन की व्याख्या**

अभी आपके सामने मुनिजी ने बताया कि एकेन्द्रिय का क्या जीवन नही है? आखिर वे भी तो जीवित रहते है। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, और असज्ञी पचेन्द्रिय जीव भी जीवित रहते हैं। नारकी की आयु दस हजार वर्ष से कम नही है और देवलोक मे तेतीस सागरोपम से अधिक नही है। और यदि निगोद मे जीव चला गया तो पल्योपम और सागरोपम का पता नही है। वहा तो अनन्त काल तक रहना पडता है। उनके जीवन की क्या बात कहें? परन्तु जीवन वही है जिसमे जीत, वमन और नवीनता पाई जावे।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि जीतना किसको? क्या शत्रु को? नही भाई, शत्रु को जीतने के पूर्व हमे अपनी आत्मा को जीतना होगा। यदि हम

चलता था। व्यापार मे भी ऐसे सकेताक्षर चलते हैं कि तार देने और लेने वाले के अतिरिक्त तीसरा व्यक्ति नही जान पाता है। पहिले हुण्डी की लिखावट भी ऐसी होती थी कि यदि कोई एक स्थान पर विन्दु आदि वढावे तो दूसरी जगह पकडा जावे।

इसीप्रकार शास्त्रो मे भी कुछ सकेत रहते है, जिनका ज्ञान गुरु-मुख से ही हो सकता है, अन्यथा नही हो सकता। चाणोदवाले गुरा साहव के यहा एक गज की लादी है। उस पर एक ऐसी लिपि लिखी हुई है कि वह विलायत जाकर के वापिस आ गई, परन्तु अभी तक भी वह पढी नही जा सकी है। इसका कारण यही है कि उसको पढने वाला और गुरु मुख से अर्थ का ज्ञाता कोई व्यक्ति आज नही है।

भाई, सर्व कथन का सार यही है कि शास्त्रो मे आये हुए सकेतो को समझना और गुरु-परम्परा के अनुसार उनका अर्थ करना चाहिए। समाज मे जो विवेकी और विद्वान् है, उन्हे भी इस अवसर पर आगे आना चाहिए और ऐसे साहित्य का प्रचार रोकना चाहिए, जिससे की धर्म की और धर्माचार्यों की बदनामी होती है। सच्चे बुद्धिवादी तो वे ही है जो बुद्धि का सदुपयोग करें। जो उसका दुरुपयोग करते है, उन्हे बुद्धिवादी जैन नही माना जा सकता।

वि० स० २०२७, आसोज वदि–१५

सिंहपोल, जोधपुर

है कि अमुक पुरुष ने अपना उत्थान कैसे किया ! और अमुक का क्यो हुआ ? इस प्रकार जो व्यक्ति महापुरुषो के चरित को जितनी गहराई से और मनोयोग से अध्ययन करेगा, वह उतना ही शीघ्र अपना उत्थान करेगा और उसी का नाम ससार मे अमर रहेगा।

आज पी-एच० डी० या डी० लिट् करने वाले को डाक्टर या आचार्य की पदवी कब मिलती है ? जबकि वह अपने अभीष्ट विषय का गम्भीरता से अध्ययन करता है, हजारो ग्रन्थो को पढता हैं और फिर उन सबका सार लेकर हजार-पन्द्रह सौ पृष्ठ का महानिबन्ध लिखता है। वह विश्वविद्यालयो के अधिकारी परीक्षको के सामने रखा जाता है। वे उसका भली-भाति परीक्षण करते हैं, तब उसके लेखक को डॉक्टर या आचार्य पदवी दी जाती है। इस प्रकार शास्त्रो के अनुसन्धान मे जिनका समय व्यतीत होता है, वे पुरूप भी ससार मे यश और धन दोनो को पाकर अपना जीवन सफल करते हैं।

तीसरी बात विनोद की है। चित्त को प्रसन्न करनेवाले कार्य को विनोद कहते हैं। विनोद के मार्ग विचित्र प्रकार के है। कोई खाने-पीने मे ही आनन्द मानता है, कोई खेलने-कूदने मे ही आनन्द मानता है और कोई नाटक-सिनेमा देखने मे ही आनन्द मानता है। इसीलिए कहा जाता है कि 'कोऊ काहू मे मगन, कोऊ काहू मे मगन'। किन्तु सच्चा विनोद तो वह है, जिसके द्वारा मनमे उत्पन्न हुई भ्रान्तिया दूर हो, शारीरिक थकान दूर हो और दिल व दिमाग ताजा हो जाय।

इस प्रकार बुद्धिमान् पुरुषो का समय तो काव्य-प्रणयन, शास्त्र-चिन्तन-मनन एव मनोरजन से व्यतीत होता है। किन्तु जो मूर्ख होते हैं, उनका समय नाना प्रकार के व्यसनो मे बीतता है। कोई शराब-भाग आदि पीकर के आनन्द मानते हैं और बेहोश पडे रहते हैं। कोई बीडी-सिगरेट पीने मे और उसका धुआ उडाने मे मस्त रहते हैं और कितने ही पुरुप शिकार खेलने मे, चोरी करने मे, वेश्या-सेवन और परस्त्री-गमन करने मे ही जीवन की सार्थकता मानते हैं। इन व्यसनो से यदि समय मिलता है, तो नीद लेकर के समय बिताते हैं। और यदि व्यसन और निद्रा से

और आप अपनी आत्मा को जीत लेंगे तो बाहिरी शत्रु तो स्वय ही धराशायी हो जावेगे। आपकी स्वय की आत्मा स्वतन्त्र नही है और जो कोई कार्य आप कर रहे है, वे सबके सब आप अपनी आत्मा के प्रतिकूल कर रहे हैं। यह जीत नही, बल्कि हार है। जीत तो तभी समझी जायगी, जब कि हमारी आत्मा की जो वस्तुए है, उन्हे हम अपने अधिकार मे ले लेवे।

एक दुकानदार की जीत कब है ? जबकि वह अपने ग्राहको को प्रसन्न रखे अपनी पूजी के अनुसार व्यापार करे, अपने माल की सभाल रखे, उधारी को वसूल करे और व्यवहार को भलीभाति समझकर उसका निर्वाह करे। मेरे सामने वाला, या पडौसी दुकानदार क्या करता है, इसका यदि वह ध्यान नही रखता है, तो वह दुकानदार हार जाता है। इसलिए दुकानदार को अपनी दुकान का ध्यान सर्वप्रथम रखना आवश्यक है। जिसने अपनी दुकान का पूरा प्रबन्ध अपने हाथ मे ले रखा है, उसे किसी दूसरे का मुखापेक्षी नही होना पडता है। वह जानता है कि मेरा काम मेरे हाथ मे है, मुझे दूसरे से क्या लेना-देना है ? दूसरा हजार लाख या करोड कमाता या गवाता है, उससे मुझे क्या नफा या नुकसान है। मुझे तो मेरे नफा-नुकसान से प्रयोजन है। इस प्रकार जो अपनी दुकान का ध्यान रखता है, वह जीत मे है, हार मे नही है।

इसी प्रकार जो अपनी आत्मा के काम मे सावधान है और इधर-उधर के व्यर्थ के कामो मे ध्यान नही देते है उनकी ही जीत ससार मे होती है।

ससार मे दो प्रकार के मनुष्य होते है—बुद्धिमान् और मूर्ख। इन दोनो का जीवन किस प्रकार व्यतीत होता है ? इसका उत्तर नीतिकार देते है—

**काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।**
**व्यसनेन च मूर्खाणा निद्रया कलहेन वा ॥**

जो बुद्धिमान् पुरुष होते हैं, उनका समय काव्य के निर्माण करने मे, पठन-पाठन मे और उसके रस का पान करने मे बीतता है। यदि उसकी प्रवृत्ति या लगन प्रभु के वचन सुनने मे और उसके चिन्तन-मनन मे लगे और उससे फली-भूत होने वाले तथ्यो को हृदय मे धारण करता जाय, तो उसके आनन्द का क्या कहना है ? ऐसा व्यक्ति सदा महापुरुषो के चरितो की ओर ध्यान रखता

कैसे कर सकते हैं ? आपको जो सुमार्ग प्रतीत हो, उस पर चलो, नियम से सफलता प्राप्त होगी। आनेवाले कटको को साहस के साथ दूर फेंकते जाओ और आगे बढते जाओ, यही जीतने का रहस्य है।

भगवान महावीर ने देखा कि आज सारे विश्व मे हिंसा का ताण्डव नृत्य हो रहा है, धर्म के नाम पर यज्ञो मे मूक पशुओ की गर्दनें काटी जा रही हैं और खून की नदिया बहाई जा रही हैं और चारो ओर शोषण से सत्रस्त जनता 'त्राहि त्राहि' की करुण पुकार कर रही है, तब उन्होंने उस अनाचार को दूर करने का सकल्प किया। भाई, सोचो—कि क्या वे अनाचार तलवार-भालो के बल पर या दूसरे शस्त्रास्त्रो से, या किसी जादू-टोना से समाप्त किये जा सकते थे ? कभी नही। अत उन्होंने निर्णय किया कि इन अनाचारो को जीतने के लिए किसी भी प्रकार के भौतिक शस्त्रास्त्रो की आवश्यकता नही है। मुझे तो पहिले अपने आपको जीतना है। जब मैं अपने आपको जीत लूगा तब ये अनाचार अपने आप दूर हो जावेंगे। अपने आपको जीतने के लिए वे घर त्यागकर प्रव्रजित हुए और सिद्धार्थ महाराज के मित्र एक सन्यासी के आग्रह पर उसके आश्रम मे उन्होने चातुर्मास किया। उस वर्ष पानी नही बरसने से सर्वत्र भूमि सूखी पडी थी। जानवरो को चरने के लिए जगलो मे घास नही उगा था। अत भगवान महावीर जिस घास की कुटी मे ठहरे थे, वे भूखे पशु आ-आकर उस कुटीका घास खाने लगे। इस प्रकार दो चार दिन मे उस झोपडी का सफाया हो गया। यह देखकर वह सन्यासी बोला—अरे, तुझसे तो अपनी झोपडी भी नही रखायी जाती है। तू ऐसा अकर्मण्य है, तभी तेरे से राज्य नही सभला और इसीलिए घर-बार छोडकर साधु बन गया है। तेरे जैसे अकर्मण्य की यहाँ आवश्यकता नही है। अब तू यहा से चला जा। सन्यासी की ऐसी भर्त्सना सुनकर भी उन्होने मनमे कोई विषाद नही किया, न उसको बुरा ही कहा। किन्तु वहा से चुपचाप चल दिये। भाई, बताओ—भगवान् ने योगी के उस दुर्व्यवहार से हार पाई, या विजय पाई ? वे चाहते तो सन्यासी से कह सकते थे कि तुमने मुझे ठहराया क्यो ? मैं तो आत्म-साधना के लिए निकला हू, न कि किसी की झोपडी रखाने के लिए। मगर भगवान

अवकाश मिल गया तो दूसरो के साथ कलह करके अपना समय बितायेंगे। किसी की निन्दा और किसी की प्रशसा करके वे आपस मे एक दूसरे का लडावेंगे और उसमे ही आनन्द का अनुभव करेंगे।

**'जीत' कैसे, किस पर ?**

हा भाई, मैं कह रहा था कि इस प्रकार मूर्खों का, अज्ञानियो का जीवन व्यसन करने, नीद लेने और लडाई-झगडे मे व्यतीत होता है। ऐसा जीवन भी क्या जीवन कहा जा सकता है। जीवन शब्द का पहिला अक्षर 'जी' हमे सकेत करता है कि अपनी इन खोटी प्रवृत्तियो पर विजय प्राप्त करो, तभी तुम्हारा जीवन सार्थक होगा। मनुष्य इन खोटी प्रवृत्तियो पर विजय कैसे प्राप्त कर सकता है ? इसको वश मे करने के लिए आवश्यक है कि वह सर्वप्रथम अपने मन को जीते ? यदि हमने अपने मनको जीत लिया, तो शेप सब राग द्वेपादि भाव शत्रुओ को और वाहिरी खोटी प्रवृत्तियो को जीतना सहज मे सभव है। उत्तराध्ययन मे केशी-गौतम-सवाद मे कहा गया है कि—

**एगे जिए जिया पच, पच जिए जिया दस।**
**दसहा उ जिणित्ता णं सव्वसत्तू जिणामह ॥**

केशी के पूछने पर गौतमस्वामी कहते हैं कि एक मन को जीत लेने पर पाचो इन्द्रियो का जीतना सरल हो जाता है। और जव ये पाचो इन्द्रिया जीत ली जाती हैं तो चारो कपायो को भी जीत लिया जाता है। और जिसने मन, पाचो इन्द्रियो और चारो कपायो को इन दस को जीत लिया वह सर्व शत्रुओ को जीत लेता है।

भाइयो, अपने जीवन को सार्थक करने का पहिला गुरुमत्र है कि आतम-जयी बनो, मनोनिग्रही बनो और इन्द्रिय-विपयो तथा कपायो को जीतने वाले बनो। जब हमारा आत्मा अनन्तशक्ति का धारक है, तब हम हार खाने वाले क्यो बने ? हमे तो सदा विजयी ही बनना चाहिए। हमारे सामने कैसी भी परिस्थिति क्यो न आजाए, हमे आतम-बल प्रस्फुटित करके सर्वत्र विजय ही प्राप्त करना चाहिए। विजय पाने के लिए मनुष्य को मेधावी होना आवश्यक है। परिस्थिति मे हमे बुद्धि से विचार करना चाहिए कि इसका सामना हम

**नवीनता**

'जीवन' शब्द मे अन्तिम अक्षर 'न' है। इसका अर्थ है नवीनता प्राप्त करना। हमारी अवस्था ज्यो-ज्यो बढती जाये, त्यो-त्यो हममे नवीनता आनी चाहिए। वस्त्र या आभूषण नवीन-नवीन पहिन कर शरीर को सजाने का नाम नवीनता नही है। किन्तु आत्म-परिणामो मे नवीन-नवीन विशुद्धि को प्राप्त करना ही सच्ची नवीनता है। हम दिन प्रति-दिन दूसरो का उपकार करें, रोगियो की सेवा करें, उन्हें औपधि दान करे, भयभीतो को निर्भय करें, उन अशरणो को शरण दें और भूखो को भोजन दे, यह नवीनता है। जहा पर अशिक्षा का प्रचार अधिक है, बालको को ज्ञान प्राप्ति का कोई साधन नही है, वहां पर पाठशालाएं और विद्यालय खुलावे, असमर्थ बालको को अमूल्य पुस्तकादि देवें और ज्ञान दान करें, तथा स्वय भी ज्ञानाभ्यास करके नवीन-नवीन धर्म के रहस्यो को हृदयगम करें। इस प्रकार की नवीनता लाने पर ही जीवन की सार्थकता है।

कुछ लोग केवल धर्म की साधना करके ही अपने जीवन को सार्थक या कृतार्थ मानते हैं। कुछ लोग यश पैदा करने वाले कार्यों को करके ही अपने जीवन को कृतार्थ मानते हैं और कोई लोग आनन्द से सुखपूर्वक जीवन-यापन करके अपने जीवन को कृतार्थ मानते हैं। कुछ लोग धर्म और यश के कार्य करके जीवन को सफल मानते है, कोई लोग धर्म और सुख से जीवन बिताने मे जीवन की सार्थकता समझते हैं। कुछ लोग यशोपार्जन करने और आनन्द से रहने मे ही अपने को कृत-कृत्य मानते हैं। ये सब जीवन की सार्थकता के एकागी दृष्टिकोण हैं। किन्तु एक विद्वान का कहना है कि गृहस्थ-जीवन की सार्थकता तो धर्म, यश और सुख इन तीनो की साधना करने पर ही है। वे कहते है—

> **धर्मं यश. शर्म च सेवमान।., केऽप्येकशो जन्मविदु. कृतार्थम्।**
> **अन्ये द्विशो विद्म वय त्वमोघान्यहानि यान्ति त्रयसेवयैव ॥**

अर्थात् कितने ही लोग धर्म, यश और सुख, इन तीनो मे से एक-एक के सेवन से अपने जन्म को कृतार्थ मानते हैं। कितने ही लोग इन तीनो मे से

ने कुछ भी कहना उचित नही समझा। वहा से चलने पर लोगो ने पूछा—भगवन्, आप वहा से क्यो चले आये ? भगवान ने कहा—भाई, मेरा मार्ग तो यही है। जहा मेरा विश्वास हो और जो स्थान मेरी आत्म-साधना के अनुकूल हो, मैं तो वही रहता हू। जहा मैं अविश्वास देखू, या स्थान आत्म-साधना के प्रतिकूल देखू, वहा एक क्षण भर भी मैं नही रहता हू। इस प्रकार जब भगवान् उस सन्यासी के आश्रय से विना कुछ कहे ही चले गये, तब उसे विचार आया कि मैंने महावीर को यहा से चले जाने को कहकर बडी भूल की। वे मेरे मित्र के पुत्र थे। मुझे उनका ऐसा अपमान नही करना चाहिए था ? अब आप लोग बतावे कि यह महावीर की जीत है, या हार ? भाई, यह उनकी बडी भारी जीत हुई, क्योकि उनके मौन-गमन से उस सन्यासी को पश्चात्ताप करना पडा। तलवार के साथ तलवार से वार करके, या लाठी के साथ लाठी का प्रहार करके जीतने को जीत नही कहते हैं। यह तो जीतने पर भी हार है, क्योकि ऐसी जीत से तो वैर-विरोध शान्त होने के स्थान पर और भी अधिक बढता है। अत भगवान ने वह मार्ग अपनाया, जिससे कि भूल करने वाला मनुष्य विना कहे ही अपनी भूल को स्वीकार कर पश्चात्ताप करे। जो भगवान के भक्त है, उन्हे पहिले अपने आपको जीतना सीखना चाहिए।

### 'वमन' का रहस्य

'जीवन' शब्द मे दूसरा अक्षर 'व' है। इसका अर्थ है वमन करना। यदि भूल से कोई मनुष्य विप खा जाता है तो उसको स्वस्थ करने के लिए वैद्य लोग वमन कराते है, जिससे वह विप निकल जाय। यदि फिर भी विप के भीतर रहने की आशका रहती है तो विरेचन कराकर उसका विप वाहिर निकाला जाता है। इसीप्रकार हम प्रति समय दूसरो के साथ राग-द्वेप करके कपायरूपी विप अपने भीतर एकत्र कर रहे हैं। आत्म-विजय प्राप्त करने के लिए इस राग-द्वेप या कपायरूपी विप को वाहिर निकलाना आवश्यक है। शरीर मे यदि द्रव्य विप रह जावे, तो वह शरीर का सत्यानाश कर देता है। इसीप्रकार आत्मा के भीतर भरे हुए ये रागद्वेपादि भाव विप आत्मा का सत्यानाश कर रहे हैं। इसलिए इनका वाहिर निकालना ही कल्याण कारक है।

वालो की कमी है। पचानेवालो की भी कमी नही, किन्तु उसका रस बनाने वालो की कमी है, रस बनाने वालो की कमी नही, किन्तु उसका रक्त, हड्डी और वीर्य बनाने वालो की कमी है। यदि आप इसप्रकार भोजन का अन्तिम फल जो वीर्य है, उसे प्राप्त करके उसे सुरक्षित रखेंगे तो आपका शरीर ही पुष्ट नही होगा, अपितु आत्मा भी पुष्ट होगा। जब शरीर पुष्ट होगा तो वचन मे भी प्रौढता आयगी और मन मे भी दृढ़ता आयेगी। जब तीनो मे दृढता आयेगी, तब आप स्वय लोह पुरुष बन जायेंगे। फिर किसी की ताकत नही, जो आपका कोई बाल भी बाका कर सके।

देखो वल्लभभाई पटेल को लोग लोहपुरुष कहा करते थे। इसका कारण यही था कि वे जिस बात को देश के लिए हितकारक समझते थे, उस पर दृढ़ रहते थे, उन्हे उनके निश्चय से कोई भी चल-विचल नही कर सकता था। आप लोग भी अपनी दृढता को बढाओ तो आप भी लोहपुरुप बन सकते हैं और सत्सग की वृद्धि करो तो स्वर्णपुरुष भी बन सकते हो। तभी आपसे जीवन की सार्थकता सिद्ध होगी।

वि० स० २०२७ असोज सुदि १
सिहपोल, जोधपुर

●●

किन्ही दो-दो का सेवन करने से जन्म की सार्थकता समझते है। किन्तु हम तो उन्ही जीवो का जीवन सार्थक समझते हैं, जो कि प्रतिदिन इन तीनो का ही सेवन करते हुए निर्दोष जीवन यापन करते है।

इस सबके कहने का अभिप्राय यही है कि प्रत्येक गृहस्थ पुरुप को प्रतिदिन धर्म के समय पर सामायिक, प्रतिक्रमण, एव व्रतादि का पालन करना चाहिए। अर्थोपार्जन के साथ दानादि देकर यश का भी उपार्जन करना चाहिए और इन सब कार्यो को करते हुए निराकुलता-रूप सच्चे सुख का भी उपयोग करना चाहिए तभी गृहस्थ जीवन की सार्थकता है।

साधु जीवन की सार्थकता का अभी पहिले वर्णन किया गया है कि अपने आपको जीते, विषय कषायो का वमन करे और प्रतिदिन अपनी परिणति मे नवीन-नवीन विशुद्धि लावे, तभी साधु जीवन की सार्थकता है और इन्ही तीनो का जितने भी अश मे गृहस्थ पालन कर सके, तो उतने ही अश मे उसके जीवन की सार्थकता है। जीवन की सार्थकता का यह शुभ मत्र 'जीवन' इस शब्द के भीतर ही भरा हुआ है।

### आदर्श जीवन

आज राम को हुए कितना समय बीत गया और पाडवो को भी हुए कितना ही काल हो गया है। परन्तु जब रामायण वा महाभारत सुनाया जाता है, तब तब श्रोता लोग ऐसा अनुभव करने लगते है कि मानो वे महापुरुष हमारे सामने ही खड़े हो। ऐसा क्यो अनुभव होता है? इसीलिए कि उन्होने हमारे सामने बडे उच्च आदर्श रखे। उनसे उनकी कीर्ति दिग्देशान्तर मे फैली और आज भी वह अपनी सुगन्धि से सबको सुगन्धित कर रही है। उनके उत्तम आचरण की ज्योति आज भी प्रज्वलित है, उसे कोई मन्द नही कर सकता। यही जीवन का सार है।

भाइयो, आपके सामने जीवन की सार्थकता की यह छोटी-सी व्याख्या की गई है। इसे यदि आप अपने हृदय मे धारण करेंगे तो इससे नवीन-नवीन ही रहस्य अपने आप आपके सामने प्रकट होते जावेंगे। अनाज की कमी नही है, किन्तु उसको खानेवालो की कमी है। खानेवालो की कमी नही, किन्तु उसको पचाने

समय आत्मा के साथ रहेगा। जिस कर्म की जितनी स्थिति पडती है, उसके अनुसार ही उसका अबाधाकाल पडता है। बधा हुआ कर्म जब तक उदय मे नही आता है, अर्थात् फल देना प्रारम्भ नही करता है, तब तक के समय को अबाधाकाल कहते हैं। इस अबाधाकाल के पश्चात् उसके फल देने को उदय कहते हैं। इस प्रकार पहिले कर्म बधता है, फिर वह सत्ता मे पडा रहता है। पीछे अबाधाकाल बीतने पर उदय मे आता है। इस उदयकाल मे जो कर्मों का फल मिलता है, उसे ही लोग दैव, भाग्य, अदृष्ट, तगदीर आदि नामो से पुकारने लगते हैं। यहा पर यह ज्ञातव्य है कि पूर्वकाल मे सचित किये हुए कर्म को ही लोग दैव कहते हैं। जैसा कि कहा है—

'पूर्वजन्मकृत कर्म तद्दैवमिदमुच्यते।

अर्थात् जो पूर्व-जन्म मे किया हुआ कर्म है, वही यहा पर दैव कहा जाता है। इसी दैव या उदयागत कर्म को व्युत्पति कर्म भी कहा जाता है।

**पाप कर्म और पुण्य कर्म**

मनुष्य के भाव कभी अच्छे और कभी बुरे होते रहते हैं। जव मन-वचन-काया की क्रिया अच्छी या शुभ होती है, तब वह पुण्य कर्म का बन्ध करता है और जब मन-वचन-काया की क्रिया बुरी या अशुभ होती है, तब पापकर्म का वन्ध होता है। जैसा कि कहा है—

**शुभ. पुण्यस्य अशुभः पापस्य।**

शुभभाव पुण्यबन्ध का कारण है और अशुभभाव पापवन्धन का कारण है। प्रत्येक प्राणी की मनोवृत्ति, वचन-प्रवृत्ति और काय की क्रिया सदा वद-लती रहती है। जब तक अच्छी परिणति होगी, तव तक पुण्यकर्म बधेगा और जब बुरी परिणति होगी, तब पापकर्म बधेगा। अब ये पुण्य और पाप कर्म जिस क्रम से बधते हैं, उसी क्रम से उदय मे भी आते हैं। यहा इतना ध्यान रहे कि जिस-जिस कर्म का अबाधाकाल पूर्ण होता जाता है, वह-वह कर्म उदय मे आता जाता है। इस प्रकार इन पुण्य-पाप कर्मों का उदय धूप-छाया, अथवा दिन-रात के समान सदा होता ही रहता है।

आप लोग निरन्तर सन्तो के पास आ रहे है और व्याख्यान भी सुन रहे

# १८ कर्म-योग

### कर्म की दार्शनिक व्याख्या

भाइयो, अभी आपके सामने 'कर्म योग' की बात आई। यह कर्मयोग क्या है, यह जानना आवश्यक है। मनुष्य प्रति समय जो भले-बुरे कार्य करता है, उन कार्यों को कर्म कहते हैं। यह कर्म दो प्रकार का है—भावकर्म और द्रव्य-कर्म। आत्मा के भले-बुरे भावो के कारणभूत राग-द्वेष को भावकर्म कहते है। उन भावो से जो ज्ञानावरणादि पौद्गलिक कर्म—परमाणु आत्मा के भीतर आते हैं उन्हे द्रव्यकर्म कहते है। इस द्रव्यकर्म की सामान्यरूप से तीन दशाए होती है—बन्ध, सत्ता और उदय। आने वाले जो कर्म-परमाणु आत्मा के प्रदेशो के साथ एक-एक होकर बध जाते है, उसे बन्ध कहते हैं। जैसा कि तत्वार्थाधिगमसूत्र मे कहा—

**सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः।**

अर्थात् जब जीव कषाय से युक्त होता है, उस समय ,वह जिन कर्म के योग्य पुद्गलो को ग्रहण करता है, उसे बन्ध कहते हैं, इस प्रकार बधे हुए कर्म आत्मा मे प्रति समय सचित होते रहते है, इन सचित कर्मों को ही सत्त्व कहते हैं और जो प्रति समय नवीन-नवीन कर्म बधते रहते है, उन्हे प्रारब्ध कर्म कहते है। कर्मों के बधते समय ही उनकी स्थिति भी पड़ जाती है कि यह कर्म इतने

प्रारब्ध कहते हैं । जैसे कही बैठे हुए ऊपर दीवाल गिर पडी, अथवा आकाश से बिजली आ पडी, या किसी ने अकस्मात् आकर के गोली मार दी । ये सब अशुभ कार्य बिना ही इच्छा के हुए । इसीप्रकार किसी कार्य से आप भूमि को खोद रहे हैं और वहां पर मोहरो से भरा घडा मिल गया, या रास्ते चलते रुपयो से भरी थैली मिल गई, तो ये शुभ कार्य भी आपकी इच्छा के बिना ही अकस्मात् हो गये । दीवाल आदि के गिरने मे आपके पूर्वोपार्जित पापकर्म का उदय कारण है और मोहरो से भरे घडे आदि के मिलने मे पूर्वोपार्जित पुण्य कर्म का उदय कारण है । इन दोनो ही कार्यों मे आपकी इच्छा का कोई सम्बन्ध नही है । जब पुण्यवानी जोर मारती है, तब अच्छे कार्य स्वत, ही हो जाते हैं और जब दुर्भाग्य जोर मारता है, तब बुरे कार्य भी अपने आप हो जाते हैं ?

जो कार्य पर की इच्छा से करने पडते हैं, उन्हे परैच्छिक कर्म कहते हैं । जैसे आपकी इच्छा तो एक पैसा भी देने की नही है। किन्तु कोई डाकू पिस्तौल छाती पर तान कर आपसे कहता है कि तिजोरी मे जो कुछ रखा है, वह सब निकाल करके दे दो । अब आपकी इच्छा देने की नही है, तो भी प्राण बचाने के लिए उसे देना पड रहा है । यह परैच्छिक कर्म है । इसी प्रकार आप कही जा रहे हैं और किसी ने स्वय बुलाकर कहा—भाई, यह माल ले लो । आपने कहा—अभी मेरे पास पैसा नही है । उसने कहा—इसे बेचकर पीछे दे देना । आपने कहा—माल रखने को कोठा नही है । उसने कहा—मेरे ही कोठे मे रख देना । इस प्रकार उस व्यक्ति के आग्रह से आपने माल लेकर उसी के कोठे मे रख दिया । थोडे दिनो के बाद तेजी आ जाने से आपने उसे वेच दिया । उसकी रकम उसे दे दी और मुनाफा आपने रख लिया । यह परैच्छिक लाभ आपको प्राप्त हुआ ।

स्वैच्छिक लाभ उसे कहते हैं, जो कि अपनी पुण्यवानी से मिले । जैसे आपने विचार किया मि मैं हिंसा नही करूंगा, झूठ नही वोलूंगा, चोरी नही करूंगा, दूसरो की सहायता करूंगा, शील व्रत पालूंगा और दानादिक करूंगा। इस प्रकार आपने जो पुन्यवानी उपार्जन की, वह स्वैच्छिक है । इसी प्रकार

हैं। अब आपके मन मे आया कि दुनिया नाटक-सिनेमा देखने जाती है, तो हम भी चले। अभी तो आप सत्सग मे आकर प्रभु की वाणी सुनते थे और धर्म की आराधना भी करते थे। अब लहर आ गई नाटक-सिनेमा देखने की। और उस लहर से प्रभावित होकर आपने सिनेमा जाना प्रारम्भ कर दिया। वहा पर आपने एक नई फिल्म देखी। आप देख करके घर आ गये। पर फिल्म के दृश्य आपकी आखो के सामने घूम रहे है। यद्यपि वह फिल्म आपने प्रथमबार ही देखी है, तथापि उसके दृश्य दिमाग मे चक्कर काट रहे है और कई दिन तक वे चक्कर काटते रहेगे। परन्तु आपने व्याख्यान कितने बार सुना है, तो क्या वह इस प्रकार आपकी आँखो के सामने घूमता है, या दिमाग मे चक्कर लगाता है? थोडा-बहुत घूमता है, पर जितना असर फिल्म ने किया, उतना असर आपके ऊपर व्याख्यान ने नही किया है। इसका कारण क्या है? इसका कारण पापकर्म का तीव्र उदय है, जो पाप सचय करानेवाले कार्यों के देखने और सुनने मे आपकी प्रवृत्ति हो रही है। पुण्यकर्म का उदय मन्द है, अत पुण्य कार्यों के सम्पादन मे आपकी अभिरुचि मन्द हो रही है। अब आप विचारते है कि चलो—एक बार और नाटक-सिनेमा देखा जाय। इस प्रकार उधर का आकर्षण ज्यो-ज्यो बढता गया, त्यो-त्यो आपकी प्रवृत्ति भी नाटक-सिनेमाओ के देखने की ओर अधिक बढती गई। इस प्रकार पाँच-सात बार जाने के बाद अब आप सोचने लगे कि महाराज के व्याख्यान मे क्या है? यहा भी तो नयी-नयी शिक्षाएँ मिलती है। धीरे-धीरे यह विचार आने लगे कि नाटक-सिनेमा मे जितनी शिक्षाएँ मिलती है, उतनी व्याख्यान मे नही मिलती है। इन विचारो के आने पर व्याख्यान मे आना बिल्कुल बन्द हो गया और नाटक-सिनेमा मे जाने की प्रवृत्ति बढ गई। इस प्रकार पुण्य कर्म का नवीन बन्ध कम होने लगा और पापकर्म का बन्ध उत्तरोत्तर बढने लगा। इसी को प्रारब्ध कर्म कहते हैं। यह भी तीन प्रकार का है—अनैच्छिक, परैच्छिक और स्वैच्छिक।

**प्रारब्ध के तीन रूप**

हमारी बिना इच्छा के जो भले या बुरे कार्य होते है उन्हें अनैच्छिक

हुआ ? उसने कहा—देश मे दुष्काल पड गया, जिससे आमदनी के सब साधन बन्द हो गये। और भूखो मरने का समय आ गया। अत आपके पास आया हू। आप मुझे कोई ऐसा काम बताइये कि जिससे मेरा गुजारा भी होता जाय और मैं कुछ बचत करके घरवालो को भेजता रहू। यह सुनकर वह श्रीमन्त मित्र विचारने लगा कि यह बला कहा से आ गई ? उसकी बात सुनते ही उसका चेहरा उतर गया। किन्तु प्रकट मे बोला—आप आये सो बडी खुशी की बात है। परन्तु मेरे पास भी इस समय आमदनी के कोई अच्छे साधन नही हैं। मैं भी जिस किसी प्रकार से अपना काम चलाता हू ? पू जी भी अधिक नही है और आमदनी से खर्चा इन दिनो अधिक हो रहा है। उस सेठ की यह बात सुन कर इसने कहा—भाई जी, इस समय पचास रुपये दिला दो, तो घर को मनी-आर्डर भेज दू और कोई सौ-सवासौ रुपये मासिक की नौकरी लगवा दो तो अपना भी पेट भरता रहूगा और घर पर भी कुछ भेजता रहूगा। परन्तु सेठ ने रूखा-सा उत्तर देते हुए कहा—भाई, अभी तो तुम्हारे योग्य कोई काम नही है। इस विषय मे फिर सोचूगा। अभी तो आप नहायें-धोयें और भोजन करें। घर ले जाकर उसे निबटने को भेजा और रसोईघर मे जाकर अपनी स्त्री से कहा—देखो, मेरा एक धर्म-भाई देश से आया है, वह भोजन करेगा। यह सुनते ही वह बोली—मेरे से यह छाती-कूटा नही होगा, भले ही कोई आया हो ! सेठ बोला—अरी, जरा धीरे से बोल। कही वह सुन लेगा तो क्या कहेगा ? सेठानी बोली—मुझे इसकी क्या परवाह है ? सेठ ने कहा—अच्छा नही लगेगा। जब वह देश से आया है, तब भोजन तो कराना ही पडेगा। वह मुह बिगाडती हुई बोली, अच्छा—ले आओ उस यमदूत को। सेठ उसे भोजन कराने को ले गया तो उसे जिमाने के लिए सेठानी से कहा। मित्र से बोला—मैं दवा लेता हू, अत कुछ देर से भोजन करूगा, आप जीमिये। सेठानी ने जिस किसीप्रकार से उसे जिमा दिया। वह भी भूखा था, अत उसने चुपचाप भोजन कर लिया। परन्तु भोजन कराने मे प्रेम सेठ और सेठानी दोनो के ही भीतर नही था। किसी कवि ने कहा है—

अपनी इच्छा से बुद्धिपूर्वक जो हिंसा की जाती है, झूठ बोला जाता है, चोरी और जारी आदि कुकर्म किये जाते है, वे भी आपने अपनी इच्छा से किये। इस प्रकार आपका यह दुष्कर्मोपार्जन भी स्वैच्छिक है। इस प्रकार पुण्य कर्मोपार्जन मे भी आपकी इच्छा ही कारण रही और पाप कर्मोपार्जन मे भी आपकी इच्छा कारण रही।

लोग कहते हैं कि आजकल तो अमुक व्यक्ति का सितारा चमक रहा है, अमुक का भाग्य खूब फल रहा है और अमुक खूव कमाई मे है। भाई, यह सव उसके पूर्वोपार्जित पुण्यकर्म के उदय से हो रहा है। इसी प्रकार किसी व्यक्ति के ऊपर आपत्ति पर आपत्तियां आ रही है और घाटे पर घाटा आ रहा है, तो यह भी उसके पूर्वोपार्जित पापकर्म के उदय से हो रहा है। यद्यपि लाभ या हानि का मूल कारण पूर्वोपार्जित पुण्य या पाप कर्म है, तथापि जब मनुष्य बुद्धिपूर्वक भला या बुरा कार्य करता है, तब उसे जो हानि या लाभ होता है,उसे पुरुपार्थ-कृत माना जाता है। और बिना पुरुपार्थ के अकस्मात् जो हानि—लाभ होता है, उसे दैवकृत माना जाता है। जैसा कि कहा है—

**बुद्धि पूर्वव्यपेक्षायामिष्टानिष्ट स्वपौरुषात्।**
**अबुद्धि पूर्वापेक्षायामिष्टानिष्ट स्वदैवतः॥**

अर्थात् बुद्धिपूर्वक भला-बुरा कार्य करने पर जो इष्ट-अनिष्ट होता है, वह अपने पुरुषार्थ से हुआ जानना चाहिए। तथा अबुद्धिपूर्वक जो इष्ट-अनिष्ट होता है, वह दैव से किया हुआ जानना चाहिए।

### भाग्य और पुरुषार्थ

किसी गाव मे एक छोटा सा साहूकार रहता था। एक वर्ष दुष्काल पड गया। इससे उसका सारा व्यापार ठप्प हो गया। पुरानी उगाही भी वसूल नही हो सकी। आमदनी के सब साधन बन्द हो गये और खाने तक की कमी अनुभव होने लगी। उसने सोचा कि अमुक नगर मे मेरा मित्र रहता है और वह श्रीमन्त भी है, अत उसके पास चलना चाहिए। वह जिस किसी प्रकार मार्ग के अनेक कष्ट उठाकर वहा पहुचा। उसने जाते ही उस श्रीमन्त मित्र को रामा-सामा किया। उसने भी पास मे बिठाते हुए पूछा—कहो भाई, कैसे आना

काटने से और नीचे से खटमलो के काटने से वह एक मिनिट भी नही सो सका और जिस किसी प्रकार रात बिताई ।

प्रात काल वह जल्दी ही उठा और नगर के बाहिर नदी पर जाकर शौचादि से निवृत्त हो स्नान किया, भगवान के नाम की माला फेरी और जब वापिस नगर की ओर आ रहा था, तब उसके ही गाव का रहनेवाला एक दूसरा परिचित भाई मिल गया । वह साधारण परिस्थिति का था, पर इसे देखते ही अत्यन्त स्नेह से गले लिपटकर बोला—भाई जी, यहाँ कब आये ? कैसे आना हुआ ? तब इसने देश का सारा वृतान्त उससे कहा और साथ ही यह भी बताया कि मैं यहा पर अमुक सेठ के घर पर ठहरा हू । आजीविका की चिन्ता है, अब क्या करूँ ? कोई उपाय बताओ ! उसने अत्यन्त प्रेम से आश्वासन देते हुए कहा—भाई जी, आप किसी प्रकार की चिन्ता न करें । मेरे घर चलें और जो कुछ रूखा-सूखा मैं खाता हू, वह आप भी प्रेम से खावें और जो मैं काम करता हू, वह आप भी कीजिए । यह कहकर वह उसे अपने घर लिवा ले गया । घर पर जाकर उसने अपने साथ बिठाकर नाश्ता कराया । उसके बाद उसे पचास रुपये देकर कहा—लो भाई, सबसे पहिले तुम इन्हे मनीआर्डर से घर भेज दो । पीछे उस सेठ के घर से अपना सामान उठा लाओ और आकर मेरे साथ काम करो । आज से जो कुछ भी कमाई होगी, उसमे तुम्हारा आधा हिस्सा है । यह सुनकर उसका हृदय आनन्द से गद्गद हो गया । वह सोचने लगा—देखो, एक वह श्रीमन्त सेठ भी जन्म का बालमित्र और गाव का रहने वाला है । उसके यहा सब कुछ होते हुए भी उसके हृदय मे मानवता के दर्शन नही हुए । एक यह भी अपने ही गाव का निवासी है, जिसके घर कुछ भी नही है, झोपडी मे रह रहा है और रूखा-सूखा खाकर मेहनत-मजदूरी करके पेट भरता है । फिर भी कितने स्नेह से अपने घर लिवा लाया और बिना मागे ही घर भेजने के लिए रुपये दे रहा है और काम मे भी भागीदार बना रहा है । इसमे मानवता के दर्शन हो रहे हैं । बाहिरी धन-वैभव से मानवता नही प्राप्त होती ? मानवता तो ऐसे व्यक्तियो मे दृष्टिगोचर होती है, जो दूसरे के दु ख को अपना दु ख मानकर उसे सर्व प्रकार से आश्रय देवें ।

**नयन पदारथ नयन रस, नयनों-नयन मिलंत ।**
**अनजानिया से प्रीड़ी, पहिले नयन करंत ।।**

मनुष्य के भीतर का भाव आखो मे सबसे पहिले दिखाई पड जाता है कि इसके हृदय मे प्रेम है, या द्वेष ? यह आखो से छिपा हुआ नही रहता है ।

जब वह भोजन कर चुका तो सेठ ने कहा—आप बैठक मे आराम कीजिए, मैं भोजन करके आता हू । यह कहकर सेठ भीतर चला गया और किवाड बन्द करके भोजन करने को बैठा । सेठ के लिए सेठानी ने बदाम का सीरा, मलाई, दहीबडे आदि अच्छे माल परोसे और सेठ जीमने लगा । इधर इसके मनमे आया कि जाकर मैं भी देखू कि सेठ क्या खा रहा है ? यह विचार कर वह किवाडो के पास गया और किवाड की दराज मे से देखा कि सेठ तो बढ़िया माल उडा रहा है । वह सोचने लगा कि मैं यहाॅ व्यर्थ आया । जहाँ पर आखो मे स्नेह नही हो, वहाँ पर यदि धन भी मिले तो नही जाना चाहिए। तुलसीदास जी ने कहा है—

**आवत हू हर्षे नहीं, नयननि नहीं सनेह ।**
**तुलसी तहा न जाइये, जो धन बरसे मेह ।।**

देखो, हम दोनो बचपन के साथी और एक ग्रामवासी । जीवन मे पहिली वार आया, फिर भी इनकी आखो मे प्रेम नही दिख रहा है और सेठानी ने भी मुझे दूसरा भोजन खिलाया और पति को दूसरा खिला रही है । यहा पर मेरा ठहरना ठीक नही है । यह सोचता हुआ वह वापिस बैठक मे जाकर के लेट गया ।

जव सोने का समय हुआ तो सेठ ने सेठानी से पूछा कि उसे कहाँ सुलाया जाय ? वह वोली—मेरे से क्या पूछते हो, जहाँ ठीक समझो, वहा पर सुला दो । सेठ वोला—दुकान की गादी पर सुला दू ? सेठानी ने कहा—हा, वही सुलाना ठीक रहेगा । सेठ ने कहा—अरी, वहा तो मच्छर वहुत है, मच्छरदानी दे दो । सेठानी वोली—मच्छरदानी उनके लिए थोडे ही है । सेठ ने उसे ले जाकर के दुकान पर सुला दिया । वह लेट गया, पर ऊपर से मच्छरो के

तो आपका घर नरक हैं और आपके लिए मैं क्या कहू ? उसका घर मेरे लिए स्वर्ग है और वह भाई नही, भगवान् ही मुझे मिल गया है। यह कहकर और अपनी पोटली उठाकर उसके यहा चला आया। सेठजी उसकी बात सुनकर लज्जा से नीचे मुख करके रह गये।

भाइयो, देखो—पूर्व सचित भाग्य से सेठजी के पास धन, वैभव, हवेली आदि सब कुछ है, परन्तु वर्तमान मे जिसके हृदय मे दूसरे के दु ख के समय भी करुणा, सहानुभूति और सहृदयता नही, वहा क्या है ? आगे के लिए वह नरक का द्वार खोल रहा है, और यहाँ पर अपयश प्राप्त हो रहा है। किन्तु जिसके पास पूर्व पाप के उदय से कुछ भी नही है, परन्तु वर्तमान मे दूसरे के दु ख मे सीरी होकर उसे सुखी बना रहा है, वह स्वर्ग का द्वार खोल रहा है और आज उस दीन-हीन अवस्था मे भी यश का भागी हो रहा है। इस कहानी से आपको यह शिक्षा लेनी चाहिए, कि पूर्व जन्म मे हम जैसा कुछ-भला बुरा कर्म उपार्जन करके आये हैं, उसके अनुसार तो हमे उनका फल भोगना ही पडेगा, वह तो दैवाधीन बात है। किन्तु भविष्य का निर्माण करना, हमारे पुरुषार्थ के अधीन है। अत हमे आगे के लिए सत्-पुरुषार्थ करना चाहिए।

भाई, जिन लोगो ने महात्मा गान्धी की आत्मकथा पढी है, वे जानते हैं कि उनका बाल्यकाल और युवावस्था कैसे विलासपन मे बीती ? उनके उस समय उसी प्रकार के कर्मों का उदय था, अत उनकी वैसी ही परिणति रही। किन्तु जब उन्होने अपने जीवन का विहगावलोकन किया और अफ्रीका मे भारतीय बन्धुओ के साथ अन्याय होते देखा, तो अपनी बैरिस्टरी वेप-भूषा छोडकर उन लोगो के दु खो को दूर करने, और मानव के मौलिक अधिकारो को दिलाने के लिए कटिबद्ध हो गये, और एकदम सादा बाना धारणकर सत्याग्रह आन्दोलन किया, और वहा विजय पाई। पीछे भारत आकर अग्रेजो के अन्याय के विपरीत असहयोग आन्दोलन, छेडा कई बार उपवास किये, अनेक बार सत्याग्रह किया और अन्त मे अपनी अहिंसा और सत्यनिष्ठा के बल पर भारत को दासता के बन्धन से छुडाकर स्वतत्र कर गये। अपने पुरुषार्थ से वे महात्मा कहलाये और विश्ववन्द्य बने। यह उनके सत्पुरुषार्थ का ही परिणाम है।

ऐसे बन्धु ही सच्चे बन्धु और मित्र है । अन्यथा सगे भी यमदूत है । नीतिकार मे ठीक ही कहा है—

**समदुःखसुखा एव वन्धवो ह्यत्र वान्धवाः ।**
**दूता एव कृतान्तस्य द्वन्द्वकाले परान्मुखाः ॥**

जो लोग विपत्ति के समय दूसरे के दु ख को अपना दु ख समझे और उसके सुख को अपना सुख समझे, वे ही ससार मे सच्चे वान्धव है । जो द्वन्द्वकाल मे—आपत्ति के आने पर परान्मुख रहते हैं, दु ख मे सीरी नही होते हैं, वे तो कृतान्त (यमराज) के दूत ही है । ऐसा विचारता हुआ वह डाकखाने गया और घर को मनीआर्डर करके सीधा सेठ की दुकान पर पहुचा । उसके आते ही सेठ बोला—भाई, सबेरे से ही कहा चले गये थे ? उसने बताया कि मैं प्रात उठकर नदी पर निबटने गया था । लौटते समय गाव का एक परिचित्त भाई मिल गया । वह साथ ले गया । उसी के यहाँ खा-पीकर के अब अपना समान उठाने के लिए आया हू ।

सेठ बोला—उसके यहा क्या है, रहने को भी किराये की झोपडी है, मेह-नत-मजदूरी करता है, खाने का भी ठिकाना नही है । फिर वहा जा करके क्या करोगे ? तब यह बोला—सेठजी, आपका कहना सच है, उसके यहा यह सब कुछ भी नही है, पर वहाँ मानवता है, प्रेम है और सहृदयता है । उसकी झोपडी आपकी इस हवेली से बढकर है, उसकी रूखी-सूखी रोटिया भी आपके सीरा-पूडी से वेहतर हैं और उसका हृदय तो साक्षात् भगवान का हृदय है । देखो, कल मेरे मागने पर भी पचास रुपये देने के लिए टालमटूल कर दी । पर उसने बिना मागे ही पचास रूपये घर भेजने को दिये, जिनका मनीआर्डर करके डाक खाने से आ रहा हू । देखो—यह उसकी रसीद है । साथ ही उसने आज से ही अपने काम-काज मे आधे हिस्से का भागीदार बना लिया है । अब बताइये, वहा सब कुछ है, या आपके यहा ? कि मेरे आने का कारण सुनते ही आपका चेहरा उतर गया । भोजन मे भी दुभाती की और सुलाया भी वहा—जहा पर कि मच्छरो और खटमलो के मारे रात को एक मिनिट भी नही सो सका । सेठजी, आप अपने मन मे भले ही अपने को धन्ना सेठ मानते रहे, पर मेरे लिए

# १९ | सेवाधर्म परम गहन है

सज्जनो, आप लोगो ने अभी शास्त्र के विवेचन मे छप्पन दिक्कुमारियो का वर्णन सुना है। वे यहा क्यो आती हैं ? जन्म लेनेवाले तीर्थंकर भगवान की सेवा करने के लिए आती हैं। यह उनका जीताचार है—नियोग है। उन दिक्कुमारियो के स्थान पर जो भी नवीन देविया उत्पन्न होती हैं, वे अपने जीवनकाल मे इस मनुष्यलोक मे उत्पन्न होनेवाले तीर्थंकरो की और उनकी माताओ की सेवा करने के लिए नियम से आती हैं, ऐसा अनादिकालीन नियोग है। उन देवियो मे चाहे कोई सम्यक्त्व की धारण करने वाली हो, अथवा न हो, किन्तु नियोगवश सेवा करने को आना ही पडता है।

भाइयो, आप लोगो को भलीभाति विदित है कि जब यहा पर राजाओ का राज्य था और उनके राज्य मे थानेदार या पुलिस का कोई बडा हाकिम मुसलमान होता था, तो जब ठाकुरजी की सवारी निकलती, तो इन्तजाम के लिए उसे जाना ही पडता था, क्योकि वह उनकी ड्यूटी थी। इसीप्रकार जहा पर मुसलमान नवाब का राज्य होता तो ईद, या ताजिया-मोहर्रम के जलूसो के इन्तजाम के लिए हिन्दू पुलिस अधिकारियो को जाना ही पडता था। इसीप्रकार चाहे वे दिक्कुमारिया सम्यक्त्वी हो और चाहे मिथ्यात्वी हो, परन्तु तीर्थंकर भगवान के जन्मकाल मे उनका आना भी अनिवार्य सनातनी व्यवस्था

अब आज आप लोग उनके भक्त कहानेवाले इन गाँधीवादियो को देखें, कि वे लोग उनकी अहिंसा के नारे की आवाज लगाते हुए भी हिंसा का भरपूर प्रचार और प्रसार कर रहे हैं। आये दिन बडे-बडे कसाईखाने खोले जा रहे है जहा पर लाखो गाये, भैंसें और अन्य पशु निर्दयता पूर्वक काटे जा रहे है, मत्स्य-पालन, कुक्कट-पालन का प्रचार कर सबको अडे मुर्गी-और मछली खिला रहे हैं। महात्माजी ने जिस मद्य-निषेध के लिए अनेको बार पिकेटिंग किया, लाठियो की मार हजारो के साथ खाई और जेल गये, आज उनके ये भक्त उसी मद्य का प्रचार ही नही कर रहे हैं, बल्कि स्वय भी मद्यपायी हो रहे हैं। गाधीजी ने राजाओ और रईसो को मिटाने की बात कभी नही कही। उन्होने यही कहा कि पूजीपति अपनी पूजी को गरीबो की ट्रस्ट समझें और राजा लोग अपने को राज्य का सेवक समझकर प्रजा की सेवा करें। परन्तु आज ये गान्धीवादी सब काम उनका नाम लेकर ठीक उनके विपरीत कर रहे हैं। मुसलमानो और अग्रेजो के जमाने मे भी कभी कसाईखाने और शराबखाने राज्य की और से नही चलाये गये। आज उनके भक्त इस मास-मदिरा के प्रचार से ही देश का उद्धार समझ रहे हैं। इन बुरे कार्यों से न देश का उद्धार होगा और न उनके भक्तो का। ये सब देश का और अपना भविष्य अन्धकारमय बना रहे हैं और अश्लील फिल्मो को प्रोत्साहन देकर व्यभिचार का प्रचार कर रहे हैं। ऐसे समय मे प्रत्येक जैनी का कर्तव्य है कि वह इस मद्य, मास और सिनेमा-प्रचार के विरुद्ध आन्दोलन कर भारत के और अपने उज्ज्वल भविष्य का निर्माण करे। यही सच्चा कर्मयोग है।

वि० स० २०२७, आसोज सुदि–२
सिंहपोल, जोधपुर

●●

लौकिक सुख के साधन मिलें, उस पुण्यवानी के कार्य करने को लौकिक सेवा कहते हैं।

### लोकोत्तर सेवा

दूसरी लोकोत्तर सेवा है। जिस सेवा मे किसी भी प्रकार का पाप-सम्बन्ध न हो, कर्मास्रव का नाम न हो, सवररूप प्रवृत्ति हो, उसे लोकोत्तर सेवा कहते हैं। जैसे—कोई साधु अपने ज्ञान-ध्यान मे निरत है, निर्दोष तपश्चरण करता है और मौनपूर्वक अहर्निश आत्म-साधना मे सलग्न है, ऐसा साधु यदि बीमार पड जाय, तो उसकी जो वैयावृत्य की जाती है, सार-सम्भाल की जाती है, उसकी सेवा की जाती है, उसे लोकोत्तर सेवा कहते हैं। गुरुजनो की आज्ञा का पालन करना, प्रत्यक्ष और परोक्ष मे उनका विनय करना, उनके लिए सयम और ज्ञान-वर्धक सामग्री जुटाना आदि कार्य लोकोत्तर सेवा के ही अन्तर्गत हैं। जो निरन्तर अपने गुरुओ की सेवा मे उपस्थित रहता है और उनकी प्रत्येक आज्ञा को भक्ति-भाव से शिरोधार्य करता है, और मन मे यह विचार भी नही आने देता है कि मैं श्रीमान् हू, विद्वान् हू, मैं अधिकारी हू, फिर मैं क्यो इनकी आज्ञा मानू ? प्रत्युत जो यह विचारता है कि वे पुरुष धन्य हैं, जिनके माथे पर गुरु का वरदहस्त रहता है, जिनका मस्तक गुरु की चरणरज से पवित्र होता है। ऐसी भावना वाले के द्वारा जो गुरुजनो की सेवा होती है, उसे लोकोत्तर सेवा कहते हैं। भाई, गुरुजनो की आज्ञा क्या अपने किसी निजी स्वार्थ-साधन के लिए होती है ? नही। उनकी आज्ञा तो यही होती है कि व्रत-तप करो, प्रत्याख्यान-प्रतिक्रमण करो और अपनी आत्मा के भीतर भरे हुए कर्मरूपी कचरे को निकाल करके बाहिर करो। उनकी इस प्रकार की आज्ञा के पालन करने वालो के नवीन कर्मो का आस्रव रुकता है और सचित कर्मों की निर्जरा होती है। तथा गुरुजनो की वैयावृत्य करने से मानादि कषायो को जीतने का और ग्लानि आदि को भी जीतने का अवसर आता है, इससे भी सवर और निर्जरा होती है। अत इस प्रकार की सेवा को लोकोत्तर सेवा कहा जाता है। उपर्युक्त सर्वकथन का सार एक वाक्य मे यह है कि जो सेवा पुण्य वढाने

है। जो आज तक चली आई और आगे भी जब तक तीर्थंकर उत्पन्न होते रहेगे, तब तक चली जायगी और वे दिक्कुमारिया सेवा के लिए बराबर आती रहेगी।

**सेवा के दो भेद**

सेवा दो प्रकार की होती है—लौकिक सेवा और लोकोत्तर सेवा। अब यह जानना आवश्यक है कि लौकिक सेवा किसे कहते है और लोकोत्तर सेवा किसे कहते है ? लौकिक सेवा यह है कि कही भूकम्प आया, दुष्काल पड गया, भीषण बाढ आगई, या इसी प्रकार की कोई दूसरी परिस्थिति खडी हो गई और लाखो मनुष्य गृह-विहीन हो गये, एक-एक दाने के लिए मोहताज हो गये, अपने कुटुम्बीजनो से बिछुड गये, उनके पास ठहरने को भी स्थान नही रहा, दवा-दारू के विना बेमौत मरने लगे, उस समय जो लोग करुणाभाव से भीजकर उनकी सेवा करते है, उनके खाने-पीने की सुविधा जुटाते है, उनकी दवा-दारू करते है, उन्हे अन्न और वस्त्र प्रदान करते है और आनेवाली विपत्तियो से बचाते है, तथा विपद्-ग्रस्तो का उद्धार करते हैं, इन सबके करने को लौकिक सेवा कहते है। इस लौकिक सेवा को भगवान ने पुण्य कार्यो मे विवेचन किया है। जैसे—अन्नपुण्ये, प्राणपुण्ये, लयन-(स्थान-)पुण्ये, शयनपुण्ये आदि नवप्रकार के पुण्य है। विपत्ति मे पडे हुए व्यक्तियो को अन्न-जल देना, ठहरने को मकान देना, नगो को वस्त्र देना आदि। बीमारो की परिचर्या करना भी पुण्य कार्य है। मनपुण्ये, वचनपुण्ये और कायपुण्ये भी कहा गया है। अर्थात् दूसरो के प्रति अपने मन मे सद्भाव रखना, वचन से धैर्य बधाना, और काय से सेवा-टहल करना भी पुण्य कार्य है, यह सब लौकिक सेवा है।

यहा आप कहेगे कि अन्नपुण्ये आदि कार्य भी तो पुण्य के बन्ध कराने वाले है और पुण्य का फल परलोक मे मिलता है, अत उक्त कार्यों को लोकोत्तर सेवा क्यो न कही जावे ? भाई, आपका पूछना ठीक है, किन्तु यहा पर लोकोत्तर का अर्थ दूसरा है और लौकिक का अर्थ दूसरा है। जिस जाति की पुण्यवानी से लौकिक धन-वैभव प्राप्त हो, अनुकूल कुटुम्ब-परिवार मिले, नीरोग और स्वस्थ शरीर मिले, अच्छे मित्र और साथी मिले एव अन्य सभी प्रकार के

और भी कहा है—कि आचार्यों के बराबर मे न बैठे, बिलकुल सामने या बिलकुल पीठ पीछे न बैठे, जाघ से जाघ सटाकर न बैठे, आसन पर बैठे हुए ही उनके आदेश को स्वीकार न करे, किन्तु आसन से उठकर स्वीकार करे। पालथी लगाकर न बैठे, पैरो को पसार कर न बैठे, गुरु के द्वारा बुलाने जाने पर मौन न रहे, किन्तु अपने आसन से उठकर और गुरु के समीप जाकर उकड़ू बैठकर और हाथ जोडकर पूछे। इस प्रकार से गुरु की आज्ञा पालन करने वाले और सेवा-सुश्रूषा करने वाले शिष्य को ही विनीत शिष्य कहा गया है।

**वैयावृत्य सर्वोपरि**

यदि कोई साधु स्वाध्याय कर रहा है, या व्याख्यान दे रहा है, और यदि उस समय गुरु महाराज आज्ञा देवें कि जाओ—अमुक साधु की वैयावृत्य करो। तब सहर्ष हाथ जोड करके उनकी आज्ञा स्वीकार कर वेयावृत्य करने चले जाना चाहिए, किन्तु लौट कर गुरु से यह न कहे कि क्या व्याख्यान और स्वाध्याय से वैयावृत्य करना बडा कार्य है? यदि ऐसा कहता है, या मन मे विचारता भी है, तो यह गुरु की आज्ञा का उल्लघन है। शिष्य का कर्तव्य प्रत्येक अवसर पर गुरु की आज्ञा का पालन करना है।

**आचार्य श्री गिरधरलालजी महाराज**

एक प्रसिद्ध आचार्य थे। वे बहुत बडे ज्ञानी थे। दूर-दूर से लोग अपनी शका-समाधान के लिये उनके पास आते थे और व्याख्यान भी देते थे। उनके गुरु श्री भूपतरायजी थे। जब वे पट्टधर शिष्य व्याख्यान दे रहे थे, तो गुरु ने आवाज दी—अरे, व्याख्यान क्या बाच रहा है? मुझे तो यात्रा करनी है। गुरु की आज्ञा को सुनते ही वे व्याख्यान छोडकर उसी समय गुरु के पास चले गये। उपस्थित श्रोताजनो को यह कुछ नागवार अवश्य लगा, परन्तु उन्होंने सहर्ष गुरु की आज्ञा का पालन किया। आज के समय मे यदि ऐसे अवसर पर गुरु बुलावे, तो शिष्य मन मे कहेगा कि गुरु महाराज को तो रत्ती भर अक्कल ही नही है, तथा मुख से उत्तर देगा कि मैं व्याख्यान दू, या आपका काम करू? सुशील शिष्य का सदा एक ही ध्येय रहता है कि गुरु जो कुछ भी आज्ञा दे, वही मेरा परम कर्तव्य है। शिष्य का लक्षण नीतिकारो ने इस प्रकार कहा है—

वाली है, वह लौकिक सेवा है और जो सेवा धर्म बढानेवाली है, वह लोकोत्तर सेवा है ।

### गुरु-सेवा

गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करना यह उनकी सबसे बड़ी सेवा है। गुरु की विनय करना भी उनकी सेवा ही है। शिष्य को गुरु की विनय कैसे करना चाहिए, इसका श्रीउत्तराध्ययन सूत्र मे बहुत ही मार्मिक वर्णन किया गया है । यथा—

**निसन्ते सियाऽमुहरी, बुद्धाणं अन्तिए सया ।**
**अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जा निरट्ठाणि उ वज्जए ॥**

अर्थात्—साधु को चाहिए कि वह गुरु के समीप सदा शान्त रहे, वाचालता न करे, उनके पास अर्थयुक्त पदो को सीखे और निरर्थक बातो को न करे। और भी कहा है—

**अणुसासिओ ण कुप्पेज्जा, खंतिं सेविज्ज पंडिए ।**
**खुड्डेहिं सह संसग्गिं हासं कीडं च वज्जए ॥**

अर्थात्—गुरु के द्वारा अनुशासित होने पर क्रोध न करे, किन्तु क्षमा धारण करे । क्षुद्र व्यक्तियो के साथ सगति न करे, न हसे और न क्रीडा-कौतूहलादि करे । और भी कहा है—

**नापुट्ठो वागरे किंचि, पुट्ठो वा नालियं वए ।**
**कोहं असच्चं कुव्वेज्जा, धारेज्जा पियमप्पियं ॥**

अर्थात्—गुरु के पूछे विना कुछ भी न बोले, पूछने पर असत्य न बोले, क्रोध न करे । यदि आ जाय तो उसे तुरन्त विफल अर्थात् दूर कर दे । प्रिय या अप्रिय वात को राग-द्वेष के विना सहर्ष स्वीकार करे । और भी कहा है—

**पडिणीयं च बुद्धाणं, वा या अदुव कम्मुणा ।**
**आवी वा जइ वा रहस्से, नेव कुज्जा कयाइ वि ॥**

अर्थात्—लोगो के सामने या एकान्त मे, वचन से या काय से कभी भी गुरु के प्रतिकूल आचरण न करे ।

से अधिक सुयोग्य पुत्र को देखना चाहे, वही सच्चा पिता है। इसी प्रकार जो गुरु अपने ही शिष्य से पराजय चाहे, अर्थात् मेरा शिष्य इतना योग्य विद्वान् वन जावे कि शास्त्रार्थ मे मुझे ही हरा देवे, ऐसी भावना रखने वाला ही सच्चा गुरु कहा जाता है।

भाइयो, ऋषि, मुनि, साधु और देव, ये सब समान कहे गये हैं। ऋषि-मुनि या देव जिस पर अप्रसन्न हो जाय शाप देकर उसे नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं, और यदि वे किसी पर प्रसन्न हो जाय तो वरदान देकर निहाल कर देते हैं। इसलिए गुरु और देव को सदा प्रसन्न रखना चाहिए। मूर्ख और पशु भी समान हैं क्योकि दोनो ही विवेकशून्य हैं। इसी प्रकार मुर्दा और दरिद्री दोनो समान है, क्योकि दोनो ही किसी को कुछ दे नही सकते हैं।

एकबार कोई पुरुष किसी महात्माजी के पास गया और प्रार्थना करने लगा—भगवन्, मुझे कोई ऐसा मत्र या तावीज देवें जिससे मे अदृश्य हो जाऊ। मैं तो सबको देखता रहू। परन्तु कोई मुझे न देखे। समीप मे एक व्यक्ति खडा था, वह बोला—यह मत्र तो मैं ही तुझे सिखा दूगा। वह बोला—सिखाइए! उसने कहा—बस दरिद्री बन जाओ, फिर तुम्हारी मनोकामना अपने आप पूरी हो जायगी। वह बोला कैसे ? उसने उत्तर दिया—मेरे समान—

**भो दारिद्र्य नमस्तुभ्य सिद्धोऽह त्वत्प्रसादत.।**
**अह सर्वं प्रपश्यामि न मा पश्यति कश्चन॥**

हे दारिद्रय, मैं तुझे नमस्कार करता हू, क्योकि तेरे प्रसाद से मैं सिद्ध हो गया। देखो—मैं तो सारे ससार को देखता हू, परन्तु मुझे कोई नही देखता है। कहने का मतलव यह है कि याचना की भावना से दरिद्र-पुरुष प्रत्येक पुरुष की ओर दीनदृष्टि से देखता है कि यह मुझे कुछ दे देवे। मगर आने-जाने वाले पुरुष उसकी ओर देखते ही नही है। यह सुनकर मत्र मागने वाला चुप रह गया।

भाइयो, गुरु की आज्ञा पालन करना ही उनकी सच्ची भक्ति है। आचार्य श्रीतुलसीजी की पुस्तक को लेकर रायपुर मे जो कुछ हुआ, वह आपने समाचार

**गुरुभक्तो भवाद्भीतो विनीतो धार्मिक सुधीः ।**
**शान्त स्वान्तो ह्यतन्द्रालुः शिष्टः शिष्योऽयमिष्यते ॥**

जो गुरु का भक्त हो, ससार से भयभीत हो, धर्मात्मा हो, बुद्धिमान् हो, शान्त चित्त हो, आलस्य-रहित हो और शिष्ट (सभ्य) हो, ऐसे व्यक्ति को ही शिष्य कहा जाता है ।

**पुत्र बनाम शिष्य**

भाई, शिष्य के लिए तो गुरु ही माता और पिता के समान है । जैसा कि नीति मे कहा है—

**गर्भाधानक्रिया मात्रन्यूनौ हि पितरौ गुरुः ।**

अर्थात्—गर्भाधान क्रियामात्र को छोडकर शेष सर्व अवस्थाओ मे गुरु ही माता-पिता के समान है । पुत्र वही है जो अपने माता-पिता की आज्ञा माने और शिष्य वही है जो गुरु की आज्ञा माने । पुत्र और शिष्य का एक स्थान है । इस प्रकार पिता और गुरु का एक स्थान है । इनके विषय मे कहा गया है कि—

**ते पुत्रा ये पितुर्भक्ताः स पिता यस्तु पोषकः ।**
**तन्मित्रं यत्र विश्वासो भार्या सा याऽनुगामिनी ॥**

जो पिता के भक्त है, वे ही सच्चे पुत्र हैं और जो पुत्र का पालन-पोषण करे, वही सच्चा पिता है । जिस पर पूर्ण विश्वास हो वही सच्चा मित्र है और जो पति की अनुगामिनी हो वही सच्ची भार्या है ।

ये चारो समान बताये गये है । पिता के लिए पुत्र और गुरु के लिए शिष्य दोनो बराबर है । जैसे पिता अपने पुत्र की उन्नति चाहता है, वैसे ही गुरु अपने शिष्य की उन्नति चाहता है । जैसे पिता पुत्र से सेवा चाहता है, उसी प्रकार गुरु भी शिष्य से सेवा चाहता है । इस प्रकार पुत्र और शिष्य दोनो ही समान हैं । पिता-पुत्र का स्थान सासारिक दृष्टि से और गुरु-शिष्य का स्थान धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है । भारतीय दर्शनो का यह सिद्धान्त रहा है कि—

**पिता पुत्रादात्मानं पराजयेत् । गुरुः शिष्यादात्मान पराजयेत् ।**

सच्चा पिता वह है जो अपने ही पुत्र से पराजय चाहे । अर्थात् जो अपने

अपना तन-मन और धन न्यौछावर कर दे, तभी भक्ति की जाच होती है। अन्यथा तो सभी लोग अपने को भक्त कहते हैं।

### भक्त श्रवणकुमार

भाइयो भक्ति तो श्रवणकुमार की थी, जिसके मा-बाप दोनो अन्धे थे और घर मे किसी प्रकार का भी साधन नहीं था। फिर भी माता-पिता की इच्छा तीर्थ-यात्रा करने की हुई, तो उसने कावर मे दोनो को दोनो ओर बैठाकर तीर्थ-यात्रा कराना प्रारम्भ किया। मार्ग मे मजदूरी करके पेट भरता, अपने माता-पिता को खिलाता-पिलाता और रात्रि मे उनकी सेवा-सुश्रषा करता हुआ वह देश-देशान्तर मे भ्रमण कर रहा था। जिसका नाम आज भी इतिहास मे अमर है। जिससे सारे कुपुत्र और सुपुत्र भी परिचित हैं। भेद केवल इतना सा है कि आज के ये सुपुत्र पहिचानते हुए भी उसके गुणो को नही ग्रहण कर रहे है और कुपुत्रो की तो चर्चा करना व्यर्थ है। मार्ग मे चलते हुए उसके मा-बाप को, प्यास लगी। वह पानी की खोज मे निकला। इधर दशरथ जो शिकार के लिए जगल मे गये हुए थे, शिकार पर छोडा हुआ उनका बाण श्रवणकुमार को जा लगा। उसने वाण के आघात से तडफते हुए कहा—हे भगवन्, मुझे अपने मरने का दु ख नही है, किन्तु मेरे अन्धे माता-पिता की कौन सेवा करेगा और पानी ले जाकर के कौन उन्हें पिलायगा ? ज्यो ही ये शब्द दशरथ के कान मे पडे तो बोले—हाय, यह मेरे से बडा अनर्थ हो गया ? वे अन्तिम सास लेते हुए श्रवणकुमार के समीप पहुचे, और उसे धीरज बधाते हुए कहा—वत्स, मुझसे भूल हुई, धोखे से वाण तुम्हे आ लगा है। तुम अपने माता-पिता की चिन्ता मत करो। मे तुम्हारे माता-पिता की सेवा करूगा और अभी पानी ले जाकर उन्हे पिलाता हू। इतना सुनते ही उसकी दम टूट गई और दशरथ दोने मे पानी भरकर उसके माता-पिता के पास पहुचे और कहा—लो पानी पिओ। यह सुनकर उस अन्धे दम्पति ने कहा—तुम कौन हो ? उत्तर मिला—मैं दशरथ हू। उन्होंने कहा—मेरा श्रवणकुमार कहा है ? दशरथ ने उत्तर दिया—तुम्हारा श्रवणकुमार तो अब ससार मे नही रहा। उन्होने पूछा कि उसे क्या हुआ ? दशरथ ने कहा—मुझ पापी के हाथ से धोखे मे उसकी मृत्यु हो गई। परन्तु आप

पत्रो मे पढा और सुना है। वहा पर कितनी उथल-पुथल हिन्दुओ ने मचा दी। परन्तु श्रीतुलसीजी के जितने भक्त और कार्यकर्ता थे, वे तुरन्त रायपुर पहुचे और उनकी जितनी भी शक्ति थी, वह उन्होने गुरुभक्ति मे लगा दी। यदि वे न लगाते, तो काम बनने वाला नही था। यह कहलाती है सच्ची गुरुभक्ति। यदि इस प्रकार की घटना और किसी समाज मे घटित होती, तो कह देते ये भक्तगण, कि अभी हमे अवकाश नही है। हमसे यह काम नही बन सकेगा, या इसी प्रकार का और कोई बहाना बता देते। आप लोग यहा आते हैं और 'मत्थएण वदामि' कहकर सुख-साता पूछते है। परन्तु गुरु महाराज जानते हैं कि इनकी इस भक्ति मे कितनी शक्ति है ?

बहुत समय के पहिले जोधपुर मे भी ऐसी ही घटना घटी थी। उस समय महाराजा प्रतापसिंहजी का राज्य मे बडा प्रभुत्व था। दीक्षा के सम्बन्ध से उन्होने एक सन्त पर वारट निकाल दिया और कहा गया कि सन्त को अदालत मे हाजिर करो। उस समय बडे-बडे श्रावक जो प्रतिदिन आकर सामायिक करते थे और खमाघणी की झडी लगाते थे, उनसे इस विषय मे कहा गया तो बोले—महाराज, आपने ऐसा कार्य ही क्यो किया ? यह प्रतापसिंहजी का मामला है, इसमे हमसे कुछ नही होगा। उस समय सारी जैनसमाज के मुखियो ने घुटने टेक दिये। उस समय जोधपुर मे एक ओसवाल भडारी जी थे, मुरार-दानजी के ए. डी सी थे। वे आये और उन्होने 'मत्थएण वदामि' किया महाराज ने कहा—भडारीजी, ऐसा मामला है, अब क्या किया जाय ? उन्होने कहा—महाराज, किसकी ताकत है जो आपको अदालत मे बुलाये ? वे महाराज प्रतापसिंहजी के पास गये और उनसे कहा—अन्नदाता, आज तक कभी कोई साधु-सन्त अदालत मे गये है क्या ? यह कहकर उन्होने सारी घटना कह सुनाई। महाराज ने कहा—अच्छा मैं अभी वारण्ट को कैंसिल कर देता हू। पीछे वह आर्डर वापिस ले लिया गया और सारा मामला वही साफ हो गया। भाई, हमेशा आने-जाने वालो ने तो अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। परन्तु न कभी आने वाले भडारीजी ने वह काम करके दिखा दिया। केवल लटके करने मे भक्ति नही है। भक्ति तो हृदय मे होती है और जो समय पर धर्म कार्य के लिए

परन्तु सच्ची सेवा करनेवाले बहुत कम मिलेंगे। इसी से नीतिकार कहते हैं कि सेवाधर्म परम गहन है, अति कठिन है। इसका विधिपूर्वक निर्वाह करना योगियो के लिए भी अगम्य है, तो फिर साधारणजनो की तो कथा ही क्या है? यही कारण है कि भगवान् ने इस सेवा या वैयावृत्त्य को छह प्रकार के अन्तरग तपो मे तीसरे नम्बर पर कहा है। और अन्तरग तपो मे इसकी गिनती इसीलिए की गई है, कि यदि दूसरे की सेवा-वैयावृत्त्य अन्तरग भावो से की जाय, तब तो वह अन्तरग तप है। अन्यथा बिना भावो के की जाने वाली सेवा-वैयावृत्य तो केवल अपने शरीर को कष्ट देना है, उसकी गिनती काय-क्लेश नामक बहिरग तप मे की जायगी।

**सेवा का फल, भावना से!**

देखो—जैन शासन भाव-प्रधान है। जिसके जैसे भाव होते है, उसे उसी प्रकार का लाभ मिलता है। इसीलिए कहा गया है कि '**यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी**'। अर्थात् जिस जीव की जैसी भावना होती है उसे उसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है। आप लोगो ने सुना है कि भगवान् ऋषभदेव, भरत, बाहुबली, ब्राह्मी, सुन्दरी और श्रेयान्सकुमार, इनका पारस्परिक सम्बन्ध अनेक भवो से चला आ रहा था। पूर्वभव मे पीठ और महापीठ नामक दो मुनि थे। पीठ ने प्रतिज्ञा की कि पाच सौ मुनियो का आहार मैं लाऊगा। महापीठ ने उन पाच सौ मुनियो की सेवा-वैयावृत्त्य का नियम लिया। दोनो आजीवन अपनी प्रतिज्ञाओ का निर्वाह करते रहे। दोनो काल करके स्वर्ग गये। वहा से आकर पीठ का जीव तो भरत हुआ और महापीठ का जीव बाहुबली हुआ। उसी पूर्वभव मे अन्य जो दो मुनि थे, वे पीठ-महापीठ से कहा करते थे कि तुम लोग निकम्मे हो, व्यर्थ की रोटिया खाते-खिलाते रहते हो और सेवा का बाना धारणकर अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझते हो। साधुपना तो तपस्या मे है। सेवा करने और रोटिया लाने मे क्या रखा है? इस प्रकार कहनेवाले उन मुनियो ने मास-मास-खमण के पारणे किये, किन्तु भीतर मायाचार भरा हुआ था तो वे स्वर्ग मे जाकर भी ब्राह्मी और सुन्दरी के रूप मे जन्मे। उतनी बडी

दोनो की सेवा के लिए मैं तैयार हू। यह सुनते ही उसने कहा—वह तो हम अन्धो का सहारा था, वही हमारे एकमात्र पुत्र था। उसी को तूने मार दिया। अव हमे पानी देने वाला कोई नही रहा। याद रख, अन्तिम समय तुझे भी पानी का देने वाला कोई नही रहेगा। यह कहते ही उन दोनो के प्राण-पखेरू उड गये। दशरथ को उनके शाप से चार-चार पुत्रो के होते हुए भी सचमुच अन्तिम समय पानी देने वाला एक भी पुत्र नही था।

भाइयो, इस कहानी के कहने का मतलब यह है कि मरते हुए भी श्रवण-कुमार के मुख से यही निकला कि मुझे अपने मरने की चिन्ता नही है, मगर मेरे अन्धे मा-बाप की सेवा कौन करेगा ? इसे कहते है सच्ची मातृ और पितृ-भक्ति। यदि वह आज के सपूतो मे आ जाय तो दुनिया की काया पलट जाय। आप लोग कहेगे कि महाराज, हम इतनी भक्ति करते हैं, वह क्या है ? भाई, भक्ति कहने की वस्तु नही है। जिसमे वह भक्ति होती है, वह तो विना कहे ही अपने-आप दृष्टिगोचर हो जाती है कि यह भक्ति है, और यह युक्ति है। भक्ति और वस्तु है और युक्ति और वस्तु है। सच्ची भक्ति छिपायी नही छिपती है और बनावटी या दिखाऊ भक्ति का पर्दाफाश या भण्डा फोड हुए भी नही रहता है। यह जो कर्मास्रवयुक्त ससार की सेवा की जाती है, उसे कहते हैं लौकिक सेवा। और कर्मास्रव से रहित किन्तु कर्म-निर्जरा के लिए जो सेवा की जाती है, उसे कहते है लोकोत्तर सेवा। लौकिक सेवा का फल है—लोक मे यश मिलना और परलोक मे आज्ञाकारी स्त्री-पुत्रादि, धन-वैभवादि की एव स्वर्गादि की प्राप्ति होना। लौकिक-सेवा पुण्य-साधक है। किन्तु लोकोत्तर सेवा धर्म-साधक है, उससे अनादि सचित कर्मों की निर्जरा होती है, नवीन पापास्रव का सवर होता है और साक्षात् या परम्परा मुक्ति की प्राप्ति होती है। इसीलिए कहा गया है कि—

**'सेवाधर्मो परमगहनो योगिनामप्यगम्यः'।**

तलवार की तेज धार पर चलना तो आसान है। परन्तु सेवा करना कठिन है। छहमासी तपस्या करनेवाले व्यक्ति मिल जावेंगे, उत्कृष्ट ज्ञानवान् विद्वान् भी मिल जावेंगे और सर्व रसो के यावज्जीवन त्यागी भी बहुत मिल जावेंगे।

उसे आन्तरिक भक्तिभाव के साथ करना ही चाहिए। भगवान की, भक्त की, गरीब की, अमीर की, ऊच की, नीच की, सभी की सेवा विना किसी भेद-भाव के करनी ही चाहिए। बल्कि मैं तो यह कहूगा कि गरीब की, असहाय की, बालक की, वृद्ध की, अबलाओ की और रोगियो की सेवा सब काम छोडकर सबसे पहिले करनी चाहिए। सेवा करते समय लोक-दिखावे की भावना विलकुल भी मन मे मत लाओ।

आप लोग कहते है कि महाराज, रोगी की परिचर्या करते हुए और उनका मल-मूत्रादि साफ करते हुए घृणा आती है और ग्लानि से मन भर जाता है। परन्तु भाई, अस्पताल के इन डाक्टरो, कम्पाउण्डरो और नर्सो की ओर तो देखो—उनके पास कैसे-कैसे रोगी आते हैं और नीच से भी नीच जाति के पहुचते हैं। परन्तु वे लेशमात्र भी घृणा न करके किस प्रकार प्रेम और उल्लास से उनको सान्त्वना देते हुए उनकी रात-दिन सेवा करते रहते हैं। उनके घावो का मवाद अपने हाथो से निकालते और धोते हैं, उनका मल-मूत्र साफ करते हैं और उनके गन्दे वस्त्रो को उठाते और साफ करते हैं। कई वार तो उनके पहिने हुए स्वच्छ वस्त्र भी रोगी के खून, पीप एव वमन-विरेचनादि से गन्दे हो जाते हैं। परन्तु फिर भी वे ग्लानि को जीतते हुए निर्विकार भाव से रोगियो की सेवा करते रहते हैं। आप कहेगे कि वे नौकरी के वश से यह सब करते हैं। ठीक है कि वे नौकरी की ड्यूटी से करते हैं, परन्तु अन्तरग मे यदि उनके भाव सेवा के न हो, तो तीन दिन भी उनकी नौकरी चल नही सकती। इसलिए हमे सेवा सदा सद्भाव के साथ ही करना चाहिए और यह सदा याद रखना चाहिए कि सेवा एक महान् धर्म है।

वि० स० २०२७, आसोज सुदि–३
सिंहपोल, जोधपुर,

●●

तपस्या करने के बाद भी स्त्रीलिंग का छेद नही कर सके। भाई, तपस्या या कोई भी अन्य कार्य बिना भाव के सफल नही होते है। महान् शासन-प्रभावक सिद्धसेन दिवाकर ने कहा—

> **आकर्णितोऽपि महितोऽपि निरीक्षितोऽपि,**
> **नून न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।**
> **जातोऽस्मि तेन जनबान्धव दुःखपात्रं,**
> **यस्यात् क्रियाः प्रतिफलन्ति न भावशून्याः॥**

हे जन-बान्धव भगवन् मैंने अनेक भवो मे आपका उपदेश, और आपके दर्शन भी किये। किन्तु भक्ति से अपने चित्त मे तुझे स्थान नही दिया, तुझे अपने हृदय मे धारण नही किया। हे स्वामिन्, यह उसका फल है कि आज भी मै दु खो का पात्र हो रहा हू—अर्थात् दु ख भोग रहा हू। क्योकि भाव-शून्य कोरी क्रियाए सुफल नही देती है।

भाई, कितना ही भाव-शून्य क्रियाकाण्ड करो, वह सब व्यर्थ जाता है। श्रेयान्सकुमार का जीव भी उत्तम मुनियो के साथ एक मुनि था, तपस्वी और त्यागी था। वह पीठ और महापीठ की सेवा-भावना की प्रशसा किया करता था, उनके गुण-गान करता था। उसके फलसे वह स्वर्ग जाकर इस भव मे श्रेयान्सकुमार हुआ। उसे सभी लौकिक वैभव भी प्राप्त हुआ और भगवान् ऋषभदेव को वर्ष भर की तपस्या के पश्चात् सर्वप्रथम पारणा कराने का सुअवसर भी प्राप्त हुआ। जो दान की प्रवृत्ति इस भरत क्षेत्र मे अठारह कोडा-कोडी सागरोपम से बन्द थी, उसका प्रवर्तन श्रेयान्स ने किया और वे इस युग के दान तीर्थ आदि प्रवर्तक रूप से ससार मे आज भी प्रसिद्ध है। उन्हे इस रूप मे भरत और बाहुबली से भी अधिक यश प्राप्त हुआ।

सज्जनो, सारी पुण्यवानी का मूल पाया सेवा है। सेवा करने मे हमे कभी प्रमाद नही करना चाहिए। बने जितनी लोकोत्तर सेवा तो करनी ही चाहिए। परन्तु लौकिक सेवा मे तो किसी प्रकार की कमी रखनी ही नही चाहिये। घर मे रहते हुए अपने कुटुम्ब-परिवार की, अडौसी-पडौसियो की, मोहल्ले और गाव वालो की, तथा देश वालो की सेवा का जब भी, जैसा अवसर हाथ आये,

दानशाला खोलना, प्याऊ लगाना, औषधालय और विद्यालय आदि का बनवाना और उनका सचालन करना, धर्मशाला बनवाना आदि कार्य लौकिक साधना के अन्तर्गत आते हैं। जिसके पास पू जी नही, उसे नि स्वार्थ भाव से पू जी देना, व्यापार मे लगा देना, निराश्रित को रहने के लिए आवास की व्यवस्था करना भी लौकिक साधना ही है।

तीसरी है अध्यात्मिक साधना। इसकी ओर हमारी दृष्टि नही जाती है। पहिली दो साधनाओ के लिए तो बहुत खटपट करनी पडती है, अनेक वस्तुओ का सग्रह करना पडता है और अनेक लोगो से सम्पर्क भी स्थापित करना पडता है। परन्तु आध्यात्मिक साधना के लिए यह सब कुछ नही करना पडता है। न किन्ही वस्तुओ को एकत्रित करना पडता है, न किसी प्रकार का बोझ ही उठाना पडता है और न किसी का आश्रय ही लेना पडता है। इसमे तो स्वय ही अपने आप मे अपनी आत्मा से ही साधना करनी पडती है। भौतिक साधना मे जैसे लकडी काटने के लिए कुल्हाडी, पत्थर तोडने के लिए और लोहा काटने के लिए छैनी-हथौडा आवश्यक है। इस प्रकार आध्यात्मिक साधना के लिए भी बुद्धिरूपी छैनी की आवश्यकता होती है, क्योकि आत्मा तो अदृश्य पदार्थ है। उस पर चढे हुए मल को दूर करने के लिए कोई भौतिक पदार्थ समर्थ नहीं है। और आत्मा का मल इन चर्मचक्षुओ से दिखाई भी तो नही देता है। उस मल-विकार को जानने या देखने के लिए ज्ञान-नेत्रो की आवश्यकता है और उस पर चढे हुए मल-पटल को दूर करने के लिए बुद्धिरूपी छैनी की आवश्यकता है। आत्मा का स्वभाव तो सत्-चिद् और आनन्दमय है। परन्तु अनादि-काल से लगे हुए इन कर्मों के सम्पर्क से जो ये राग-द्वेष आदि विकारी भाव हैं, उनको ही हमने अपना स्वरूप समझ रखा है। रूप, रस, गन्ध और स्पर्श वाले इस पौद्गलिक शरीर को ही अपना स्वरूप समझ रखा है। किन्तु शरीर तो जड वस्तु है और राग-द्वेषादिक आत्मा मे कर्म के निमित्त से होने वाले विकारी भाव हैं। अत ये दोनो ही आत्मा के स्वरूप नही है। इस प्रकार का ज्ञान होने पर आत्मसिद्धि को प्राप्त करने के लिए जो अन्तरग मे साधना की जाती है, उसे आध्यात्मिक साधना कहते हैं। जैसा कि कहा गया है—

# २० साधना का मार्ग

### साधना के तीन स्तर

सज्जनो, कल आप लोगो ने सेवाधर्म की बात सुनी थी। यह सेवा साधना के लिए की जाती है। साधना तीन प्रकार की होती है--भौतिक साधना, लौकिक साधना और आध्यात्मिक साधना। किसी कार्य की सिद्धि के लिए सामग्री के एकत्रित करने को तथा उससे सफलता प्राप्त करने के लिए किये जानेवाले प्रयास को साधना कहते है। जैसे आपको सीरा बनाना है, तो उसके लिए मैदा, कढाई, आग, पानी, घृत, शक्कर और बनाने वाला व्यक्ति आदि जितने भी साधन है, उन्हे इकट्ठे करके जो बनाने का प्रयत्न किया जाता है वह सीरा की साधना है। साधन के बिना साध्य की सिद्धि नही हो सकती है।

भौतिक कार्यों की सिद्धि के लिए जो साधना की जाती है, उसे भौतिक साधना कहते है। युद्ध के लिए नाना प्रकार के शस्त्रास्त्रो का निर्माण करना, रहने के लिए नाना प्रकार के मकान, हवेली और बगले आदि बनाना, बावडी कुए आदि खुदवाना और बगीचे आदि लगवाना भौतिक साधना के अन्तर्गत हैं।

दूसरी लौकिक साधना है। विवाह आदि करना, व्यापार करना, आजीविकार्थ खेती-बाडी, नौकरी-चाकरी आदि करना लौकिक साधना है। शरीर को स्वस्थ रखना, व्यायाम करना, वायुसेवनार्थ घूमना, यश के उपार्जन के लिए

है। अपने भीतर वह आत्मज्योति जागे और जो विकार घुसे हुए हैं उन्हे निकाल बाहिर करें, इसके लिए प्रयत्न करना ही आध्यात्मिक साधना है। हम जब तक इस साधना को नही करेंगे, तब तक हमे आत्मतत्त्व की प्रतीत, रुचि श्रद्धा और प्राप्ति नही हो सकती है।

यदि किसी व्यक्ति को बुखार चढता है, तो उसका ताप-मान १०५ डिग्री तक जा पहुंचता है। लोग देखकर कहने लगते हैं कि इसका शरीर तवा जैसा तप रहा है। बीमार पुरुष के शरीर मे इतने उष्ण पुद्गल प्रविष्ट हो जाने पर चिकित्सक उन्हे दूर करने के लिए—उसका तापमान कम करने के लिए पहिले साधारण खाने-पीने की दवाए देता है। पर जब तापमान कम होता नही दिखता तो कोई खास किस्म का इ जेक्शन देता है और उसके ताप-मान को गिराता है और उष्ण परमाणुओ को निकाल कर शरीर को शीतल कर देता है। इसी प्रकार आत्म-प्रदेशो के साथ जो राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया और लोभादि कर्मों के दल के दल अनन्त परिमाण मे बध रहे हैं, उन्हे दूर करने के लिए अध्यात्म-साधना की जाती है। जैसे किसी बाहिरी पत्थर आदि को तोडने के लिए वाहिरी शक्ति का प्रयोग आवश्यक होता है, उसी प्रकार आत्मा के प्रत्येक प्रदेश पर अनन्तानन्त परिमाण मे निवद्ध कर्म-परमाणुओ को तोडने के लिए अन्तरग के पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

**आत्म-निरीक्षण करिए !**

आत्मिक पुरुषार्थ को प्रकट करने के लिए आवश्यक है कि साधक सर्वप्रथम ब्राह्ममुहूर्त मे उठकर यह विचार करे—

**ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय कृत - पञ्चनमस्कृति ।**
**कोऽहं को ममधर्मं किं व्रत चेति परामृशेत् ॥**

साधक ब्राह्म मुहूर्त मे—प्रात काल उठकर सर्वप्रथम पचपरमेष्ठी को नमस्कार करे - णमोकार मत्र का कुछ ममय तक जाप करे। तत्पश्चात् यह विचार करे कि मैं कौन हू, मेरा धर्म क्या है, मेरा व्रत क्या है, मैं कहा मे आया हू, मेरा स्वरूप क्या है, मेरा लक्ष्य क्या है ? इसी प्रकार के विचार को प्रकट करते हुए अध्यात्म कवि पडित भागचन्द्रजी कहते हैं—

जिन परम पैंनी सुबुधि छैनी डार अन्तर भेदिया,
वर्णादि अरु रागादि तें, निजभाव को न्यारा किया।
निज मांहि निज के हेतु निज कर आपको आपै गह्यो,
गुण-गुणी, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मझार कछु भेद न रह्यो ॥

**निर्विकल्प साधना**

जब ज्ञानी-पुरुष बाहिर मे शान्तदशा धारण करके अपने अन्तरग मे अतितीक्ष्ण सुबुद्धिरूपी छनी को डालकर आत्मा के ऊपर चढे हुए इस वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श वाले देह से, तथा राग-द्वेष आदि विकारीभावो से अपने आत्म-स्वरूप को न्यारा करता है, उस समय उसे अपनी आत्मा के भीतर केवल सत्-चिद् आनन्दरूप शुद्ध आत्मा के दर्शन होते हैं। उसी अवस्था मे आत्मा अपने ही द्वारा अपने ही शुद्ध-स्वरूप को ग्रहण करके स्थिरता को प्राप्त करता है। उस निर्विकल्पदशा मे मेरे भीतर ये गुण है, और मैं गुणी हू, ऐसा विकल्प भी जागृत नही होता है। तथा मैं ज्ञाता हू, यह मेरा ज्ञान है और मैं इस ज्ञेय को जान रहा हू, इस प्रकार की कर्त्ता, कर्म और क्रिया की भी प्रतीति नही होती है। उस समय इन सब विकल्पो से रहित एक अखण्ड ज्ञान-ज्योति ही अन्तरग मे प्रकाशमान दृष्टिगोचर होती है, उसे ही आत्मस्वरूप का दर्शन, या भगवत्साक्षात्कार, या आत्मानुभूति आदि अनेक नामो से लोग पुकारते है। इस प्रकार के आत्म-दर्शन के लिए जितने भी प्रयास या उपाय किये जाते हैं, वे सव आध्यात्मिक साधना के अन्तर्गत जानना चाहिए।

सामायिक आदि जितने भी धार्मिक कार्य किये जाते है, वे सब उसी आत्मस्वरूप की प्राप्ति के साधन है। बाह्यकार्यो को छोडकर एकान्त मे बैठना, मौन रखना, मुखपत्ति बाधना आदि बाह्य क्रियाए तो द्रव्य सामायिक है। और उस समय मे उक्त प्रकार से जो आत्म-चिन्तन किया जाता है और परिणामो मे परम प्रशम-भाव प्रकट होता है, वह भाव सामायिक है। भाव सामायिक ही सच्ची आत्म-साधना है। द्रव्य सामायिक का तो फोटो खीचा जा सकता है, पर भाव सामायिक का फोटो नही खीचा जा सकता, क्योकि वह अन्तरग की वस्तु है और उसका चित्र खीचना इस पौद्गलिक कैमरे की शक्ति से बाहिर

का विचार है। मेरा सच्चा घर कौन है ? अभी तक तो मैं परघरो मे किराये-दार बनकर निवास करता आ रहा हू। पर मेरा असली घर तो मोक्ष है, जिनमे मैंने आज तक निवास नही किया है। कब मैं इन परघरो के निवास को छोडकर अपने मोक्ष-महल मे निवास करूगा। यह मोक्षतत्त्व का विचार है। पडित भागचन्द्रजी कहते हैं कि इस प्रकार नवतत्त्वो के विचार से ही परम आनन्द प्राप्त होता है, तो जब हम अपने असली घर मे पहुँचेगे तो उस समय के आनन्द का क्या ठिकाना है ! इसलिए हमे रात-दिन नवतत्त्वो का विचार करते रहना चाहिए।

जीव-अजीवादि नवतत्त्वो के विचार करने से आत्मा को स्वरूप का भान होता है और पर-रूप की पहिचान होती है। इससे उसे यह बोध प्रकट होता है कि अहो मेरी आत्मा—जिसका स्वभाव शुद्ध-बुद्ध है—उसकी आज यह क्या दशा हो रही है ? जो मेरा स्वरूप है, उसे तो मैंने पहिचाना ही नही, और जो परपदार्थ हैं, मेरे नही, उन्हे मैं अपना समझकर उनसे लिपट रहा हू। यह मेरी बडी भूल रही है। अब इसे छोड देना चाहिए। जब एक बार भूल समझ में आ जाय, तब वह मिटाने का प्रयत्न करता है। ज्यो-ज्यो साधक अपनी ममता को दूर करता है, त्यो-त्यो वह भूल भी दूर होती जाती है।

भाइयो, अनादिकाल की यह अज्ञानता, ममता और राग-द्वेप की प्रवृत्ति सहसा नही मिटती है। तीर्थंकरो जैसे महापुरुषो को भी उस भूल को दूर करने के लिए पूर्व के अनेक जन्मो मे साधना करनी पडी। तथा वर्तमान भव मे भी हजारो वर्षों तक तपस्या करनी पडी, तब वे आत्म-सिद्धि कर सके। तब उनके सामने हम किस गिनती मे है ? हम चाहे कि एक-दो दिन मे ही आध्या-त्मिक साधना करके उसे प्राप्त कर लें, यह कैसे सभव है ? अत कपायो को और पचेन्द्रियो की विपय प्रवृत्ति को दूर करते हुए अपनी साधना को बढाते रहो—निरन्तर प्रयास करते रहो, तब एक-न-एक दिन हम अवश्य आत्म-साधना मे सफलता प्राप्त कर लेंगे।

### जब आत्मज्ञान हुआ

सज्जनो, आपको ज्ञात है कि इपुकार राजा, उसकी रानी, पुरोहित-

आकुल-रहित होय इम निशि-दिन, कीजे तत्त्व विचारा हो ।
को मैं, कहा रूप है मेरा, पर है कौन प्रकारा हो ।। आकुल० १।।
को भव-कारण, बन्ध कहा, को, आस्रव रोकनहारा को ।
खिपत कर्म-बन्धन काहे सो, थानक कौन हमारा हो ।। आकुल० २।।
इमि अभ्यास किये पावत हैं, परमानन्द अपारा हो ।
'भागचन्द' यह सार जानकर, कीजे बारंबारा हो ।। आकुल० ३।।

आत्म-साधना करने वाले व्यक्ति को सर्व प्रकार की सासारिक आकुलताओ से रहित होकर प्रात काल, और सायकाल शान्तस्थान मे बैठकर नवतत्त्वो का इस प्रकार विचार करना चाहिए मैं कौन हू और मेरा क्या स्वरूप है ? मैं चेतन आत्मा हू और ज्ञान-दर्शन, सुख, बल, वीर्यादिक मेरा स्वरूप है, मैं अजर-अमर हू , इस प्रकार जोवतत्त्व का विचार करे । मेरे-साथ जो ये राग-द्वेषादिक लग रहे है, कर्म लग रहे है, ये मेरा स्वरूप नही है, मेरे से भिन्न हैं, परवस्तु है, अचेतन द्रव्य हैं, इस प्रकार से अजीवतत्त्व का विचार करे । नव प्रकार से बडे कष्ट के साथ बाधे और ४२ प्रकार से सुखमय भोगे उस पुण्यतत्त्व का विचार करे—अष्टादश भेद जो आसानी से बधजाय ८२ प्रकार से भोगने दुष्कर हो उस पापतत्त्व का विचार करे । जब मेरा स्वरूप ज्ञान-दर्शन मय है फिर मैं ससार मे क्यो परिभ्रमण कर रहा हू ? अहो आत्माराम, तुम मन-वचन-काय की चचलता से प्रति समय ससार के कारणभूत कर्मों का आस्रव कर रहे हो । यह कर्मों का आस्रव ही दु ख-दाता है, अत मुझे अपने योगो की चपलता को रोकना चाहिए । यह आस्रवतत्त्व का विचार है । आने वाले कर्मों को आत्मा के साथ वन्ध करने वाले ये मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग है । अत मुझे इनका त्याग करना चाहिए । यह वन्धतत्त्व का विचार है । आने-वाले कर्मों को रोकने वाले गुप्ति, समिति, धर्म, परीषह, विनय और चारित्र-धारणादि कार्य है, अत मुझे अपनी शक्ति को नही छिपाकर इन्हे धारण करना चाहिए । यह सवरतत्त्व का विचार है । जो वधे हुए कर्म है, उनका क्षय तपश्चरण से होता है । यह तपश्चरण अन्तरग और वहिरग के भेदरूप से वारह प्रकार का है, कव मेरे इस तपश्चरण का धारण हो ? यह निर्जरातत्त्व

व्राल या युवावस्था का विचार नही करता है। ससार से तिरना हो तो इस सयम के अगीकार के बिना सभव नही है। अत ससार से पार होने के लिए हमने वाल्यावस्था मे ही दीक्षा ले ली। तब पुरोहित-पुरोहितानी बोली—अहोभाग्य है, आपने नर-जन्म को सफल किया। कृपासिन्धो, कल्पवृक्ष के समान आपके पधारने पर भी यह हमारी मनोकामना पूरी न हो, तब कब हो ? यह सुनकर मुनि बोले—आप दोनो के हृदय मे सन्तान पाने की इच्छा है। वे दोनो वोले—हाँ भगवन्, यही चिन्ता है। आप तो घट-घट के अन्तर्यामी हैं। तब मुनि वोले—देखो, तुम्हारे दो पुत्र होगे। परन्तु होश मे आने के वाद वे मुनि-पद को धारण कर लेंगे। इस कार्य मे तुम लोग अन्तराय मत डालना। यदि विक्षेप भी उपस्थित करोगे, तब भी वे घर मे नही रहेगे। अत उत्तम यही होगा कि तुम दोनो उनको दीक्षा की सहर्ष आज्ञा दे देना। भाई, सन्तान प्राप्ति की वात सुनकर वे हर्ष से गद्-गद् हो गये। उन्हे दृढ विश्वास हो गया कि साधु-सन्तो के वचन कभी खाली जाने वाले नही हैं। दोनो मुनि वहा से विहार कर गये और रूप बदलकर अपने स्थान पर जा पहुचे।

इधर यथासमय कालधर्म को प्राप्त होने पर वे दोनो देव पुरोहितानी के गर्भ मे आगये। गर्भ दिन पर दिन वढने लगा और वह पुरोहितानी भी धर्म साधना अधिक करने लगी। नवमास पूर्ण होने पर पुरोहितानी के दो पुत्रो का जन्म हुआ। पुरोहित ने बडे हर्ष से उनका जन्मोत्सव किया। धीरे धीरे दोनो वालक जव पाच वर्ष के हुए तो उन्हे यह चिन्ता सवार हो गई कि कही ये साधुओ को देखकर साधु न बन जायें ? इसलिए कोई ऐसा उपाय करना चाहिए कि जिससे इनको मुनि-दर्शन करने का अवसर ही न आवे। नगर मे तो साधु-सन्त सदा आते ही रहते हैं और उनके देखते ही इनके वैराग्य जग सकता है। अत यहा से किसी ऐसे स्थान पर जाकर निवास करना चाहिए कि जहा पर साधु-सन्तो का आना-जाना सम्भव ही न हो। ऐसा विचार करके उन्होंने जगल मे जाकर रहने का निश्चय किया। वह पुरोहित राजा के पास गया और वोला—अव मुझे पुरोहित पद से मुक्त किया जाय। जीवन का सध्याकाल है, अत मैं अव धर्म की साधना करना चाहता हू। और एकान्त वन मे निवास

पुरोहितानी और उनके दो पुत्र, इस प्रकार ये छह जीव थे। जब तक पुरोहित-पुरोहितानी के सन्तान उत्पन्न नही हुई थी, तब तक उसने इसके लिए बडे-बडे मत्र, यत्र, तत्र और जादू-टोने किये और अनेक प्रकार की साधना की। अनेक प्रकार के प्रयत्न करते हुए पुरोहित थक गया। उसके पास अरबो रुपयो की सम्पत्ति थी और वह वेद-वेदाङ्ग का पारगामी भी था। परन्तु जब तक सन्तान प्राप्ति का योग न हो, तब तक मनुष्य के सर्व प्रयत्न निष्फल जाते है। देवलोक मे रहने वाले दो देवो की आयु जब छह मास की शेष रह गई, तो उनके गले की माला मुर्झायी और भौहे फिरने लगी। अवधिज्ञान से उन्होने जान लिया कि अब हमारा पतन सन्निकट है। अत वे भगवान के समवसरण मे पहुँचे और पूछा कि भगवन्, हम मर कर कहा उप्पन्न होगे ? भगवान् ने बताया कि तुम मनुष्यलोक मे इषुकार नगर मे भग्गू पुरोहित की स्त्री की कुक्षि मे जाकर जन्म लोगे। यह सुनकर वे दोनो अपने स्थान पर चले आये और विचारने लगे कि वह पुरोहित और उसकी स्त्री तो विधर्मी है। उसे हम कैसे जैनधर्मी बनावें ? तब उन दोनो देवो ने बाल-मुनियो का रूप बनाया और गोचरी के लिए ईर्यासमिति से विचरते हुए वे उस पुरोहित के घर के सामने आये। पुरोहित पक्का विधर्मी था, किन्तु पुरोहितानी सरल-स्वभाव की भद्र स्त्री थी। उसने अपने पति से कहा—यदि सन्तान-प्राप्त करना हो तो ये जो दो साधु आ रहे है, इनकी सेवा-भक्ति करो। साधु-सन्तो की कृपा से—उनके प्रसाद से—कोई कमी नही रहेगी। स्त्री के वचनो से पुरोहित भी कुछ ढीला पडा और दोनो ने आगे जाकर उन दोनो वाल-मुनियो की वन्दना की और वोले—हे कृपालु, देव, पधारो और हमारी झोपडी को पवित्र करो। आहार विराओ। तव मुनियो ने कहा –'**नो कप्पई**' अर्थात् हम आहार नही लेंगे। तव विनयपूर्वक उन दोनो ने पूछा—महाराज, इस छोटी सी अवस्था मे आप ससार त्याग करके मुनि वन गये, यह कैसे सभव हुआ ? आपके माता-पिता कितने वज्र-हृदय के है, जो उन्होने आपको इस वाल वय मे दीक्षा लेने की आज्ञा दे दी और आपने दीक्षा ले ली ? आपको भी कैसे इतनी छोटी आयु मे इतना वैराग्य हो गया ? तव उन मुनियो ने कहा—कि यमराज किसी की

से भरे पात्र निकले है और इन लोगो ने जब कोमल पू जनी से भूमि का प्रति-लेखन किया तो ये दयालु और कीडो तक के रक्षक ज्ञात होते हैं, तब ये मनुष्यो को कैसे मारेंगे ? कुछ देर विश्रामकर उन मुनियो ने आहार-पानी लिया और पात्रो को धोकर जतना से निर्जीव भूमि पर उसे परिठवते देखा—तो उनके मन मे यह बात दृढरूप से जम गई कि ये साधु तो परम कृपालु प्रतीत होते हैं। हमारे पिताजी ने कैसे कह दिया कि ये झोली मे छुरी रखते हैं और बच्चो को पकडकर ले जाते हैं और मार डालते हैं ? इस प्रकार मुनियो की दया से भरी हुई निर्दोष क्रियाए देखकर उनके मन का भ्रम दूर हो गया। भाई, किसी ने ठीक ही कहा है—

**जैसे ज्वर के जोर से भोजन की रुचि जाय।**
**तैसे कु-करम के उदय, धर्म बात न सुहाय॥**
**लगे भूख ज्वर के गये, रुचि से करे आहार।**
**अशुभ गये, शुभ के जगे, जागे धर्म विचार॥**

जब अशुभ कर्मों का उदय दूर होता है, तो मनुष्य को विवेक जागृत हो जाता है। इस कहावत के अनुसार ही उन दोनो पुरोहित-पुत्रो के मन का मल-विकार दूर हुआ और उन्हे जातिस्मरण-ज्ञान उत्पन्न हो गया। वे विचारने लगे—अहो, पूर्वभव मे इन सन्तो के सुयोग से हमने सयम की साधना की थी और उसके फल से हम देवलोक मे उत्पन्न हुए और वहा से च्यव कर अब मनुष्य हुए हैं। पिताजी ने अपने मोह के कारण हमे अभी तक अज्ञान और भ्रम मे रखा और इन निर्दोष मुनियो को दोष लगाया ? यह विचारते हुए वे निर्भय होकर वृक्ष से नीचे उतरे और दोनो सन्तो को विधिपूर्वक वन्दन किया। मुनियो ने पूछा—भाई तुम कौन हो ? उन्होने अपना परिचय दिया कि हम लोग भग्गू पुरोहित के पुत्र हैं। साथ ही यह भी निवेदन किया कि हमारे भाव दीक्षा लेने के हैं, अत आप लोग यही विराजे। हम लोग घर से दीक्षा की आज्ञा ले करके अभी आते हैं। भाई, हम तो सुनाते-सुनाते थक गये है और आप लोग सुनते-सुनते ऊब गये हैं। मगर उडद तो काले के काले ही रहे, वे मोगर नही बने। आपमे से कोई साधु बनने को तैयार नही हुआ और वे दोनो

करना चाहता हू। राजा ने भी स्वीकृति दे दी और वह वन मे जाकर और मकान बनाकर एकान्त मे रहने लगा। भाई, जहा पर कोई बडा आदमी जाकर निवास करता है, तो छोटे-मोटे लोग भी वहा आकर बस जाते हैं। अत वहा पर एक गाव बस गया। वह पुरोहित भी निश्चिन्त होकर समय बिताने लगा।

पुरोहित ने दोनो पुत्रो को पढाना-लिखाना प्रारम्भ कर दिया और साथ मे यह सस्कार भी भरने लगा कि पुत्रो, इन साधु-सन्तो से दूर रहना। ये लोग वहकाकर लडको को ले जाते है और एकान्त मे ले जाकर मार डालते हैं। इनकी झोली मे छुरी रहती है। इत्यादि प्रकार से वह साधुओ से बचने के लिए उन दोनो बालको को कहता रहा और स्वय भी सतर्क रहने लगा कि कही इनको साधुओ के दर्शन न हो जायें। उन दोनो पुत्रो के कोमल हृदयो पर भी पिता का रग चढ गया और वे भी साधुओ से भयभीत रहने लगे। धीरे-धीरे वे सोलह वर्ष के हो गये और पढ-लिखकर विद्वान् बन गये।

एक समय क्या हुआ कि दो मुनिराज किसी नगर से गोचरी लेकर दूसरे गाव को जाते हुए किसी बीहड जगल मे मार्ग भूल गये। और इधर-उधर भटकते हुए वे उसी गाव के समीप आ पहुचे। पुरोहित ने जब उन मुनियो को गाव मे आते देखा तो लोगो से कहा—कि इनको गाव से बाहिर निकाल दो। लोगो के कहने से वे गाव से बाहिर चले गये और एक बाग के समीप वृक्ष की छाया मे बैठकर गोचरी करने का विचार करने लगे। भाग्य से वे दोनो पुरोहित-पुत्र पहिले से ही उसी बाग मे खेलने के लिए आये हुए थे। उन्होने दूर से ज्यो ही मुनियो को आते हुए देखा, त्यो ही भयभीत होकर वे एक वृक्ष पर चढ गये। दैवयोग से वे दोनो मुनि भी योग्य स्थान पर बैठने का विचार करते हुए उसी वृक्ष के नीचे आकर और भूमि का प्रतिलेखन करके बैठ गये। जब उन पुत्रो ने उसी वृक्ष के नीचे उनको बैठता हुआ देखा—तो वे और भी भयभीत होकर कापने लगे। और चुपचाप डाली की आड मे छिपकर इनकी ओर देखने लगे कि ये क्या करते है? जब साधु भूमि का प्रतिलेखन कर बैठे और झोली खोलकर अन्न-जल के पात्रो को निकालकर बाहिर रखा, तब वे दोनो पुत्र सोचने लगे—अरे इनकी झोली मे तो छुरी आदि कुछ भी नही है, इसमे तो खान-पान

पतितो को पावन करने वाले हैं, उन्हे कौन अपावन कर सकता है ? और भगवान पर बालो की कूची फेरते हुए तो वे अपवित्र नही होते और हरिजन की छाया से अपवित्र हो जायेंगे, यह कितना बडा अज्ञान है। अरे कवि तो कह गये हैं कि—

**जिन नाम लिए भव-भव के पाप कट जाते हैं।**

जिन भगवान का नाम लेने से तो अनन्त-भवो के पापकर्म कट जाते हैं और तुम भगवान को स्नान कराकर और कूची रगड-रगड कर उनका मैल उतारने की सोचते हो ?

**जेहनो नाम लियो थकाए, टल जावे पाप प्रभूत्त,**
**मेल उतार सीए—कुणजायो मायडी पूत्तके।**
**अरिहत मोट का है ॥[1]**

भगवान मे मैल नही है, मैल तो तुम भक्तो के मन मे है। भगवान तो परम-पवित्र हैं। फिर भी उनको पवित्र रखने के लिए नगर मे इतनी हलचल मची हुई है ? सारी दुनिया आज भौतिकता मे मग्न हो रही है। अन्यथा भगवान के दरबार मे तो महाजन और हरिजन सभी समान है, वहा किसी का कोई भेद नही है।

भाई, हरिकेशी मुनि कौन थे ? श्वपाक (चाडाल) कुल मे जन्मे थे। पर देवता ने उनकी सेवा की। लोग कहते हैं कि वे श्रावक के घर के भीतर जाकर गोचरी नही लाते थे, किन्तु श्रावक बाहिर लाकर के ही उन्हे आहार वहरा देता था। अरे भोले भाई, जरा आगम का तो अभ्यास कर। क्या जैन मुनि सामने लाया हुआ आहार स्वीकार करते हैं ? कभी नही। वे तो ऐसे नही थे कि मुनि के आने से घर अपवित्र हो जाय। वैष्णवो के विश्वामित्र, जिन्हे सारा हिन्दू समाज भगवान के रूप मानता है, वे कौन थे ? उनके विषय मे महाभारत मे कहा है कि—

**चाण्डालीगर्भसम्भूतो विश्वामित्रो महामुनि.।**
**तपसा ब्राह्मणो जातस्तस्माज्जातिरकारणम् ॥**

---

१ आचार्य जयमलजी महाराज।

मुनियो के दर्शन मात्र से दीक्षा लेने को तैयार हो गये। इसी का नाम काललब्धि है। जब जीव की यह काललब्धि पकती है, तब जरा से निमित्त से उसके धर्म करने के भाव जाग जाते है।

देखो, पहिले के जमाने मे भगवान् जब किसी नगर में पधारते, तो वहा हलचल मच जाती थी। अभी कुछ दिनो पहिले जब कही राजा-महाराजा पधारते, तो हलचल मच जाती थी। परन्तु आज हरिजन मन्दिर मे प्रवेश करेंगे, तो नगर मे हलचल मची हुई है। सारे पुलिस के जवान और अधिकारी अपनी ड्यूटी पर तैनात है। यह भी समय की बलिहारी है। जाति के मद से लोगो ने कितनी मिथ्या प्ररूपणा की कि इन लोगो के आजाने से मन्दिर अपवित्र हो जायगा। अरे मन्दिर तो दूर की बात है, उसके बाहिर के चबूतरे पर भी यदि कभी कोई हरिजन आ जाता, तो ये मदान्ध लोग लडने और मारने को तैयार हो जाते थे। परन्तु आज समय ने ऐसी थप्पड मारी है कि कोई कुछ भी बोल नही सकता है।

मैं अभी आ रहा था, तो घर-घर मे यही चर्चा चल रही थी कि मन्दिर मे चलो। वहा चलकर मर मिटेंगे-पर किसी हरिजन को मन्दिर के अन्दर नही जाने देंगे। परन्तु एक भी मरा नही। मैं तो सदा से यही कहता आया हू कि तुम लोग भगवान् के भक्त नही हो? किन्तु भगवान् का मजाक उडाने वाले हो। अरे, भगवान् के भक्त क्या ऐसे खडे-खडे देख सकते हैं? कभी नही। किसी कवि ने कहा है कि—

**भक्ति भगवान् की बहुत बारीक है,**
**शीष सौंपिया विन भक्ति नाहीं।**

अव लोग शीप देने को तैयार होते नही है, और भक्त भी कहलाना चाहते हैं? भाई विना शीप दिये तो राजाजी के या सेठजी के भी भक्त नहीं कहला सकते, तो फिर भाई, भगवान की भक्ति तो वहुत दूर की वस्तु है। नाचना और ताल ठोकना भगवान की भक्ति नही है। यदि भगवान के सच्चे भक्त हो तो अवसर पर कुछ कर्त्तव्य करके दिखाओ। कहते हैं कि भगवान के ऊपर हरिजन की छाया पड़ जाय तो वे अशुभ हो जाते हैं। भाई, भगवान तो

हा, तो पुरोहित के उन दोनो पुत्रो के दीक्षा लेने के भाव हुए और घर जाकर उन्होने अपनी भावना माता-पिता से कही। माता-पिता ने उन दोनो को बहुत समझाया, परन्तु वे नही माने। इस कथानक का बहुत सुन्दर वर्णन श्री उत्तराध्ययन के चौदहवें अध्ययन मे किया गया है। अन्त मे उन दोनो पुत्रो के समझाने से उन्होने दीक्षा लेने की उन्हे आज्ञा ही नही दी, अपितु स्वय पुरोहित और पुरोहितानी ने भी दीक्षा लेली। जब उस पुरोहित का धन गाडियो मे भरकर राजकोष मे जा रहा था, तब महारानी कमलावती महल के झरोखे मे बैठी थी। उन्होने धन से भरी गाडियो को आते हुए देखकर दासी से पूछा—ये धन से भरी गाडिया आ रही हैं, सो क्या महाराज ने किसी गाव को लूटा है या किसी धनवान को लूटा है या कही से गडा हुआ धन मिला है? तब दासी ने कहा—महारानीजी, महाराज ने न किसी गाव को लूटा है, न किसी महाजन को और न कही से गडा हुआ ही मिला है? किन्तु अपने पुरोहित-पुरोहितानी और उनके दोनो पुत्र—चारो ही साधु बन गये हैं। उन्ही का यह धन राज-खजाने मे आ रहा है।

यह सुनकर महारानी महल से नीचे उतरी और राजसभा मे पहुँची। उन्होने महाराज से कहा—आप गजब करते हैं, जो दूसरो का वमन किया हुआ आप ग्रहण कर रहे है। महाराज बोले – राजकाज ऐसे ही चला करते हैं। तब महारानी ने कहा—महाराज, ये सब कुछ एक दिन छोडकर हम सबको यहा से जाना है, फिर यह पाप क्यो करते है? आप इस राज्य मोह के बन्धन मे फसकर क्या सार पायेंगे? इस प्रकार अनेक युक्तियो से महारानी ने महाराज को समझाया। तब महाराज प्रबोध को प्राप्त हुए और उन दोनो ने भी साधुपना अगीकार कर लिया। इस प्रकार राजा-रानी, पुरोहित-पुरोहितानी और उनके दोनो पुत्र—ये छहो जीव सयम की आराधना करके मोक्ष को प्राप्त हुए।

भाइयो, कहने का सार यह है कि आत्मा का ज्ञान ही आध्यात्मिक साधना का मूल आधार है। पर आप लोगो से क्या कहा जाय कि जिनके पास

चाण्डाली के गर्भ से जाये विश्वामित्र तप से ब्राह्मण कहलाये और महा-मुनि बने। इसलिए जाति किसी के छोटे या बडे कहलाने मे कारण नही है।

पहिले के पुरुषो मे भेदभाव नही था। मध्ययुग मे मद से मग्न पुरुषो ने ये जातियो के बाडे बनाये और मनुष्य-मनुष्य मे भेदभाव खडा कर दिया और घोषित कर दिया कि मन्दिरो मे हरिजनो को जाने का अधिकार नही है। परन्तु याद रखो—सबल सदा सबल नही रहता और निर्बल भी सदा निर्बल नही रहते। समय सदा बदलता रहता है। आज इस कांग्रेसी शासन मे आप अपने को ऊचा मानते हो, जहा आपकी पहुच नही है, वहा पर हरिजनो की पहुच है और आपसे पहिले उनकी बात सुनी जाती है।

आज होटल, सिनेमा, रेल-मोटर आदि सब जगह वे आपके कधे से कन्धा मिलाकर बैठते है। अब कहा गया आपका वह जातिमद ? लोग कहते है कि महाराज, आप भी जमाने के साथ हो गये है ? भाई, हम जमाने के साथ नही है, किन्तु हम तो भगवान महावीर के साथ हैं, जिन्होने कि जातिमद और कुल-मद के त्यागने का उपदेश दिया है। मद आठ प्रकार का होता है—

**जाति लाभ कुल रूप तप, बल विद्या अधिकार।**
**इनको गर्व न कीजिए, ये मद अष्टप्रकार।**
**जाति का मद कुछ नहीं, करते सो गहना।**
**उत्पत्ति सारे मनुज की, सोचे क्यो नहि बहिना।**

आप प्रतिदिन पढते है, यह स्तुति आज की बनाई हुई नही है। यह आचार्य रायचन्दजी की बनाई हुई है जो जयमलजी म० के पाटवी थे। हमारे पूर्वजो ने कहा कि किसी जाति मे उत्पन्न होने से कोई बडा या ऊच नही कहा जा सकता। किन्तु व्रत, तप, सयम, नियम और त्याग-प्रत्याख्यान से ही मनुष्य बडा या ऊच कहा जाता है। भगवान के दरबार मे तो सबको ही समानरूप से आने का अधिकार है। जब आपके पास अधिकार आया तो आपने ये दीवाले खडी कर दी। परन्तु भगवान ने कभी किसी को अपने दरबार मे आने से मना नही किया।

# श्री मरुधर केसरी साहित्य-प्रकाशन समिति

## (प्रवचन-प्रकाशन विभाग)

# सदस्यों की शुभ नामावली

### विशिष्ट-सदस्य

१ श्री घीसुलाल जी मोहनलाल जी सेठिया, मैसूर
२ श्री वच्छराज जी जोधराज जी सुराणा, सेला (सोजत-सिटी)
३ श्री रेखचन्द जी साहब रांका, मद्रास (बगडी नगर)
४ श्री बलवत राज जी खांटेड, मद्रास (बगडी-नगर)
५ श्री नेमीचद जी बांठिया, मद्रास (बगडी-नगर)
६ श्री मिश्रीमल जी लूकड, मद्रास (बगडी-नगर)
७ श्री माणकचन्द जी कात्रेला, मद्रास (बगडी-नगर)
८ श्री रतनलाल जी केवलचन्द जी कोठारी, मद्रास (निम्बोल)
९ श्री अनोपचन्द जी किशनलालजी बोहरा, अटपडा

### प्रथम-श्रेणी

१ मैं० बी सी ओसवाल, जवाहर रोड, रत्नागिरी (सिरियारी)
२ शा० इन्दरसिंह जी मुनोत, जालोरी गेट, जोधपुर
३ शा० लादूराम जी छाजेड, ब्यावर (राजस्थान)

सर्वप्रकार की जोगवाई है, अन्तराय भी टूटी हुई है, बुद्धि-विवेक और नीरोग शरीर भी है और धर्म-श्रवण का अवसर भी प्राप्त हुआ है। फिर भी सयम-साधना के भाव नही हो रहे हैं। आप कहेगे—महाराज, अभी समय नही है। अभी तो हमे दिसावर जाना है ? तो भाई, कौन मना करता है ? आप आराम से पधारो। परन्तु याद रखो कि दिसावर भी दो हैं। इस दिसावर मे तो अनन्तकाल से जा आरहे हो। अब उस दिसावर मे जाओ, जहा से कभी लौटने का काम नही रहे और सदा ज्ञानामृत पान करते हुए अनन्तसुख से रहना सभव हो। यही आध्यात्मिक साधना का फल है। इस ओर हमारा सदा ध्यान रहना चाहिए।

वि० स० २०२७, आसोज सुदि ४

सिंहपोल, जोधपुर,

●●

२६ शा० जेठमल जी राणमल जी सर्राफ, वुशी
३० शा० पारसमल जी सोहनलाल जी सुराणा कु भकोणम्, मद्रास
३१ शा० हस्तीमल जी मुणोत, सिकन्दराबाद (आन्ध्र)
३२ शा० देवराज जी मोहनलाल जी चौधरी, तीरुकोईलूर, मद्रास
३३ शा० वच्छराज जी जोधराज जी सुराणा, सोजतसिटी
३४ शा० गेवरचन्द जी जसराज जी गोलेछा, वैंगलोर सिटी
३५ शा० डी० छगनलाल जी नौरतमल जी वव, वेंगलोर सिटी
३६ शा० एम० मगलचन्द जी कटारिया, मद्रास
३७ शा० मगलचन्द जी दरडा c/o मदनलाल जी मोतीलाल जी,
शिवेराम पैंठ, मैसूर
३८ पी० नेमीचन्द जी धारीवाल, N क्रास रोड, रावर्टसन पैंठ, K G F
३९ शा० चम्पालाल जी प्रकाशचन्द जी छलाणी न० ५७ नगरथ पैंठ,वैंगलूर-२
४० शा० आर विजयराज जागडा, न० १ क्रासरोड, रावर्टसन पेठ, K G F
४१ शा० गजराज जी छोगमल जी, रविवार पैंठ ११५३, पूना
४२ श्री पुखराज जी किशन लाल जी तातेड, पोट-मार्केट, सिकन्द्रावाद–A P
४३ श्री केसरीमल जी मिश्रीमल जी आच्छा, वालाजावाद-मद्रास
४४ श्री कालूराम जी हस्तीमल जी मूथा, गाधी चौक-रायचूर
४५ श्री वस्तीमल जी सीरेमल जी धुलाजी, पाली
४६ श्री सुकनराज जी भोपालचन्द जी पगारिया, चिकपेट वगलोर–५३

## द्वितीय श्रेणी

१ श्री लालचन्द जी श्रीश्रीमाल, व्यावर
२ श्री सूरजमल जी इन्दरचन्द जी सकलेचा, जोधपुर
३ श्री मुन्नालाल जी प्रकाशचन्द जी नम्वरिया, चौधरी चौक, कटक
४ श्री घेवरचन्द जी रातडिया, रावर्टसनपैंठ
५ श्री वगतावरमल जी अचलचन्द जी खींवसरा ताम्वरम्, मद्रास
६ श्री छोतमल जी सायवचन्द जी खींवसरा, वीपारी

४ शा० चम्पालाल जी डूगरवाल, नगरथपेठ, वेगलोर सिटी (करमावास)
५ शा० कामदार प्रेमराज जी, जुमा मस्जिद रोड, वेगलोर सिटी (चावडिया)
६ शा० चादमल जी मानमल जी पोकरना, पेरम्बूर, मद्रास, ११ (चावडिया)
७ जे. बस्तीमल जी जैन, जयनगर वेगलोर ११ (पुजलू)
८ शा० पुखराज जी सीसोदिया, ब्यावर
९ शा० बालचद जी रूपचन्द जी वाफना,
११८/१२० जवेरीबाजार बम्बई–२ (सादडी)
१० शा० बालाबगस जी चम्पालाल जी वोहरा, राणीवाल
११ शा० केवलचन्द जी सोहनराज वोहरा, राणीवाल
१२ शा०अमोलकचन्दजी धर्मीचन्दजी आच्छा,वडी काचीपुरम्,मद्रास (सोजतरोड)
१३ शा० भूरमल जी मीठालाल जी वाफना, तिरकोयलूर, मद्रास (आगेवा)
१४ शा० पारसमल जी कावेडिया, आरकाट, मद्रास (सादडी)
१५ शा० पुखराज जी अनराज जी कटारिया, आरकोनम्, मद्रास (सेवाज)
१६ शा० सिमरतमल जी सखलेचा, मद्रास (बीजाजी का गुडा)
१७ शा० प्रेमसुख जी मोतीलाल जी नाहर, मद्रास (कालू)
१८ शा० गूदडमल जी शातिलाल जी तलेसरा, एनावरम्, मद्रास
१९ शा० चम्पालाल जी नेमीचन्द, जबलपुर (जैतारण)
२० शा० रतनलाल जी पारसमल जी चतर. ब्यावर
२१ शा० सम्पतराज जी कन्हैयालाल जी मूथा, कूपल (मारवाड-मादलिया)
२२ शा० हीराचन्द जी लालचन्द जी धोका, नवसाबाजार, मद्रास
२३ शा० नेमीचन्द जी धर्मीचन्द जी आच्छा, चगलपेट, मद्रास
२४ शा० एच० घीसुलाल जी पोकरना, एन्ड सन्स आरकाट—N A D T
(बगडी नगर)
२५ शा० गीसुलाल जी पारसमल जी सिंघवी, चागलपेट, मद्रास
२६ शा० अमोलकचन्द जी भवरलाल जी विनायकिया, नक्शाबाजार, मद्रास
२७ शा० पी० बीजराज नेमीचन्द धारीवाल, तीरुवेलूर
२८ शा० रूपचन्द जी माणकचन्द जी बोरा, बुशी

३१ श्री धनराज जी हस्तीमल जी सचेती, कावेरीचाक
३२ श्री सोहनराज जी शान्तिप्रकाश जी सचेती, जोधपुर
३३ श्री भवरलाल जी चम्पालाल जी सुराना, कानावना
३४ श्री मागीलाल जी शकरलाल जी भसाली,
२७ लक्ष्मी अमन कोयल स्ट्रीट, पैरम्बूर मद्रास-११
३५ श्री हेमराज जी शन्तिलाल जी सिंघी,
११ वाजाररोड रायपेठ मद्रास-१४
३६ शा० अम्बूलाल जी प्रेमराज जी जैन, गुडियातम
३७ शा० रामसिंह जी चौधरी, व्यावर
३८ शा० प्रतापमल जी मगराज जी मलकर—केसरीसिंह जी का गुडा
३९ शा० सपतराज जी चौरडिया, मद्रास
४० शा० पारसमल जी कोठारी, मद्रास
४१ शा० भीकमचन्द जी चौरडिया, मद्रास
४२ शा० शान्तिलाल जी कोठारी, उतशेटे
४३ शा० जव्वरचन्द जी गोकलचन्द जी कोठारी, व्यावर
४४ शा० जवरीलाल जी धरमीचन्द जी गादीया, लाविया
४५ श्री सेंसमल जी धारीवाल, वगडीनगर (राज०)
४६ जे० नौरतनमल जी वोहरा, १०१८ के० टी० स्ट्रीट, मैसूर-१
४७ उदयचन्द जी नोरतमल जी मूथा
c/o हजारीमल जी विरधीचन्द जी मूथा, मेवाडी वाजार, व्यावर
४८ हस्तीमल जी तपस्वीचन्द जी नाहर, पो० कांसाना (जोधपुर)
४९ श्री आर० पारसमल जी लूणावत, ४१-वाजार रोड, मद्राम
५० श्री मोहनलाल जी मीठालाल जी, वम्वई-३
५१ श्री पारसमल जी मोहनलाल जी पोरवाल, वेंगलोर
५२ श्री मीठालाल जी ताराचन्द जी छाजेड, मद्रास
५३ श्री अनराज जी शातिलाल जी विनायकिया, मद्रान-११
५४ श्री चान्दमल जी लालचन्द जी ललवाणी, मद्रास-१४

७ श्री गणेशमल जी मदनलाल जी भडारी, नीमली

८ श्री माणकचन्द जी गुलेछा, व्याबर

९ श्री पुखराज जी बोहरा, राणीवाल वाला हाल मुकाम-पीपलिया कलाँ

१० श्री धर्मीचन्द जी बोहरा, जुठावाला हाल मुकाम-पीपलिया कलाँ

११ श्री नथमल जी मोहनलाल जी लूणिया, चन्डावल

१२ श्री पारसमल जी शान्तीलाल जी ललवाणी, बिलाडा

१३ श्री जुगराज जी मुणोत, मारवाड जक्शन

१४ श्री रतनचन्द जी शान्तीलाल जी मेहता, सादडी (मारवाड)

१५ श्री मोहनलाल जी पारसमल जी भडारी, बिलाडा

१६ श्री चम्पालाल जी नेमीचन्द जी कटारिया, बिलाडा

१७ श्री गुलाबचन्द जी गभीरमल जी मेहता, गोलवड
[तालुका डेणु—जि० थाणा (महाराष्ट्र)]

१८ श्री भवरलाल जी गौतमचन्द जी पगारिया, कुशालपुरा

१९ श्री चनणमल जी भीकमचन्द जी राका, कुशालपुरा

२० श्री मोहनलाल जी भवरलाल जी बोहरा, कुशालपुरा

२१ श्री सतोकचन्द जी जवरीलाल जी जामड,
१४६ बाजार रोड, मदरानगतम

२२ श्री कन्हैयालाल जी गादिया, आरकोणम्

२३ श्री धरमीचन्द जी ज्ञानचन्द जी मूथा, बगडीनगर

२४ श्री मिश्रीमल जी नगराज जी गोठी, बिलाडा

२५ श्री दुलराज जी इन्दरचन्द जी कोठारी
११४, तैयप्पा मुदलीस्ट्रीट, मद्रास-१

२६ श्री गुमानलाल जी मागीलाल जी चौरडिया, चिन्ताधरी पैंठ मद्रास-१

२७ श्री सायरचन्द जी चौरडिया, ६० एलीफेन्ट गेट मद्रास-१

२८ श्री जीवराज जी जवरचन्द जी चौरडिया, मेडता सिटी

२९ श्री हजारीमल जी निहालचन्द जी गादिया, १६२ कोयम्तूर, मद्रास

३० श्री केसरीमल जी झूमरलाल जी तलेसरा, पाली

५५ श्री लालचन्द जी तेजराज जी ललवाणी, त्रिकोयलूर

५६ श्री सुगनराज जी गौतमचन्द जी जैन, तमिलनाडु

५७ श्री के० मागीलाल जी कोठारी, मद्रास-१६

५८ श्री एस० जवरीलाल जी जैन, मद्रास-५२

५९ श्री केसरीमल जी जुगराज जी सिघवी, बैंगलूर-१

६० श्री सुखराज जी शान्तिलाल जी साखला, तीरुवल्लुर

६१ श्री पुकराज जी जुगराज जी कोठारी, मु० पो० चावडिया

६२ श्री भवरलाल जी प्रकाशचन्द जी बग्गाणी, मद्रास

६३ श्री रूपचन्द जी बाफणा, चडावल

## तृतीय श्रेणी

१ श्री नेमीचन्द जी कर्णावट, जोधपुर

२ श्री गजराज जी भडारी, जोधपुर

३ श्री मोतीलाल जी सोहनलाल जी बोहरा, ब्यावर

४ श्री लालचन्द जी मोहनलाल जी कोठारी, गोठन

५ श्री सुमेरमल जी गाधी, सिरियारी

६ श्री जबरचन्द जी बम्ब, सिन्धनूर

७ श्री मोहनलाल जी चतर, ब्यावर

८ श्री जुगराज जी भवरलाल जी राका, ब्यावर

९ श्री पारसमल जी जवरीलाल जी धोका, सोजत

१० श्री छगनमल जी वस्तीमल जी बोहरा, ब्यावर

११ श्री चनणमल जी थानचन्द जी खीवसरा, सिरियारी

१२ श्री पन्नालाल जी भवरलाल जी ललवाणी, बिलाडा

१३ श्री अनराज जी लिखमीचन्द जी ललवाणी, आगेवा

१४ श्री अनराज जी पुखराज जी गादिया, आगेवा

१५ श्री पारसमल जी धरमीचन्द जी जागड, बिलाडा

१६ श्री चम्पालाल जी धरमीचन्द जी खारीवाल, कुशालपुरा

# हमारा महत्वपूर्ण साहित्य

| | | |
|---|---|---|
| १ | श्री मरुधर केसरी अभिनन्दन-ग्रन्थ | मूल्य २४) |
| २ | श्री पाण्डव यशोरसायन (महाभारत पद्य) | १०) |
| ३ | श्रीमरुधर केसरी ग्रन्थावली, प्रथम भाग | ५)४० पैसा |
| ४ | ,, ,, द्वितीय भाग | ७) |
| ५ | जैनधर्म मे तप स्वरूप और विश्लेषण | १०) |
| ६ | जीवन-ज्योति | ५) |
| ७ | साधना के पथ पर | ५) |
| ८ | प्रवचन-प्रभा | ५) |
| ९ | धवल ज्ञान-धारा | ५) |
| १० | सकल्प-विजय | २) |
| ११ | सप्त-रत्न | २) |
| १२ | मरुधरा के महान् सत | २) |
| १३ | हिम्मत-विलास | २) |
| १४ | सिंहनाद | १) |
| १५ | बुध-विलास प्रथम भाग | १) |
| १६ | ,, द्वितीय भाग | १) |
| १७ | श्रमण सुरतरु चार्ट | ५) |
| १८ | मधुर पचामृत | १) |
| १९ | पतगसिंह चरित्र | ५० पैसा |
| २० | श्री वसत माधुमजूघोषा | ५० पैसा |
| २१ | आपाढभूति | २५ पैसा |
| २२ | भविष्यदत्त | २५ पैसा |
| २३ | सच्ची माता के सपूत | १) |
| २४ | तत्त्वज्ञान तरगिणी | १) |
| २५ | लमलोटका लफदर | २५ पैसा |
| २६ | मायलागो भिरु | २५ पैसा |
| २७ | टणकाइ रो तीर | २५ पैसा |
| २८ | सच्चा सपूत | २५ पैसा |
| २९ | पद्यमय पट्टावली | १) |
| ३० | जिनागम सगीत | ५० पैसा |

**श्री मरुधर केसरी साहित्य-प्रकाशन समिति**

पीपलिया बाजार, जैनस्थानक ब्यावर, (राजस्थान)

४४ शा० पारसमल जी लक्ष्मीचन्द जी काठेड, ब्यावर
४५ शा० धनराज जी महावीरचन्द जी खीवसरा, बैंगलोर ३०
४६ शा० पी० एम० चौरडिया, मद्रास
४७ शा० अमरचन्द जी नेमीचन्द जी पारसमल जी नागौरी, मद्रास
४८ शा० बनेचन्द जी हीराचन्द जी जैन, सोजतरोड, (पाली)
४९ शा० भूमरमल जी मागीलाल जी गूदेचा, सोजतरोड (पाली)
५० श्री जयन्तीलाल जी सागरमल जी पुनमिया, सादडी
५१ श्री गजराज जी भडारी एडवोकेट, बाली
५२ श्री मागीलाल जी रैंड, जोधपुर
५३ श्री ताराचन्द जी बम्ब, ब्यावर
५४ श्री फतेहचन्द जी कावडिया, ब्यावर
५५ श्री गुलाबचन्द जी चोरडिया, विजयनगर
५६ सिधराज जी नाहर, ब्यावर
५७ श्री गिरधारीलाल जी कटारिया, सहवाज
५८ श्री मीठालाल जी पवनकवर जी कटारिया, सहवाज
५९ श्री मदनलाल जी सुरेन्द्रराजजी ललवाणी, बीलाडा
६० श्री विनोदीलाल जी महावीरचन्द जी मकाणा, ब्यावर